MAHIN-501

आधुनिक काव्य I

MA HINDI

3rd Semester

Rajiv Gandhi University

www.ide.rgu.ac.in

आधुनिक काव्य -I

एम.ए. (हिंदी)

(तृतीय सत्र)

MAHIN-501

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA – 791 112

BOARD OF STUDIES	
Prof. Shyam Shankar Singh, (Head) Dept. Of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Chandan Kumar Dept. Of Hindi Delhi University	**External Member**
Prof. Dilip Medhi Dept. Of Hindi Guwahati University	**External Member**
Prof. Oken Lego Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Arun Kumar Pandey Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Co-ordinator**

Authors

Dr. Gajendra Mohan, Dr. Mohd. Erfan, Dr. Geeta Pandey, Yatindranath Gour, Dr. Laxmi Pandey

Revised Edition 2021

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Information contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd, and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE-Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.
Vikas® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida: 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 7561 Ravindra Mansion, Ram Nagar, New Delhi - 110055
Website: www.vikaspublishing.com Email: helpline @vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गाँधी विश्वविद्यालय अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) श्रीमती इंदिरा गांधी ने जो तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री व फरवरी 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी यही विश्वविद्यालय का वर्तमान कप विद्यमान है। आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो

आरंभ से ही राजीव गाँधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित है। 28 मार्च 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12.V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय ने देश के शैक्षिक परिदृश्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल 2007 से विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अदभुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि.मी . और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 किकी .मी . दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए है कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक स्नातकोत्तर एमकार्यक्रम भी संचालित करता .डी .एच .फिल व पी . एड का कोर्स भी चलाता है। .है। शिक्षा विभाग बी

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध है। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फर्डिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही विभिन्न फर्डिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है देश विदेश के प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने-1 विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए है।

2000-2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामत छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती है और परिणाम भी समय पर घोषित

होते हैं विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए है बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं मैं भी सफल हुए हैं। अनेक छात्र NET | परीक्षाओं में भी सफल हुए हैं

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है |

आईडीई एक परिचय

हमारे देश में उम शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक सामना करना पड़ रहा है। विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते है कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिकआर्थिक बाधाओं को दूर करने का यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की - मांग की पूर्ति कर रही है जो अपनी रखना चाहते है मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नही निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तर पूर्वी भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में रान-2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर दूरस्थ शिक्षा संस्थान रखा गया दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए आईडीई ने (आईटीई) 2013-14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों शिक्षा अंग्रेजी), हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञानको शामिल किया है। (

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन पहली मंजिल का निर्माण) किया गया है। विश्वविद्यालय परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

.1 **नियमित माध्यम के समकक्ष**-पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।

2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री -(एसआईएसएम)**छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरत्व शिक्षा परिषद नई दिल्ली (डीईसी) द्वारा अनुमोदित स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रदेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।

3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम** शैक्षिक कार्यक -**(सीसीपी)**्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7-15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बीपाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और .ए. के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य होगी। .ए.एम

.4 **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट** -व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।

5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम** -परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।

6. **विषय परामर्श संयोजक** -पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा

विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

आधुनिक काव्य।-

Syllabi- MAHIN-501	Mapping in Book
इकाई 1 परिचय; खड़ी बोली और संत गंगादास की कविता; आधुनिक राजनीतिक जागरण और सत गंगादास के काव्य में सामाजिक और पौराणिक चेतना का स्वरुप ; पाठांश; हिंदी नवजागरण एवं भारतेंदु का काव्य ; राजनैतिक परिस्थितियां; सामाजिक परिस्थितिया; साहित्यिक पृष्ठभूमि; भारतेंदु की राजनीतिक चेतना; भारतेंदु की काव्यगत विशेषताएं पाठांश – 'प्रेम माधुरी' एवं 'यमुना छवि'	**इकाई1** : **संत गंगादास एवं भारतेंदु हरिश्चंद्र**
इकाई 2 परिचय; स्त्री चेतना एवं मैथिलीशरण गुप्त का काव्य; साकेत का नवम सर्ग और गुप्त जी की काव्यगत विशेषताएं ; उर्मिला का विरह वर्णन; पाठांश; छायावादी काव्य मूल्य और जयशंकर प्रसाद; प्रसाद के काव्य में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना; कामायनी का महाकाव्यत्व ; कामायनी की प्रतीक योजना ; पाठांश – 'पूर्वपीठिका' एवं 'कामायनी' का श्रद्धा सर्ग	**इकाई 2** : **मैथिलीशरण गुप्त एवं जयशंकर प्रसाद**
इकाई 3 परिचय; निराला का काव्य वैशिष्ट्य; लंबी कविता की 'परंपरा' और 'सरोज-स्मृति'; 'राम की शक्ति पूजा' का प्रतिपाद्य; निराला का काव्य शिल्प; पाठांश ; महादेवी के काव्य में वेदना तत्व; निर्माणात्मक वेदना; करूणात्मक वेदना; साधनात्मक वेदना ; महादेवी की प्रतीक योजना; महादेवी वर्मा के प्रगीतों में भाव-सौंदर्य; महादेवी वर्मा के प्रगीतों में प्रणय भाव एवं वेदना; महादेवी वर्मा के प्रगीत और जड़ चेतन का एकात्य भाव; महादेवी वर्मा के प्रगीतों में सौन्दर्यानुभूति; महादेवी वर्मा के प्रगीतों में मूल्य बना; पाठांश – 'तुझको दूर जाना' एवं 'मैं नीर भरी दुख की बदली'	**इकाई 3** : **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' एवं महादेवी वर्मा**

इकाई 4 परिचय; प्रयोगवादी-काव्य और अज्ञेय ; प्रयोगवादी कविता को पृष्ठभूमि; प्रयोग के प्रति अज्ञेय को प्रतिक्रिया; प्रयोगवाद एवं उसको प्रवृत्तियां; प्रयोगवाद: काव्य भाषा; नई कविता को अज्ञेय की देन; नई कविता एवं उसकी प्रवृत्तियां; नई कविता : काव्य भाषा; नई कविता और अज्ञेय की उड़ान; अज्ञेय के काव्य प्रयोग; अज्ञेय की काव्य भाषा ; पाठांश – 'नदी के द्वीप' एवं 'नदी के द्वीप प्रतिपाद्य	**इकाई 4** : **सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय**
इकाई 5 परिचय; मुक्तिबोध का जीवन एवं रचना प्रक्रिया; मुक्तिबोध : जीवन परिचय; मुक्तिबोध : रचना संसार; लंबी कविता की कसौटी पर 'अँधेरे में' ; फैंटसी और मुक्तिबोध का काव्य ; फैंटसी से तात्पर्य ; फैंटसी का प्रारूप ; मुक्तिबोध के काव्य में आधुनिक भारत का यथार्थ ; सामाजिक जीवन के सांस्कृतिक मूल्य ; राजनैतिक वातावरण की व्यवस्था; पाठांश	**इकाई 5** : **मुक्तिबोध**

विषय सूची-

परिचय

इकाई 1 : संत गंगादास एवं भारतेंदु हरिश्चंद्र

- परिचय
- खड़ी बोली और संत गंगादास की कविता
- आधुनिक राजनीतिक जागरण और सत गंगादास के काव्य में सामाजिक और पौराणिक चेतना का स्वरुप
- पाठांश

- हिंदी नवजागरण एवं भारतेंदु का काव्य
- राजनैतिक परिस्थितियां
- सामाजिक परिस्थितिया
- साहित्यिक पृष्ठभूमि
- भारतेंदु की राजनीतिक चेतना
- भारतेंदु की काव्यगत विशेषताएं
- पाठांश – 'प्रेम माधुरी' एवं 'यमुना छवि'

इकाई 2 : मैथिलीशरण गुप्त एवं जयशंकर प्रसाद

- परिचय
- स्त्री चेतना एवं मैथिलीशरण गुप्त का काव्य
- साकेत का नवम सर्ग और गुप्त जी की काव्यगत विशेषताएं
- उर्मिला का विरह वर्णन
- पाठांश
- छायावादी काव्य मूल्य और जयशंकर प्रसाद
- प्रसाद के काव्य में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना
- कामायनी का महाकाव्यत्व
- कामायनी की प्रतीक योजना
- पाठांश – 'पूर्वपीठिका' एवं 'कामायनी' का श्रद्धा सर्ग

इकाई 3 : सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' एवं महादेवी वर्मा

- परिचय
- निराला का काव्य वैशिष्ट्य
- लंबी कविता की 'परंपरा' और 'सरोज-स्मृति'
- 'राम की शक्ति पूजा' का प्रतिपाद्य
- निराला का काव्य शिल्प
- पाठांश

- महादेवी के काव्य में वेदना तत्व
- निर्माणात्मक वेदना
- करूणात्मक वेदना
- साधनात्मक वेदना
- महादेवी की प्रतीक योजना
- महादेवी वर्मा के प्रगीतों में भाव-सौंदर्य
- महादेवी वर्मा के प्रगीतों में प्रणय भाव एवं वेदना
- महादेवी वर्मा के प्रगीत और जड़ चेतन का एकात्य भाव
- महादेवी वर्मा के प्रगीतों में सौन्दर्यानुभूति
- महादेवी वर्मा के प्रगीतों में मूल्य बना
- पाठांश – 'तुझको दूर जाना' एवं 'मैं नीर भरी दुख की बदली'

इकाई : 4 सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय

- परिचय
- प्रयोगवादी काव्य और अज्ञेय-
- प्रयोगवादी कविता को पृष्ठभूमि
- प्रयोग के प्रति अज्ञेय को प्रतिक्रिया
- प्रयोगवाद एवं उसको प्रवृत्तियां
- प्रयोगवादकाव्य भाषा :
- नई कविता को अज्ञेय की देन
- नई कविता एवं उसकी प्रवृत्तियां
- नई कविता काव्य भाषा :
- नई कविता और अज्ञेय की उड़ान
- अज्ञेय के काव्य प्रयोग
- अज्ञेय की काव्य भाषा
- पाठांश 'नदी के द्वीप प्रतिपाद्य' एवं 'नदी के द्वीप' –

इकाई : 5 मुक्तिबोध

- परिचय
- मुक्तिबोध का जीवन एवं रचना प्रक्रिया
- मुक्तिबोध जीवन परिचय :
- मुक्तिबोध रचना संसार :
- लंबी कविता की कसौटी पर 'अँधेरे में'
- फैंटसी और मुक्तिबोध का काव्य
- फैंटसी से तात्पर्य
- फैंटसी का प्रारूप
- मुक्तिबोध के काव्य में आधुनिक भारत का यथार्थ

- सामाजिक जीवन के सांस्कृतिक मूल्य
- राजनैतिक वातावरण की व्यवस्था
- पाठांश

इकाई 1 संत गंगादास एवं भारतेंदु हरिश्चंद्र

1.0 परिचय

संत गंगादास अपने समय के विद्वान पंडित थे। इनका जन्म सन् 1823 में दिल्ली मुरादाबाद मार्ग पर स्थित रसूलपुर बहलोतपुर ग्राम में हुआ माना जाता है। गंगादास जी ने काशी में रहकर 20 वर्षों तक वेदांत, व्याकरण, गीता, महाभारत, रामायण, रामचरितमानस, आदि दार्शनिक ग्रंथों का अध्ययन किया। संत जी ने जिला मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली और राजस्थान में भी विचरण किया। संत गंगादास जी ने 90 वर्ष की अवधि में लगभग 50 काव्य-ग्रंथों और अनेक स्फुट निर्गुण पदों की रचना की। इनमें से 45 काव्य ग्रंथ और लगभग 3000 स्फुट पद प्राप्त हो गए हैं। इनकी रचनाओं में 25 कथा काव्य व शेष रचनाएं मुक्तक हैं। ज्ञान, भक्ति और काव्य की दृष्टि से संत कवि गंगादास का अनूठा व्यक्तित्व हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी संत गंगादास द्वारा रचित काव्य पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि- "हिंदी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका के अतिरिक्त संत काव्य की सौंदर्य दृष्टि और कला पर संत गंगादास का काव्य सुंदर प्रकाश डालता है।" डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार- "ज्ञान भक्ति और काव्य की दृष्टि से संत कवि गंगादास विशेष प्रतिभावान रहे हैं परंतु इनका काव्य अनुपलब्ध होने के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास में इनका उल्लेख नहीं हो सका था।"

संत गंगादास जी 1913 ई. में जन्माष्टमी को प्रात: 6 बजे ब्रह्मलीन हुए तथा उनकी इच्छा के अनुसार इनके शिष्यों ने उनका पार्थिव शरीर परम-पावनी गंगा नदी में प्रवाहित कर दिया।

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- खड़ी बोली का विकास तथा संत गंगादास की कविता का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- आधुनिक राजनीतिक जागरण और संत गंगादास के काव्य के अंतर्गत सामाजिक और पौराणिक चेतना के स्वरूप का विस्तृत अध्ययन कर पाएंगे;
- गंगादास द्वारा रचित 'कलियुग वर्णन' कविता का विश्लेषण कर पाएंगे।

1.2 खड़ी बोली और संत गंगादास की कविता

रीतिकालीन काव्य की भाषा ब्रजभाषा रही परंतु आधुनिक युग का प्रारंभ होते होते ब्रजभाषा के संकेत शनैः शनैः क्षीण होने लगे तथा खड़ी बोली का आगमन साहित्य के क्षेत्र में प्रारंभ होने लगा। पद्य की भाषा तो अब भी ब्रज ही थी, परंतु उसमें खड़ी बोली के संकेत दिखाई पड़ने लगे थे। गद्य लेखन का सूत्रपात हो चुका था, खड़ी बोली में गद्य लिखा जा रहा था और इसमें ब्रजभाषा के संकेत मिल रहे थे अर्थात यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि भाषा की दृष्टि से यह संक्रांति काल था। ब्रजभाषा का अस्तित्व समाप्त हो रहा था तथा खड़ी बोली का विकास हो रहा था, किंतु खड़ी बोली के अस्तित्व के लिए यह बहुत कठिनतम समय था क्योंकि इसके साथ-साथ उर्दू को गंभीरता से साहित्य की भाषा के साथ-साथ राजभाषा बनाने की मांग उठ रही थी। हिंदी-उर्दू का यह मसला काफी गंभीर हो चला था। तत्कालीन विद्वान इसे 'हिंदवी' कहकर संबोधित करते थे। राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद इसके समर्थन में कहते हैं- "अब इस जबान को अर्थात उस प्राकृत को जिसमें फारसी मिली और अरबी मिली अब चाहे हिंदी कहो चाहे हिंदुस्तानी, भाषा कहो चाहे ब्रजभाषा, रेखता कहो चाहे खरी बोली, उर्दू कहो चाहे उर्दूएमुअल्ला इसके बीज तभी बोए गए जब महमूद गजनवी ने चढ़ाई की और मुसलमानों की इस मुल्क पर तवज्जुह हुई।" इनसे पूर्व भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी खड़ी बोली की हिमायत की। आचार्य शुक्ल ने भी खड़ी बोली के उद्भव को उस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से जोड़ा जिससे सितारे हिंद ने जोड़ा है। इस बात को एक रूसी विद्वान बोरी क्यूलवे ने भी स्पष्ट किया है- "यह मान लिया गया है कि साहित्यिक हिंदी की बुनियाद खड़ी बोली है जिसे अक्सर दिल्ली-मेरठ की बोली के रूप में परिभाषित किया जाता है। बोलचाल का यह रूप ग्यारहवीं-बारहवीं सदियों में निर्मित होना शुरू हुआ जब हिन्दुस्तान के भूभाग पर से विजेताओं के कितने ही रेले गुजरे।" इन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि खड़ी बोली कोई तीन सदियों तक बोलचाल की भाषा बनी रही, और बोलचाल की भाषा के रूप में खड़ी बोली के इस प्रसार का ऐतिहासिक महत्व यह रहा कि इसी ने वे स्थितियां पैदा कीं जिनके कारण मुगल दरबारों से जुड़े उन कवियों को खड़ी बोली में शायरी करने के लिए प्रेरित किया जो तब तक फारसी में ही लिख रहे थे। जो फारसी में कविता लिखते थे उन्होंने खड़ी बोली में भी कविता करना शुरू कर दिया।

इस प्रकार खड़ी बोली के इतिहास को विद्वानों ने मुगलकाल से जोड़कर देखा तथा साहित्य के क्षेत्र में इसका आना अनायास न मानकर परंपरानुकूल माना।

मध्यकालीन हिंदी साहित्य से आधुनिक काल को अलग करने वाला एक क्षेत्र यदि नवजागरण और आधुनिकता बोध का विकास है तो दूसरा अति महत्वपूर्ण क्षेत्र है साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में खड़ी बोली को अपनाना और इसका विकास। बहुत सारे ऐसे कारण रहे जिनके कारण आधुनिक युग से पूर्व राजस्थानी, मैथिली, अवधी, ब्रजभाषा इत्यादि भाषाएं हिंदी साहित्य में अभिव्यक्ति का माध्यम बनी रहीं। खड़ी बोली को आधुनिक काल के साहित्यकारों ने पहले तो गद्य की भाषा के रूप में भी स्वीकार किया। खड़ी बोली का आधुनिक काल में ही जन्म लेना नहीं मानना चाहिए। यह बोली जनभाषा के रूप में उतनी ही पुरानी है जितनी हिंदी क्षेत्र की अन्य बोलियां। अमीर खुसरो की पहेलियां, मुकरियां और मुखन इसके उदाहरण हैं।

खड़ी बोली मूलतः दिल्ली, मेरठ, गाजियाबाद, मुरादाबाद और इसके आसपास के क्षेत्रों में बोली जाने वाली बोली है। इसकी उत्पत्ति लगभग ग्यारहवीं शताब्दी में अपभ्रंश से वैसे ही हुई जैसे अन्य हिंदी की बोलियों की हुई थी। खड़ी बोली के नाम से पुकारी जाने वाली इस भाषा को पूर्व में हिंदी, हिन्द की या दक्खिनी हिंदी के नाम से पुकारा जाता था। सबसे पहले 1803 ई. में लल्लू लाल जी और सदल मिश्र ने इसे खड़ी बोली कहा। इसका नाम खड़ी बोली कैसे पड़ा तथा इसका क्या अर्थ है यह विवादास्पद रहा है।

भारतेंदु युग में खड़ी बोली गद्य की प्रमुख भाषा के रूप में जानी जाने लगी थी, परंतु इससे पहले ही इसने लगभग संपूर्ण भारत वर्ष में संप्रेषण की भाषा के रूप में ख्याति प्राप्त कर ली थी। नाथपंथी जोगियों के साथ-साथ यह राजस्थान, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल में प्रसिद्ध हुई। दक्षिण और महाराष्ट्र के महानुभावों ने तथा वारकारी संप्रदाय के अनुयायियों ने इसका दक्षिण भारत में प्रचार किया कबीर पंथी संतों और सिख संप्रदाय के अनुयायियों ने इसे वहा वहां फैलाया जहां वे मत प्रचार हेतु गए। 12वीं सदी में यह बरार, हैदराबाद, महाराष्ट्र और मैसूर आदि में फैल गई। मुस्लिमों ने भी दक्षिण भारत में इसे खासा प्रचारित किया। खिलजी वंश के समय से ही मुस्लिमों ने दक्षिण के जिन-जिन राज्यों को जीता और शासन व्यवस्था कायम की वहां-वहां शासन प्रबंध में, आपसी व्यवहार और बोलचाल की भाषा के रूप में खड़ी बोली को ही मान्यता दी। दक्षिणी भारत में संतों और मुस्लिमों के प्रभाव द्वारा इसका जो रूप विकसित हुआ वह 'दक्खिनी' कहलाया। दिल्ली के व्यापारियों ने भी व्यापारिक यात्राओं के माध्यम से इसे समस्त भारतवर्ष में फैलाया। अखिल भारतीय स्तर पर खड़ी बोली का जितना प्रचार प्रसार हुआ है उतना किसी अन्य बोली का नहीं हुआ।

सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली का प्रयोग किया। पहेलियां, मुकरियां और कविता लेखन में उनके द्वारा शुद्ध एवं परिनिष्ठित खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है। कुछ विद्वान इसे संदेह से देखते हैं। संत कवियों की साखियों में, इसका प्रयोग देखा जाता है। इसके अलावा रहीम, मीरा, गंग, सूदन, कुलपति, आलम, शेख, भूषण, नागरीपास, ग्वाल, घनानंद, बेनी इत्यादि कवियों की रचनाओं में भी यत्र-तत्र खड़ी बोली के दर्शन हो ही जाते हैं। भारतेंदु से पूर्व दक्षिण के कवियों एवं गद्यकारों ने भी खड़ी बोली का प्रयोग किया है। मुहम्मद कुलीकुतुब शाह, गेसूदराज, इब्ननिशाती और शेखसादी आदि ने भी मूलतः खड़ी बोली में रचनाएं लिखीं हैं।

खड़ी बोली हिंदी के प्रमुख स्थान माने जाने वाले मेरठ क्षेत्र की साहित्यिक चेतना का हिंदी साहित्य में प्रमुख स्थान है। राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास में मेरठ क्षेत्र के साहित्यकारों का हिंदी साहित्य में योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। भारत में जब स्वतंत्रता आंदोलन का सूत्रपात हुआ तब 1857 की क्रांति के समय प्रमुख स्थान माना जाने वाले मेरठ जनपद ने अपनी राष्ट्रभक्ति का पूर्ण परिचय दिया। हिंदी के नवजागरण काल में मेरठ जनपद के कवियों एवं लेखकों ने खड़ी बोली हिंदी के माध्यम से अपने हृदयोद्गारों और भावनाओं को जनता के समक्ष रखा तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को एक नई दिशा प्रदान की। इन्हीं कवियों की श्रेणी में एक नाम ऐसा भी है जिसे हिंदी साहित्य के इतिहास पन्नों पर अधिक ख्याति और प्रसिद्धि तो प्राप्त नहीं हुई परंतु खड़ी बोली हिंदी काव्य को अपनी लेखनी के माध्यम से जिसने एक नए मार्ग को प्रशस्त किया। यह कवि थे संत गंगादास। इनका नामकरण बाल्यकाल में गंगावक्ष हुआ था किंतु माता-पिता के देहावसानोपरांत इन्होंने महात्मा विष्णुदास उदासी से दीक्षा प्राप्त की तथा गंगावक्ष से गंगादास बन गए। ब्रह्मचर्य और संतमार्ग को अपनाने के कारण ये लोक में संत नाम से प्रचलित हुए। इस महान संत प्रवृति वाले कवि ने लगभग 50 काव्य ग्रंथों और अनेक स्फुट निर्गुण पदों की रचना करके भारतेंदु हरिश्चंद्र के काव्य क्षेत्र में आने से बहुत पहले ही खड़ी बोली हिंदी को वह गरिमा प्रदान की जो कि बाद में विकसित होकर हिंदी की आधुनिक कविता को समृद्ध बना गई। यह खेद का विषय ही है कि ऐसा खड़ी बोली हिंदी का भावुक और विशालमना कवि साहित्यकारों की दृष्टि से कैसे बचा रह गया।

संत गंगादास को यदि आधुनिक हिंदी कविता में पहला कवि माना जाए जिसने खड़ी बोली हिंदी में कविता कर अपने काव्य को समृद्ध करते करते खड़ी बोली हिंदी को भी एक नया आयाम दिया तो अतिशयोक्ति न होगी। आधुनिक हिंदी कविता के प्रेरणा स्रोत के रूप में इनका काव्य खड़ी बोली हिंदी कविता के विकास पथ में मील का पत्थर है। संत गंगादास के काव्य की एक और ऐसी विशेषता है जो कि अन्य खड़ी बोली हिंदी के आधुनिक कवियों में बिरले ही पायी जाती है। वह है कि इनके काव्य में संत कबीरदास के काव्य की फक्कड़ता का रूप देखने को मिलता है तथा तुलसीदास की समन्वय भावना के भी यहां दर्शन होते हैं। इसके साथ-साथ केशवदास कवि जैसी छंद योजना और कवि बिहारी की कला के दर्शन भी होते हैं। इन चारों कवियों की प्रवृत्तियां एक साथ ही कवि संत गंगादास के काव्य में प्राप्त होती हैं।

इन्होंने खड़ी बोली हिंदी में 25 कथाकाव्यों और सैकड़ों निर्गुण भक्ति संबंधित पदो की रचना की है। इनकी खड़ी बोली हिंदी की कविता हिंदी साहित्य का अमूल्य भंडार है। सामाजिक, नीतिगत और पौराणिक विषयों को लेकर इन्होंने अपनी काव्य रचनाओं को सजाया संवारा। इनके प्रमुख काव्य ग्रंथ निम्नलिखित हैं–

(i) पार्वती मंगल

(ii) नल दमयंती

(iii) कलयुग वर्णन

(iv) नरसी भक्त

(v) ध्रुव भक्त

(vi) नल पुराण

(vii) सुदामा चरित

(viii) महाभारत पदावली

(ix) बलि

(x) बलि के पद

(xi) रुकमणी मंगल

(xii) प्रह्लाद भक्त

(xiii) भ्रमरगीत मंजरी

(xiv) हरिचंद होली

(xv) गिरिराज पूजा

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में कुछ विद्वानों ने भारतेंदु हरिश्चंद्र को प्रथम कवि माने जाने पर प्रश्न चिह्न अंकित कर दिया है। ऐसे विद्वानों का कहना है कि संत गंगादास के साहित्य का हिंदी साहित्य में परिचय होने पर साहित्य संसार को पूर्व धारणाएं बदलनी होंगी। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक का कथन है कि- "संत कवि गंगादास का काव्य भारतेंदु पूर्व खड़ी बोली हिंदी काव्य का उच्चतम निर्देशन है और हिंदी साहित्य के इतिहास की अनेक पुरानी मान्यताओं के परिवर्तन का स्पष्ट उद्घोष भी करता है।" डॉ. स्नातक का यह कथन इस बात की पुष्टि करता है कि संत गंगादास को आधुनिक हिंदी के प्रथम खड़ी बोली हिंदी कवि के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए।

डॉ. लक्ष्मण स्वरूप शर्मा का मत है कि- "जब ग्रियर्सन, भारतेंदु आदि अनेकानेक साहित्यकार खड़ी बोली में हिंदी काव्य सृजन की असंभावना का उद्घोष कर रहे थे, उससे भी पहले गंगादास खड़ी बोली के ललित और काव्योपयोगी स्वरूप का निर्माण करके उसमें मनोहारी काव्य की रचना कर चुके थे।" डॉ. लक्ष्मण स्वरूप शर्मा के कथन से भी यही स्पष्ट हो रहा है कि वे भी संत गंगादास को खड़ी बोली हिंदी का प्रथम आधुनिक कवि मानते हैं।

अत: विद्वानों के इन कथनों के आधार पर यह माना जाना प्रस्तावित है कि संत गंगादास भारतेंदु के पूर्ववर्ती खड़ी बोली हिंदी के कवि हैं।" डॉ. गोपीनाथ तिवारी और डॉ. रामकुमार वर्मा का भी यही मत है।

संत गंगादास का काव्य खड़ी बोली की प्रांजलता और मधुरता से युक्त है। संत गंगादास ने समाज के तत्कालीन प्रभावों को ग्रहण किया और अपने काव्य में उसे प्रमुख स्थान दिया। उन्होंने पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर खड़ी बोली हिंदी में उनके सरल एवं स्पष्ट रूप को जनता के समक्ष रखा। जब उनसे स्वनाम पूछा गया तो सहज रूप में वे सरल भाषा में कहते हैं–

"बाराह रूप के दरश हो निशिबासर मोहि जान
गंगादास है नाम मम तुम से कहूं बखान।"

बड़ी ही सरलतापूर्वक वे अपना परिचय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

संत गंगादास प्रकृति को अपने पूर्ववर्ती रीतिकालीन और भक्तिकालीन कवियों की ही भांति अपने काव्य में महत्व देते हैं। षडऋतु वर्णन अथवा बारहमासा का पारंपरिक चित्रण तो उनके काव्य में नहीं मिलता परंतु प्रकृति के सुंदर दृश्य यदा-कदा काव्य में मिल ही जाते हैं। वर्षा ऋतु में श्रावण मास का सुंदर वर्णन खड़ी बोली हिंदी में जो उन्होंने प्रस्तुत किया है वह अद्वितीय है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

"कोई सखी गावतीं बजावतीं रिझावतीं,
घुमड़ि घुमड़ि घटा घेरि घेरि आवतीं।।
परत फुहार सुकुमार के बदन पर,
बसन सुरंग रंग अंग छबि छावतीं।।
कहै गंगादास रितु सावन सुहावन है,
पावन पुनित लखि रीझि के मनावतीं।।"

प्रकृति के ऐसे सुंदर चित्रण के सैकड़ों उदाहरण उनके काव्य में भरे पड़े हैं।

संत गंगादास की खड़ी बोली में रचित कुण्डलियां भी बहुत प्रचलित हैं। वे नीति से विमुख मनुष्यों को सरल भाषा में, सहज रूप में बड़े प्रेम से उपदेश देते हुए दिखाई पड़ते हैं। गंगादास ने वेद, पुराण आदि का गहन अध्ययन किया था। उन्हें छंद शास्त्र का भी पूर्ण ज्ञान था। साहित्य में भी उनकी पूर्ण रुचि थी। अपनी इन विशेषताओं के साथ वे नीतिगत बात कहते हुए बड़े प्रेमपूर्वक समझाते हैं-

"बोए पेड़ बबूल के, खाना चाहे दाख।
ये गुन मत परकट करें, मन के मन में राख।।
मन के मन में राख, मनोरथ झूठे तेरे।
ये आगम के कथन, कदी फिरते ना फेरे।।
गंगादास कह मूढ़ समय बीती जब रोए।
दाख कहां से खाए पेड़ कीकर के बोए।।"

'जैसी करनी वैसी भरनी' कहावत को प्रस्तुत कुण्डलियां छंद में सार्थक करते हुए वे समझाते हैं कि बबूल का पेड़ बोकर दाख खाने की इच्छा मूर्खता है। वे कथनी करनी में अंतर न करने की सीख देते हैं। सरल खड़ी बोली हिंदी में ही इस प्रकार की शिक्षा देना उनके काव्य की विशेषता है।

खड़ी बोली हिंदी की विशेषता है कि जितनी नम्रता से इसमें कवि अपनी बात को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं उतनी ही कठोरतापूर्वक बात रखे जाने की क्षमता इस भाषा में है। अपनी रचना 'कलियुग वर्णन' में संत गंगादास ने बहुत ही दृढ़ता के साथ वीरत्व का सा भाव लिये हुए अपनी बात रखी है। धर्म से विमुख होकर भारतीय अंग्रेजों के आगे घुटने टेक कर बैठ गए हैं। अंग्रेजी गीदड़ों से भारतीय शेर डर रहे हैं। क्षत्रियों ने अस्त्र-शस्त्रों का त्याग कर दिया है तथा युद्ध की रणभेरी सुनकर ढेर हो गए हैं। यह कैसा समय आ गया है। कवि इन सभी स्थितियों का वर्णन करते हुए भारतमाता के वीर पुत्रों का आह्वान कर रहा है–

"धर्म से सब मुख फेर गये हैं
गौदड़ से डर शेर गये हैं
रण सुनतेई खन गेर गये हैं
क्षत्री तेगे तीर
बली कलयुग के आने सै।"

यही नहीं उस समय परमार्थ की भावना लुप्त होती जा रही थी। अंग्रेजों की दासता से क्षुब्ध भारतीय स्वार्थपरता में अंधे होते जा रहे थे। धर्म का नाश सा हो गया था। वेदों की ऋचाओं पर कोई ध्यान नहीं देता था। प्राचीन ऋषि मुनियों ने जो ज्ञान की बातें कहीं थीं उन पर कोई अमल नहीं करता था। संत गंगादास इससे क्षुब्ध होकर मानव को लताड़ लगाते हुए दिखाई पड़ते हैं। वे कहते हैं-

"परमारथ स्वारथ में बह गए
धर्महीन नर जगत में रह गए
कह गंगादास मुनी सब कह गए
अर वेद साखा भरतें हैं
लिख ऋषि गयं गति करम की।"

अत: आधुनिक हिंदी साहित्य में खड़ी बोली हिंदी कविता के क्षेत्र में संत कवि गंगादास का महत्वपूर्ण स्थान है। उनका काव्य खड़ी बोली हिंदी की कविता को समृद्ध करता है तथा खड़ी बोली हिंदी के विकास में मील का पत्थर है। ऐसे कवियों का काव्य हिंदी साहित्य को नई गति प्रदान करता है तथा आने वाली साहित्यिक पीढ़ी के लिए प्रेरणा स्रोत बनता है। नि:संदेह संत गंगादास का काव्य खड़ी बोली का श्रेष्ठ काव्य है।

1.3 आधुनिक राजनीतिक जागरण और संत गंगादास के काव्य में सामाजिक और पौराणिक चेतना का स्वरूप

आधुनिक काल हिंदी साहित्य के इतिहास का एक महत्वपूर्ण समय है। इस समय में भारत पर मुगलों का शासन पूरी तरह समाप्त होता जा रहा था। किंतु शासन व्यवस्था हिंदुओं के हाथों में न आकर दूसरे ही विदेशी आक्रांताओं के हाथ में जा रही थी और ये थे ब्रिटिश। ईस्ट इंडिया कंपनी के रूप में भारतीय राजनीति में दखल देने वाले अंग्रेजों ने व्यापार के साथ-साथ भारतीयों का शोषण करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी। ऊपर से भारतीयों का मित्र बनकर अंदर से उन्होंने भारतीय जनता का खून ही चूसा।

अंग्रेज बुद्धि में तेज तथा कूटनीतिज्ञ थे, जो भोली भारतीय जनता का शासन व्यवस्था के नाम पर शोषण कर रहे थे। जनता समझ भी रही थी किंतु एकता के अभाव में कशमकश में थी। जनता परतंत्रता के खिलाफ आवाज उठाना चाहती थी परंतु अंग्रेजों के भय से म मसोस कर रह जाती थी। जनता के अंदर शोषण के विरुद्ध जो असंतोष पनप रहा था उसक ही परिणाम था '1857 की क्रांति'। इसके साथ-साथ राजनीतिक क्षेत्र में भी परिवर्तन आए क्रांति को कुचल दिया गया। ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से छिनकर शासन इंग्लैंड क

महारानी विक्टोरिया की सरपरस्ती में चला गया। भारतीयों के मन में एक नई आशा का संचार हुआ क्योंकि महारानी की ओर से एक घोषणा पत्र जारी किया गया था जिसमें भारतीयों को यह अहसास दिलाया गया था कि भारत में भी विक्टोरिया शासन की वैसी ही नीतियां होंगी जैसी इंग्लैंड में है। भारत भी इंग्लैंड की तरह उन्नति की ओर अग्रसर होगा। किंतु लोगों की आशाओं और अपेक्षाओं पर उस समय कुठाराघात हुआ, जब उन्होंने महसूस किया कि शोषण का नया दौर प्रारंभ हो चुका है। अंग्रेजी राजनीति नए सिरे से भारत की शोषण नीति तैयार कर रही थी। विदेशी शासन से भारतीय जनता पुनः त्रस्त अनुभव करने लगी थी। जो कवि राज्याश्रय में रहकर कविता कर रहे थे वे राजनीतिक उथल-पुथल का शिकार होकर जनता के बीच आ गए। जन संपर्क ने उनमें राष्ट्रवादिता एवं देशभक्ति का जज्बा पैदा किया। जब उनका ध्यान अंग्रेजों द्वारा की जा रही भारत दुर्दशा की ओर गया तब देश-दशा एवं समाज की पतनोन्मुख दशा पर ये कवि अपनी रचनाओं का लेखन करने लगे। व्यापार करने के लिए भारत आए अंग्रेजों ने तत्कालीन भारत की राजनीति में अपनी जड़ें इतनी गहराई तक जमा लीं कि जनता को अब यही लगता था कि अंग्रेजों की गुलामी ही सदा सहनी पड़ेगी। इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति से भारत की आर्थिक स्थिति और विपन्न होती चली गई। भारत के कच्चे माल का प्रयोग इंग्लैंड की मशीनों के उत्पादन के लिए किया जाने लगा और तैयार माल को भारत के बाजारों में ही ऊंची कीमतों में बेचा जाने लगा। भारत के कुटीर उद्योग समाप्त प्राय हो गये। सभी परिस्थितियों से भारतीय जनता पूरी तरह त्रस्त हो गई। भारतेंदु युग से पूर्व ही भारत की इन राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो रहा था। तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति से अंग्रेज अपनी कूटनीति के बल पर पूरा लाभ प्राप्त कर रहे थे। महारानी के घोषणा-पत्र के अनुसार कुछ कार्य भारत की उन्नति के लिए हुआ। यातायात की सुविधा रेल, डाक, तार आदि की स्थापना की गई किंतु ये सब सुविधाएं भारतीयों की उन्नति के लिए न करके शासन तंत्र को मजबूत करने के लिए की गई। अंग्रेजी सरकार द्वारा इन वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग भारतीयों के लिए वरदान साबित हो गया। अप्रत्यक्ष रूप से भारतीयों में एक जन-जागृति लाने में यह सहायक सिद्ध हुआ। अंग्रेजों की शोषण नीति एवं दमनकारी नीति की कई लेखकों एवं विद्वानों ने कटु आलोचना की। अंग्रेजों के शोषण एवं दमन से क्षुब्ध जनता की आखें खुली और वे समझ गए कि अंग्रेज भारत के रक्षक नहीं अपितु भक्षक हैं। यही समय था जब भारतेंदु हरिश्चंद्र और कुछ अन्य लेखकों ने जनजागरण के लिए कार्य किया। राजनीतिक जागरण में इन लेखकों ने वो कार्य किया जो भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में मील का पत्थर साबित हुआ। जनजागृति लाने के लिए उत्साहवर्द्धक काव्य की रचना हुई। जगह-जगह सभाएं की गईं। जनहित में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ और चारों तरफ से सोई हुई, निराशा के माहौल में डूबी त्रस्त जनता को जगाने के प्रयास प्रारंभ हो गए।

साहित्यिक क्षेत्र में अंग्रेजी राज के खिलाफ आवाज उठायी जाने लगी थी। संत गंगादास ने भी इस भयावहता का यथार्थ वर्णन किया है। वे इसे कलयुग तक कह डालते हैं।

"अंग विभूती बाग में बसकर
दिन के साधु रात में तस्कर
दुनिया कू लूटै अपजस कर
दगाबाज बेपीर।"

इस लूट खसोट के विरुद्ध आवाज उठाने का जज्बा भी वे अपने काव्य में पैदा करते हैं।

तत्कालीन समाज में भी अनेकानेक कुरीतियां विद्यमान थीं। समाज सुधार का यह कार्य भी आधुनिक युग में कवियों ने किया। उनकी समाज के प्रति चेतना देखते ही बनती है। समाज की भयावह स्थिति से वे बारम्बार लोगों को चेतावनी देते हैं। हिंदी कवियों पर बंगाल के ब्रह्मसमाज एवं गुजरात के आर्य समाज का गहरा प्रभाव पड़ा। समाज सुधार संबंधी प्रेरणा उत्तर भारत में अधिकांश कवियों ने आर्य समाज से ग्रहण की। संत गंगादास भी ऐसे ही कवि थे जिन्होंने वेदों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए समाज सुधार को अपनी वाणी से मुखर किया। वेदों का महत्व निर्धारित करते हुए उनका कथन है कि–

"गाओ जो कुछ वेद ने गाया, गाना सार।
जिसे ब्रह्म आगम कहें, सो सागर आधार।।"

समाज में कुछ ऐसे लोग विद्यमान हैं जो अपने सभी अवगुणों को गुण मानते हैं तथा दूसरों के गुणों को भी अवगुण के समान देखते हैं। ऐसे व्यक्ति सदैव दूसरों की निंदा करते हैं तथा भ्रम में फंसे ऐसे लोग इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं-

"जो पर के अवगुण लखै
अपने राखै गूढ़।
सो भगवत के चोर हैं,
मंदमति जड़ मूढ़ करें,
निंदा जो पर की।
बाहर भरमते फिरें,
डगर भूले निज घर की
गंगादास बेगुरु पते पाये ना घर के।
ओ पगले हैं आप पाप देखें जो पर के।।"

गंगादास जी के इस कथन से गुरु की महत्ता का भी पता चलता है। उनका कहना है कि बिना गुरु के तो इनसान को अपने स्वयं के ठिकाने का ज्ञान नहीं हो पाता तथा दूसरे के पाप देखने वाला पागल के समान है।

समय बड़ा बलवान है। मनुष्य को समय के मूल्य को समझना चाहिए। समय की महत्ता को न समझने वाला इसान समय निकलने पर पछताता है। ठीक इसी प्रकार से मानव जैसे कर्म करता है उसे वैसे ही फल मिलते हैं। "जैसी करनी वैसी भरनी" के सिद्धांत को समाज के सामने रखते हुए चेतावनी दी है कि कीकर का पेड़ बोकर दाख के फल की आशा नहीं की जा सकती–

गंगादास कह मूढ़ समय बीती जब रोए।
दाख कहां से खाए पेड़ कीकर के बोए।।"

आगे चलकर वे मन की अनन्त इच्छाओं और आकांक्षाओं को मन में रखने की बात कहते हैं। मन के वशीभूत होकर इनसान ना जाने कितने कुकर्म करता है। इस प्रकार के लोगों को सीख देते हुए गंगादास कहते हैं–

"बोए पेड़ बबूल के, खाना चाहे दाख
ये गुन मत परकट करे, मन के मन में राख।।
मन के मन में राख, मनोरथ झूठे तेरे।
ये आगम के कथन, कदी फिरते ना फेरे।।"

समाज में कपट और धूर्तता का बोलबाला था। साधु और संतों ने अपने कुचक्रों से भोली जनता को फंसा रखा था। वैराग्य के नाम पर समाज को भ्रम में डालकर घर त्याग कर संन्यासी बन गए और धन लिप्सा में लगकर धनवान बन गए। संत गंगादास ऐसे कपटियों से सावधान रहने को कहते हैं–

"वासना सहित विकारी हो गये, संन्यास धनधारी हो गये
घर तज के घरबारी हो गये फूट गई तकदीर।"

ये साधु संन्यासी ही दिन में साधु बनकर रात में तस्करी जैसे घृणित कार्य में लिप्त रहते हैं। दुनिया को लूटकर अपयश कमाने वाले दगाबाजों से सावधान करते हैं। उनका यथार्थ चित्र खींचते हुए संत गंगादास का कथन है–

"अग विभूति बाग में बस कर
दिन के साधु रात में तस्कर।
दुनिया कू लूटैं अपजस कर,
दगाबाज बेपीर
बली कलयुग के आने सैं।"

कबीर की भाति समाज के प्रति अपने चक्षुओं को खोलकर रखने वाले संत गंगादास राष्ट्र के प्रति भी अपने भावों को व्यक्त करते हैं। समाज में वे राष्ट्र की खराब स्थिति को भी चित्रित करते हैं–

"हिन्दुस्तान है खराब आब आज तारी गई
दयाहीन जड़जीव भये मती मारी गई।
पाप क्यूं न होते वेद बात ना विचारी गई।"

समाज में जाति वर्ग जिन कर्मों के नाम से जाने जाते थे वे अपने कर्तव्यों से विमुख हो गए थे। ब्राह्मण वेदों की ऋचाओं से विमुख हो गए हैं। क्षत्रियों में युद्ध के प्रति मोह नहीं रहा। शूद्र और वैश्यों के मार्ग भी सीधे नहीं रहे। गृहस्थ लोग कंगाल हो गए हैं और साधु संन्यासी मालदार होते जा रहे हैं। ऐसा वातावरण अंग्रेज राज के कारण ही बना है। राष्ट्रवादिता के गुणों का समाज में सम्मान करना होगा तभी पुनः खोई हुई प्रतिष्ठा वापस लौटेगी। समाज के इस कटु यथार्थ का वर्णन भी उनकी कलम से हुआ है–

विप्र वेदहीन भये तेजहीन राजपूत
वैश्य और शूद्रों के मार्ग ना रहे सूत
गृही तो कंगाल मालदार यति अवधूत।।
वेदन की बात सब बिना ही विश्वास कहैं।

धर्म को विनाशी और पाप को विनाश कहैं।।
गंगा महारानी जी ने, हमें गंगादास कहै।''

समाज धर्म का नाश करने को तुला हुआ था। समाज में हाहाकार मचा हुआ था। संत गंगादास से यह सब सहन नहीं हुआ। तुलसीदास की 'कवितावली' में हुए कलियुग के वर्णन से प्रेरणा पाकर संत गंगादास ने भी 'कलियुग वर्णन' नाम से पूरी रचना लिख डाली। यह रचना संत गंगादास की समाज चेतना में मील के पत्थर के समान है।

संत गंगादास के काव्य में सामाजिक चेतना के साथ-साथ पौराणिक चेतना भी प्रमुख रूप से मुखरित हुई है। इस संबंध में डॉ. जगन्नाथ शर्मा का मत है कि ''रिश्वतखोर अदालतों, भ्रष्ट अधिकारियों और बेईमानी कर्मचारियों का सांगोपांग चित्रण करने वाले संत गंगादास भारतीय स्वतंत्रता के प्रबल पक्षधर थे। यही कारण है कि संत गंगादास के काव्य में नैतिक मूल्यों की स्थापना के साथ-साथ राष्ट्र को दृढ़ बनाने के प्रयास मुखरित हुए हैं।''

संत गंगादास का काव्यानुशीलन करने के उपरांत साफतौर पर यह दृष्टिगत होता है कि उनके काव्य में पौराणिक मान्यताओं एवं विचारों को पूर्ण प्रश्रय मिला है। वेदों के प्रति संत गंगादास का विशेष लगाव था। वेदों की ऋचाओं के व्यक्त विचार उन्हें प्रिय थे। वेदों के प्रति उनका यह मोह उनके काव्य में स्पष्ट दिखाई पड़ता है-

''गाओ जो कुछ वेद ने गाया, गाना सार।
जिसे ब्रह्म आगम कहें सो सागर आधार।
सो सागर आधार लहर परपंच पिछानो।
फेन बुदबुद नाम जुड़े होने से मानो।
गंगादास कहें नाम-रूप सब ब्रह्म लखाओ।
अस्ति, भाति, प्रिय एक सदा उनके गुण गाओ।।''

वेद उन्हें प्रेरणा देते हैं, जो कुछ ब्रह्मसार वेदों में है उसे वे अपनाने की सलाह देते हैं। वेदों को ही वे जीवन का आधार मानते हैं।

संत गंगादास की रुचि प्रारंभ से ही अध्यात्म के प्रति रही है। बाल्यकाल से ही इन्हें लोग 'भगत जी' कहकर संबोधित करते थे। लगभग 12 वर्ष की अबोध अल्पायु में ही ये किसी अच्छे गुरु की खोज में निकल पड़े थे तथा बाबा विष्णुदास उदासीन के संपर्क में आए, इनकी वैराग्य वृत्ति देखकर ही बाबा विष्णुदास ने इन्हें अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। गंगावक्ष से गंगादास बने ब्रह्मचारी ने पौराणिक ग्रंथों का हृदय से पठन पाठन किया तथा उनसे प्रेरणा पाते हुए अनेकानेक ग्रंथों का प्रणयन किया जो कि पौराणिक आख्यानों पर आधारित थे पार्वती-मंगल, नल दमयंती, ध्रुव भक्त, कृष्ण जन्म, नल पुराण, राम कथा, नाग लीला, सुदामा-चरित, महाभारत पदावली, बलि के पद, रुक्मणी मंगल प्रह्लाद भक्त, चंद्रावती-नासिकेत, भ्रमरगीत मंजरी, गिरिराज पूजा, द्रोपदी चीर आदि उनकी ऐसी ही रचनाएं हैं। ये सभी रचनाएं श्रीमद्भागवत, महाभारत और रामायण पर आधारित रचनाएं हैं। इनके इस काव्य की विशेषता है कि इसमें पिंगल, विराग, गुरुकृपा, माया, आशा, अहंकार, वियोग, उलटवासी, प्रकृति और पुरुष, आत्मा और परमात्मा, योग और साधना आदि गहन और दर्शन के विषयों को स्थानीय सहज सरल खड़ी बोली हिंदी में वर्णित है।

परमात्मा की स्तुति उनकी लगभग प्रत्येक रचना में मिलती है। आत्मा और परमात्मा के संबंध को वे गहनतम रूप में स्वीकार करते हैं। इस संसार रूपी सागर में फंसे हुए भक्त का उद्धार ईश्वर ही करते हैं। ईश्वर दीनों पर दया करने वाला है। पौराणिक परंपरा से चला आता ईश्वर का स्वरूप ऐसा है जो कि मोह रूपी अंधकार को दूर करता है, ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ज्ञान होने पर ही भक्त माया से दूर रह सकता है। यथा-

''माया मेरे हरी की, हरें हरी भगवान।
भगत जगत में जो फसे करें बरी भगवान।।
करें बरी भगवान, भाग से भगवत अपने।
इसे दीनदयाल हरी-हर चाहियें अपने।।
गंगादास परकास भया मोह-तिमिर मिटाया।
संत भए आनंद ज्ञान से तर गए माया।।''

ईश्वर के स्वरूप का आगे वर्णन करते हुए वे मानते हैं कि चाहे उसे राम कहो चाहे संत कह लो उसमें अंतर नहीं है ईश्वर अनादि है, अनन्त है। वह सबके अंदर विद्यमान है। राम और संत को बिना अंतर का मानते हुए उनका कथन है कि–

''अन्तर नहीं भगवान में राम कहो चाहे संत।
एक अंग तन संग में, रहे अनादि अनंत।।
रहे अनादि अनंत, सिद्ध गुरु साधक चेले।
ते हो गया अभेद भेद सतगुरु से लेले।।
गंगादास ऐं आप ओई मंत्री अर मंतर।
राम संत के बीच कड़ी रहना ना अंतर।।''

ईश्वर का यही स्वरूप मानव हृदय में विद्यमान रहना चाहिए। निर्गुण भक्ति साधना के प्रबल समर्थक कबीर की वाणी का पूरा प्रभाव संत गंगादास के काव्य में मिलता है। कबीर का कहना है कि राम की प्राप्ति हंसते-हंसते नहीं होती–

''हंस हंसता हरि मिले तो कोई दुहागिनी नाहीं।''

ईश्वर तो कठिन तप से प्राप्त होते हैं। प्रेम को पीर जलाती है तब कहीं ईश्वर की प्राप्ति होती है। ठीक इसी प्रकार का भाव संत गंगादास जी के काव्य में प्राप्त होता है–

''राम मिलैं हैं तप करने से
कोई कहै नहि भेष धरने सै
कोई कहै तीरथ तट मरने सै
आप भरमें सब कू भरमाय रहे
हरि पास नजर ना जाये।''

अर्थात ऐसे लोग स्वयं भी भ्रमित हैं और दूसरों को भी भ्रमित करते हैं जो कहते हैं ईश्वर साधु का वेष धारण करने से मिलते हैं या तीर्थ स्थानों पर नदी के तट पर प्राण त्यागने से मिलते हैं। ईश्वर तो कठिन तप करने से ही मिलते हैं।

इस प्रकार संत गंगादास के काव्य में सामाजिक और पौराणिक चेतना का पूर्ण विकास दृष्टिगत होता है। खड़ी बोली हिंदी क क्षेत्र से काव्य जगत में अपनी कविता को समाज से जोड़कर प्रस्तुत करने वाले संत कवि गंगादास की कविता आधुनिक हिंदी कविता में पाठकों के हाथों में तो नहीं जा पाई किंतु महान दार्शनिक, भावुक भक्त, उदासी संत गंगादास को आधुनिक युग में खड़ी बोली हिंदी का प्रथम कवि और आधुनिक काव्य के प्रेरणा स्रोत माना जाए तो अतिशयोक्ति न होगी।

1.4 पाठांश

'कलियुग वर्णन'

(816)

"चढ़ गया सर्वदल कोप के, कलि करने हानि धरम की।।
लाखों फौज कपट को ल्याया, लोभ को सेनापति बनाया।
पाप धर्म के सम्मुख आया, कुमति नगारा ठोक के।
जहां होय कवाद धरम की।।।।

'काम' फौज का दफेदार है, 'छल' घोड़े पे असवार है।
'झूठ' कली का अहल्कार है, रहे सदा साथ में 'शोक' के।
छड़ी हाथ ले बुरे करम की।।2।।

तृष्णा का समसेर लिया है, आसा तेगा फेर लिया है।
पाप ने धर्म को घेर लिया है, बलि धर्म का दुःख विलोक के।
लखी संत ने बात मरम की।।3।।

ले त्रिसूल सत ललकारे, कोप के मिथ्या के सिर तारे।
कह गंगादास लोभ जब मारे, धर्म ने पाप कू रोक के।
चमु मारी लोक सरम की।।4।।"

प्रसंग–हिंदी साहित्य की आधुनिक हिंदी कविता में खड़ी बोली में काव्य-लेखन करने का श्रेय संत गंगादास को दिया जाना चाहिए। पौराणिक एवं सामाजिक विषयों पर काव्य रचना करते हुए भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अहम भूमिका निभाने वाले संत गंगादास ने गोस्वामी तुलसीदास के कलियुग चित्रण की भांति 'कलियुग वर्णन' नाम रचना साहित्य जगत को प्रदान की जिसमें गिरती हुई सामाजिक प्रतिष्ठा एवं नैतिक व्यवस्था के प्रति रोष की भावना दिखाई पड़ती है।

प्रस्तुत पंक्तियां संत गंगादास के 'कलियुग वर्णन' रचना से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में कवि ने कलियुग के द्वारा भारत देश पर किये जा रहे अनैतिक कृत्यों का यथार्थ प्रस्तुत किया है। भारतीय नैतिक और सामाजिक बंधनों का त्याग कर राष्ट्र को विनाश की ओर ले जा रहे हैं। कलियुग के इस अनाचार का वर्णन करते हुए संत गंगादास का कथन है–

व्याख्या–धर्म की हानि करने के लिए कलयुग अपनी सेना सहित तैयार है। लोभ को सेनापति बनाकर वह लाखों सैनिकों के रूप में कपट को लेकर आया है। पाप कुमति रूपी नगाड़ा बजाते हुए धर्म के सामने आकर खड़ा हो गया है। अर्थात अधर्म धर्म पर भारी पड़ने लगा है। सब ओर भ्रम की स्थिति है। 'काम' फौज के मुखिया के रूप में सबसे ताकतवर दिखाई पड़ता है। छल घुड़सवार के रूप में इस युद्ध में तैनात है। शोक के साथ में सेना रहने वाला झूठ इस कलियुग में हलकारे के समान युद्ध का संदेश प्रसारित करता है। उसके हाथ में कुकर्मों की लाठी रहती है। धर्म के दुख को देखकर तृष्णा का पलड़ा भारी हो गया है। आशा ने धर्म की ओर से मुंह मोड़ लिया है पाप ने चारों ओर से धर्म को घेरकर असहाय करके छोड़ दिया है। संत लाचार होकर यह सब देख रहे हैं। मिथ्या ने कुकर्मों का त्रिशूल धारण कर रखा है तथा वह सत्य को ललकार रही है। संत गंगादास कहते हैं लोभियों ने पाप का सहारा लेकर धर्म का पथ रोक दिया है। चारों ओर बेशर्मी की सेना ने डेरा जमा लिया है।

विशेष

1. नैतिक और सामाजिक मूल्यों का त्याग किस प्रकार देश को विनाश की ओर ले जाता है। इसकी अभिव्यंजना व्यक्त की गई है।
2. भाषा सरल, सहज और भाव के अनुकूल है।

(817)

कवि जन अचरज करते हैं, गति देख के कलि कर्म की।।
पाप परायन नर अरुनारी, भये, गई सब की मति मारी।
जोगी संन्यासी ब्रह्मचारी, बुरे कर्म से ना डरते हैं।
कहीं लेश रही ना धरम की।।1।।
पुन्य का पता कहीं पाता ना, बढ़ गया झूठ अंत आता ना।
कलि का कपट कहा जाता ना, कहने से सरम मरते हैं।
कहीं भूल ना रही सर्म की।।2।।
नीतिहीन राजा अन्याई, वेद विरोधी सठ दुखदाई।
पंथ चले अब तौल न पाई, कपटी बाना धरते हैं।
सिर पै धर पाग भरम की।।3।।
परमारथ स्वारथ में बह गए, धर्म हीन नर जगत में रह गये।
कह गंगादास मुनी सब कह गये, अर वेद साख भरते हैं।
लिख ऋषि गये बाति करम की।।4।।

प्रसंग–प्रस्तुत पंक्तियां संत गंगादास के 'कलियुग का वर्णन' रचना से उद्धृत हैं।

व्याख्या–कलयुग की इस गति को देखकर कवियों को आश्चर्य हो रहा है कि ऐसा क्यों हो रहा है। पाप करने को लाचार नर नारियों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। योगी, संन्यासी और ब्रह्मचारी कुकर्म करने से घबराते नहीं है। धर्म का पूर्णतः नाश हो गया है। पुण्य ना जाने कहां

चला गया। झूठ दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। कवि कलयुग के कपट को कहने से भी शर्माने लगे हैं। शर्म का नामो-निशान ही मिट गया है। राजा, लोग नीतिहीन और अन्यायी हो गए हैं। ये दुष्ट वेदों का विरोध करते हैं। शायद अब धर्म का सर्वनाश निश्चित है। राजाओं ने भ्रम की पगड़ी अपने मस्तक पर धारण कर ली है तथा कपटियों का वेश धारण कर घूम रहे हैं। परमार्थ स्वार्थ के वशीभूत हो गया है। अब संसार में मात्र धर्महीन नर ही शेष रह गए हैं। गंगादास कहते हैं कि ऋषि मुनियों द्वारा रचित वेद जोकि कर्म की गति निर्धारित करते थे आज धुंधले से दिखाई पड़ते हैं।

विशेष

1. देश में धर्म, पुण्य व झूठ के वातावरण की सुदृढ़ स्थिति को व्यक्त किया गया है।
2. भारतीय संस्कृति व वेदों के महत्व को समाप्त होता देख कवियों के हृदय की मार्मिक अभिव्यंजना को प्रकट किया गया है।
3. सहज व सरल भाषा का प्रयोग किया गया है।

(818)

क्या कहैं धर्म की बात, जमाने बोदे आवेंगे।।
कोई सत्य की सार करै ना, कहने से इतबार करै ना।
मर्द का कहना नार करै ना, दगा करै दिन रात।
जमाने बोदे आवेंगे।।।।

पुत्र पिता कू कुफर बकेंगे, बहनों कू बदनजर तकेंगे।
ऐसे पाप कहां काट सकेंगे, करैं गुरुओं का अपघात।
जमाने बोदे आवेंगे।।2।।

त्रिया जिसको देखे धन धारी, उसी पुरुष की बन जाय नारी।
कथा कही जाती ना सारी, हों नित नवे उत्पात।
जमाने बोदे आवेंगे।।3।।

राजा परजा आप करेंगे, जान जान के पाप करेंगे।
गंगादास त्रय ताप करेंगे, अधम नींच कमजात
जमाने बोदे आवेंगे।।4।।

प्रसंग–प्रस्तुत पंक्तियां संत गंगादास के 'कलियुग का वर्णन' रचना से उद्धृत हैं।

व्याख्या–ऐसा बुरा समय आएगा कभी सोचा भी न था। धर्म की बात अब इस संसार में क्या कहूं। कुछ समझ नहीं आता। सत्य का आदर करने वाला कोई नहीं बचा। किसी को किसी पर विश्वास नहीं है। स्त्री अपने पति से दगा करती हैं तथा उनका कहना नहीं मानतीं। पुत्र अपने पिता को अपशब्द कहते हैं तथा बहनों को बुरी नजर से देखते हैं। गुरु के साथ विश्वासघात हो रहा है। ऐसे पापों का प्रायश्चित कहां होगा? स्त्री धनवान पुरुष के अंग से

लिपटी रहती है। दिन रात नए-नए काले कारनामे होते रहते हैं। इनका बखान भी संभव नहीं। राजा और प्रजा का भेद समाप्त हो चुका है। सब जानबूझकर पापकर्म करते हैं। कवि गंगादास कहते हैं कि अधर्म, नीच और दुष्ट प्रवृत्ति के लोग तीनों प्रकार के पापों में रत हैं। ऐसा बुरा जमाना आएगा, यह कभी सोचा भी ना था।

विशेष

1. अधर्म, अनैतिक व दुष्टता से पूर्ण समाज का वर्णन किया गया है।
2. गंगादास द्वारा व्यक्त 'सामाजिक रिश्तों में विसंगतियों का स्वरूप' आज के युग में भी प्रासंगिक है।

(819)

कली ने जप तप भंग किया है।।
महाघोर बढ़ गये पाप अब धर्म को तंग किया है।
जानो आज कलियुग महाघोर आय गये।
पुण्य के ना पते कहीं महापाप छाय गये।
सोई बर्त गई जैसे मुनि जन गाय गये।
माता पिता गुरुदेव किसी का ना बूझ रही।
पाप सै मतीन मती नेक भी ना सूझ रही।
धर्म कहां रहै दया पापन सै झूस रही।
रंग बिरंग किया है।।।।

हिंदुस्तान है खराब आब आज तारी गई।
दयाहीन जड़ जीव भये मती मारी गई।
पाप क्यूं ना होते वेद बात ना विचारी गई।।
स्वार्थ के मारे दगाबाज पहले यारी करैं।
काम के अधीन अतिदीन ताबेदारी करैं।
स्वार्थ ना रहै तासु फेर फैल जारी करैं।
जग तरभंग किया है।।2।।

धर्म के तो हेतु एक अद्धी भी ना पावत है।
राजदंड पड़ै घर सर्वस लगावत है।
देख के तमाशे आज अचरज आवत है।।
ऊंचे वर्ण आज नार नीचन के संग रमै।
जीतब ना रहै कुछ बड़ी बुरी आई समै।
बस की ना रही बात एक अफसोस हमै।
जगत अनंग किया है।।3।।

विप्र वेदहीन भये तेजहीन राजपूत।
वैश्य और शूद्रों के मार्ग ना रहे सूत।

गृही तो कंगाल मालदार यति अवधूत।।
वेदन की बात सब बिना ही विश्वास कहैं।
धर्म को विनाशी और पाप को विनाश कहैं।
गंगा महारानजी ने हमें, गंगादास कहैं।
सदा असंग किया है।।4।।

प्रसंग–प्रस्तुत पंक्तियां संत गंगादास के 'कलियुग का वर्णन' रचना से उद्धृत हैं।

व्याख्या–कलियुग ने इस संसार में जप और तप दोनों को नष्ट कर डाला है। महाघोर पापों ने धर्म को तंग किया हुआ है। कलयुग अपने पूरे जोर शोर के साथ आ गया है। पुण्यों को भगाकर महापाप ने डेरा डाल लिया है। मुनियों की कही गई बातें समाज से गायब हो गई हैं। माता, पिता और गुरु का अब सम्मान नहीं होता। धर्म समाप्त हो गया तथा दया पापों से जूझ रही है। इस पापमय संसार में कुछ सूझ नहीं रहा है। आनंदहीन संसार बेरंग दिखाई पड़ने लगा है। हिंदुस्तान की इज्जत को मिट्टी में मिलाया जा रहा है। इनसान जड़ हो गया, दयाहीन हो गया भारतीयों ने वेदों की बातों को भुलाकर पापों में मन लगाना प्रारंभ कर दिया। स्वार्थ के वशीभूत धोखेबाज पहले मित्रता कर फिर पीठ पर वार करते हैं। नौकर मालिकों से दगा करते है। स्वार्थपरता ने संसार को नष्ट कर दिया है। धर्म के लिए लोगों में जरा सी भी ललक नहीं है। लोग राजदंड भुगत रहे हैं। उच्च वर्ण के पुरुष निम्न वर्ग की स्त्रियों संग रमण करते हैं। इन तमाशों को देखकर अचरज होता है। कामदेव ने संसार को वशीभूत कर लिया है। अब किसी के वश में कुछ नहीं है। ब्राह्मण वेदहीन तथा राजपूत तेज हीन हो गए। वैश्य और शूद्र वर्गों के पथभ्रष्ट होने से हाहाकर मच गया है। गृहस्थ कंगाल तथा साधु मालदार हो गए हैं। वेदों पर किसी का विश्वास नहीं रहा। धर्म को सभी लोग विनाश के कगार पर ले जा रहे हैं। गंगादास जी कहते हैं कि मैं गंगा माता का दास हूं परंतु कलयुग के इस अज्ञान में लिप्त होकर गंगा से सदैव दूर ही रह रहा हूं।

विशेष

1. तत्कालीन समाज में व्याप्त अधर्म, अज्ञान व स्वार्थपरक प्रवृत्ति का वर्णन किया गया है।
2. खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग किया गया है।

जड़ जगत भूल में आय रहे, ना पते किसी ने पाये।।
चेतन कूं जड़ मान के पापी, आप कूं ना पहचान के पापी।
भटके जुदा जान के पापी, सर्वव्यापी को जुदा बताय रहे।
ना समझे ना समझाये।।।।

कोई कहे शिव है काशी में, मरे तो ना जय की फांसी में।
फंसे, फेर ना चौरासी में, माया में चक्कर खाय रहे।
आत्म सर्वस्व भुलाये।।2।।

राम मिलैं हैं तप करने से, कोई कहै नहीं भेष भरने से।
कोइ कहे तीरथ तट मरने से, आप भरमे सब कू भरमाय रहे।
हरि पास नजर ना जायें।।3।।

कोई कहे परमहंस संन्यासी, बनो तो पावै सर्वनिवासी।
गंगादास कहै कोई उदासी, शिष्यों कू समझाय रहे।
मन माने पंथ चलाये।।4।।

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियां संत गंगादास के 'कलियुग का वर्णन' रचना से उद्धृत हैं।

व्याख्या—इस जड़ संसार के वशीभूत होकर सब भ्रमित हो रहे हैं। जड़ को चेतन मानकर प्राणी स्वयं को ही नहीं पहचान पा रहे हैं। जो सर्वव्यापक परमात्मा है उसे स्वयं से अलग बताते हैं तथा ईश्वर से अलग होकर भटकते फिर रहे हैं। ना ये समझते हैं और ना ही इन्हें समझाया जा सकता है। अपने आप को भुलाये बैठे ये लोग कहते हैं कि शिव काशी में वास करते हैं किंतु मरने से ये डरते हैं। चौरासी के फेर में पड़े ये दुष्ट माया के चक्कर में पड़े अपना सर्वस्व नष्ट कर रहे हैं। ईश्वर तप करने से मिलते हैं ना कि जोगी का वेश धारण करने मात्र से। किसी का कहना है कि तीर्थ के तट पर प्राणोत्सर्ग से ईश्वर से साक्षात्कार हो सकता है। ऐसे भ्रमित लोग स्वयं भी भ्रमित हैं तथा दूसरों को भी भ्रमित कर रहे हैं। ये ईश्वर की दृष्टि से दूर ही रहते हैं। कोई कहता है परमहंस संन्यासी बनकर ईश्वर मिल सकता है। गंगादास जी कहते हैं कि कोई उदासी बनने के लिए किसी को समझा रहा है। लोगों ने अनगिनत मनमाने पंथ चला रखे हैं तथा संसार को भ्रमित कर रहे हैं

विशेष

1. खड़ी बोली हिंदी में कलियुग वर्णन का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।
2. कलियुग का सेना लेकर संसार पर चढ़ाई करने का सुंदर रूपक प्रस्तुत किया गया है।
3. तत्कालीन समाज में व्याप्त कुकर्मों का यथार्थ चित्रण हुआ है।
4. पाप की प्रतिष्ठा और धर्म के विनाश में रत् मानव का यथार्थ चित्रण किया गया है।
5. अनुप्रास, रूपक एवं उपमा अलंकारों के प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

गतिविधि

इंटरनेट की सहायता से संत गंगादास तथा उनके समकालीन कवियों का सचित्र जीवन परिचय तैयार कर स्क्रैप बुक में चिपकाइए।

क्या आप जानते हैं?

ज्ञान, भक्ति और काव्य की दृष्टि से संत कवि गंगादास का व्यक्तित्व अत्यंत अनूठा था। कई विद्वानों ने इन्हें खड़ी बोली हिंदी साहित्य का 'भीष्म पितामह' भी कहा है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र

परिचय :

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म 9 सितम्बर, सन् 1850 को 'सेठ अमीचंद' के वंश में हुआ। इनके पिता बापू गोपाल चंद्र भी एक कवि थे। भारतेंदु जी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने अपनी परिस्थितियों से गहन प्रेरणा ली। इनके पास अत्यधिक धनराशि थी, जिसे इन्होंने साहित्यकारों की सहायता हेतु मुक्त-हस्त से दान किया। पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. प्रतापनारायण मिश्र, पं. बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमधन' आदि इनकी साहित्यिक मंडली के प्रमुख कवि थे।

भारतेंदु जी ने विविध भाषाओं में साहित्य रचना की परंतु ब्रजभाषा पर इनका असाधारण अधिकार था। ब्रजभाषा में इन्होंने अद्‌भुत शृंगारिकता को व्यक्त किया। इनका साहित्य प्रेमयुक्त था क्योंकि प्रेम को साथ लेकर ही इन्होंने अपने 'सात संग्रह' प्रकाशित किये। 'प्रेम माधुरी' इनकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। उन्होंने साहित्य के विविध क्षेत्रों–कविता, नाटक, निबंध, व्याख्यान आदि पर लेखन कार्य किया। इनका प्रमुख आख्यान 'सुलोचना' है। इसी तरह 'बादशाह दर्पण' इतिहास की जानकारी प्रदान करने वाला प्रमुख ग्रंथ है। भारतेंदु की देश के प्रति बड़ी भक्ति व निष्ठा थी। इन्होंने भक्तिपरक व शृंगारपरक रचनाएं कीं। अपनी रचनाओं के द्वारा सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन के प्रयास किये।

भारतेंदु जी एक प्रगतिशील विचारक व लेखक थे। मां सरस्वती की साधना में अपना धन पानी की तरह बहाया तथा साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने समाज और साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र का अध्ययन किया। लेखन के अलावा अपने जीवन में कोई अन्य कार्य नहीं किया। इन्होंने छोटे-बड़े सभी प्रकार के ग्रंथों की रचना की। इसलिए कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्हें हिंदी साहित्य के

आधुनिक काल का प्रवर्तक भी कहा जाता है। इनके बारे में पंत जी के शब्द हैं–"भारतेंदु का गए, भारती की वीणा निर्माण। किया अमर स्पर्शों में, जिसका बहु विधि स्वर संधान।"

प्रस्तुत इकाई में हम भारतेंदु हरिश्चंद्र जी के काव्य, उनकी राजनीतिक चेतना तथा उनकी काव्यगत विशेषताओं के साथ उनकी कविता 'प्रेम माधुरी' व 'यमुना छवि' का अध्ययन करेंगे।

2.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- हिंदी नवजागरण एवं भारतेंदु के काव्य का वर्णन कर पाएंगे;
- भारतेंदु की राजनीतिक चेतना का विश्लेषण करने में सक्षम होंगे;
- भारतेंदु की काव्यगत विशेषताओं से अवगत हो पाएंगे;
- भारतेंदु की कविताओं 'प्रेम माधुरी' और 'यमुना छवि' को व्याख्यायित कर सकेंगे।

2.2 हिंदी नवजागरण एवं भारतेंदु का काव्य

हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु हरिश्चंद्र का आगमन एक युगांतकारी घटना थी। हिंदी भाषा के काव्य एवं गद्य की विविध विधाओं में नवीनता का समावेश करके उन्होंने युगांतरकारी परिवर्तन लाने का श्रेय प्राप्त किया। यही कारण है कि विद्वानों द्वारा इस काल खंड का नामकरण भारतेंदु के नाम पर ही किया गया है। किसी भी युग की सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियां बदलती रहती हैं और तदनुरूप साहित्य का स्वरूप भी। भारतेंदु कालीन हिंदी कविता में भी बदलाव आया जिसके पीछे तत्कालीन परिस्थितियां विद्यमान थी। भारतेंदु युग का समय केवल भारत के लिए ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व के लिए अत्यंत महत्व का समय था। इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति के कारण उन्नति का नया मार्ग प्रशस्त हुआ था। इसी समय नवीन अन्वेषण एवं आविष्कार हुए। धर्म एवं दर्शन के नये मार्गों का उद्भव हुआ। राजनीति एवं समाज की अवस्था में एक नई क्रांति का सूत्रपात हुआ। पश्चिमी यूरोप के इटली, फ्रांस, स्पेन, नीदरलैंड, इंग्लैंड और जर्मनी में नई सांस्कृतिक चेतना को प्रश्रय मिला। इसी काल में कार्ल मार्क्स ने अपने विचारों को वाणी प्रदान की। एंगेल्स जैसे राजनीतिक विचारक भी इसी युग में हुआ। मनोविश्लेषणवाद के प्रणेता आचार्य सिगमण्ड फ्रायड, ब्रह्म समाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय, आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सर सैयद अहमद खां और दादा भाई नौरोजी जैसे नेतृत्वकर्ता आधुनिक शिक्षा के प्रवर्तक ईश्वरचंद विद्यासागर, भारतीय राष्ट्र गीत 'वंदेमातरम्' के रचयिता एवं बंगाली भाषा के प्रख्यात साहित्यकार बंकिमचन्द चटर्जी भी इसी युग में सक्रिय रहे। इसी युग में हिंदी प्रदेश में युग निर्माता भारतेंदु हरिश्चंद्र का प्रादुर्भाव भी हुआ जिन्होंने हिंदी साहित्य में नये-नये विषयों का सूत्रपात किया। देशभक्ति, समाज सुधार, स्वदेश-प्रेम, हिंदी भाषा-प्रेम आदि विषयों पर कविता-लेखन से उन्होंने काव्य की संकीर्ण सीमा का विषय-विस्तार किया

भारतेंदु का अनुसरण समकालीन समस्त कवियों ने किया। साहित्य में जो परिवर्तन हुए उनमें तत्कालीन स्थितियों-परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा।

2.2.1 राजनैतिक परिस्थितियां

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का हिंदी नवजागरण पर प्रभाव दिखाई पड़ता है। भारतीय राजनीति पर अंग्रेजों का ध्यान प्रारंभ से ही रहा है। जब मुगलों की स्थिति कमजोर होती दिखी तब अंग्रेजों ने भारत की राजनीति में दखलंदाजी शुरू की। धीरे-धीरे वे आगे कदम बढ़ाते गए तथा 100 वर्षों के अंतराल में ही लगभग समस्त भारत पर उन्होंने अपना आधिपत्य जमा लिया। इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप भारत से सस्ती दर पर कच्चा माल इंग्लैंड में निर्यात किया जाता था। वहां उससे उन्नत आधुनिक मशीनों द्वारा माल तैयार किया जाता था और उस माल को भारत लाकर अधिक कीमत पर बेचा जाता था। इस परिस्थिति के कारण भारत की आर्थिक स्थिति विपन्न से विपन्नतम होती चली गई। यह आर्थिक शोषण का ही एक रूप था, जिससे भारतीय जनता में रोष उत्पन्न होने लगा। भारतीयों पर थोपी गई इस प्रकार की शोषण नीति को देखकर ही एक अंग्रेज लेखक जॉन ब्राइट ने इस काल को 'ए हंड्रेड इयर्स ऑफ क्राइम' (A Hundred Years of Crime) कहा था। अंग्रेजों की इस दमनकारी नीति के विरुद्ध भारतीय जनता ने आवाज उठाई। सन् 1857 में क्रांति को 'विद्रोह' का नाम दिया जिसे कुचलने के पश्चात ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से शासन महारानी विक्टोरिया के हाथों में चला गया।

महारानी विक्टोरिया के हाथों में शासन व्यवस्था आते ही एक घोषणा-पत्र जारी किया गया जिसमें भारतीयों को अंग्रेजी राज के प्रति आश्वस्त किया गया। रंग, धर्म, वर्ग, जाति का भेदभाव न करते हुए सरकारी नौकरियों में शिक्षा-योग्यता और कार्य क्षमता के आधार पर भर्ती करने का आश्वासन दिया गया। इससे भारतीयों के मन में नई आशा का संचार हुआ तथा रानी विक्टोरिया की जय-जयकार होने लगी। अंग्रेजी हुकूमत की ओर से कई सुधार भी किये गए। मुंबई, कोलकाता और चेन्नई (मद्रास) में नये विश्वविद्यालयों की स्थापना भी की गई जहां अंग्रेजी शिक्षा के अवसर मिलने लगे। इसी बीच 1861 के आस-पास पंजाब, राजपुताना, अवध और आगरा सहित देश के कई भागों में भीषण अकाल पड़ा। सर जॉन लारेंस जब भारत के वायसराय थे तब कृषि संबंधी सुधार भी हुए। भारतीय कपड़ा मिलों और भारतीय जनता पर कई प्रकार के करों का बोझ लाद दिया गया। सिविल सर्विस परीक्षा से भारतीयों को दूर रखने के लिए परीक्षार्थियों की उम्र घटाने का षडयंत्र भी हुआ। चेचक आदि महामारियों के फैलने से एक तरफ तो लाखों लोगों की मौतें हो रही थीं, दूसरी ओर महारानी विक्टोरिया को भारत बुलाकर उन्हें भारत की साम्राज्ञी घोषित किया जा रहा था। भारतीय धन का खुलकर अपव्यय हो रहा था। भारतीय भाषाओं में प्रकाशित समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने के लिए वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट लागू कर दिया गया। इन सभी शोषण के नये-नये हथकंडों को देखते हुए भारतीय जनता में राष्ट्रीय चेतना का अंकुर प्रस्फुटित होने लगा। भारत में जितने भी अंग्रेज वायसराय नियुक्त हुए उनमें से कुछ को छोड़कर बाकियों ने भारतीयों के साथ दोहरी नीति बनाए रखी। वे अंदर से शोषण करते रहते थे तथा बाहर से भारतीय जनता की भलाई की बातें बनाते थे। अंग्रेजों की इसी दोहरी नीति से भारतीयों में प्रतिरोधी चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का सूत्रपात इसी चेतना का परिणाम था।

2.2.2 सामाजिक परिस्थितियां

राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ समकालीन सामाजिक स्थितियों पर दृष्टिपात करना भी यहां आवश्यक है। द्वेषपूर्ण सामाजिक स्थिति के रहते उन्नति के अवसर खोते जा रहे थे। पौराणिक मान्यताओं के समर्थकों और नवीन मान्यताओं के समर्थकों ने अलग-अलग वर्ग बना लिए थे। यहां तक कि समुद्र मार्ग से यात्रा करने वाले व्यक्ति को समाज से बाहर कर दिया जाता था। अंग्रेजी कूटनीति से अनभिज्ञ भारतीय हिंदू-मुस्लिम के भेद को बढ़ाते जा रहे थे। ब्रिटिश शासकों की साम्राज्यवादी और शोषण की नीति भारतीयों को पतन की ओर ले जा रही थी। यही कारण था कि भारतीयों में बौद्धिक और मानसिक विकास के अवसरों की कमी थी।

नारी की स्थिति पर विचार करें तो समाज में नारियों की स्थिति बहुत विकट और दयनीय थी। अशिक्षा, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह, सती-प्रथा, दहेज-प्रथा सरीखी कुरीतियों ने महिलाओं की स्थिति को नरक के समान बना रखा था। इन कुरीतियों के विरोध में समाज सुधारकों ने अपनी आवाज बुलंद की और परिणामस्वरूप समाज सुधार आंदोलनों का सूत्रपात हुआ। केशवचंद्र सेन के अथक प्रयासों से सन् 1872 में सरकार द्वारा बाल-विवाह और बहु-विवाह पर प्रतिबंध लगाया गया। सन् 1802 में नरबलि को समाप्त करने के लिए सरकार ने कानून बनाया और इस पाशविक प्रथा को बंद कर दिया गया। राजा राममोहन राय ने बंगाल, राजपूताना और दक्षिण भारत में प्रचलित सती-प्रथा को रोकने के लिए आंदोलन किये जिसके परिणामस्वरूप सन् 1829 ई. में इस प्रथा को अपराध की श्रेणी में रखा गया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा-विवाह आंदोलन किया तथा 1856 ई. में सरकार ने विधवा-विवाह को वैध करार दिया। भारतेंदु युग के सभी कवियों ने इन कुरीतियों सहित तत्कालीन समाज का चित्रण अपनी कविता में किया है।

धार्मिक दृष्टि से देखा जाए तो यह काल बहुदेवोपासना, पाखंड, अंधविश्वास और रूढ़िवादिता के चरम उत्कर्ष पर था। शैव, शाक्त और वैष्णव आपस में एक-दूसरे पर कीचड़ उछालते रहते थे। ईसाई धर्म प्रचारकों का भारत में आगमन हुआ। इस्लाम का प्रचार-प्रसार पूर्व की भांति ही चल रहा था। भारतीय समाज सुधारकों की चेतना स्वरूप धर्म को नई दृष्टि प्राप्त हुई। धर्म को नई दृष्टि से देखा जाने लगा। नये-नये धार्मिक आंदोलन प्रारंभ हुए। आर्य समाज, प्रार्थना समाज, ब्रह्म समाज, ब्रह्म विद्या समाज, रामकृष्ण मिशन आदि धार्मिक संस्थाओं द्वारा यह महती कार्य संपन्न हुआ। अंग्रेजी शिक्षा द्वारा वैज्ञानिक प्रगति का ज्ञान भारतीय जनता को प्राप्त होने लगा। शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर बल दिया जाने लगा। इस प्रकार समाज में नवजागरण की लहर फैलने लगी जिससे हिंदी नवजागरण के विकास को नई दिशा मिली।

तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों का भी सीधा प्रभाव हिंदी नवजागरण पर पड़ा। सन् 1850 से पूर्व का युग रीतिकालीन युग ही रहा जहां राजा के दरबारों में कविता कैद थी। उस समय की कविता रीतिकालीन परंपरा से आबद्ध थी। राज्याश्रित कवि राजाओं की काम वासना को शांत करने के लिए वात्स्यायन के कामसूत्र को आधार बनाकर काव्य लेखन कर रहे थे। रीतिग्रंथ रचनाओं की भी कमी नहीं थी। नायक-नायिका भेद और राजसी ऐश्वर्य का अतिरंजनापूर्ण वर्णन कवियों को अधिक रुचिकर लगता था। धीरे-धीरे अंग्रेजों के समक्ष देसी राजाओं ने एक-एक कर घुटने टेक दिये तथा उनके दरबारों में राज्याश्रय प्राप्त कवियों के दिन

भी लदने लगे। अब हिंदी कविता राज-दरबारों से निकलकर जनता के बीच आ गई। परिणामतः जन-साहित्य की रचना होने लगी।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के तहत सन् 1800 में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। सन् 1817 में राजा राममोहन राय के प्रयत्नों से हिंदू कॉलेज की स्थापना हुई। धीरे-धीरे भारत के कई हिस्सों में कॉलेज स्थापित किये गए। सन् 1823 में आगरा कॉलेज, सन् 1830 में दिल्ली कॉलेज तथा बरेली कॉलेज, सन् 1833 में कलकत्ता स्कूल ऑफ बुक सोसायटी तथा सन् 1834 में बंबई में एल्फिन्सटन कॉलेज स्थापित किये गए। शिक्षा के क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति होने लगी। सन् 1850 के आस-पास तक अंग्रेजी भाषा का प्रचार-प्रसार काफी हद तक हो गया था। नई शिक्षा पद्धति द्वारा जनजागरण में तेजी आ गई।

2.2.3 साहित्यिक पृष्ठभूमि

कवियों ने अतीत के साथ-साथ वर्तमान को भी महत्व दिया। जहां भक्तिकालीन कवियों के अनुसरण में उपदेशात्मक एवं भक्तिपरक रचनाएं हो रही थीं वहीं बिहारी और मतिराम सरीखे रीति कवियों के अनुसरण के तहत शृंगारिक काव्य भी रचा जा रहा था। इसके साथ ही साथ वर्तमान स्थिति से प्रभावित राष्ट्र प्रेम और सामाजिक यथार्थ से परिपूर्ण रचनाएं भी सामने आ रही थीं। कवि नये-नये भावों और विचारों को अपनी कविता में स्थान दे रहे थे। इस युग की कविता जनता की अपनी कविता बनती हुई दिखाई पड़ रही थी। जनजागरण को ध्यान में रखते हुए कवि राष्ट्रप्रेम से ओत-प्रोत काव्य लेखन कर रहे थे। जन-अभिरुचि के आलोक तथा स्वयं प्रसिद्धि पाने की लालसा में कवि विभिन्न छंदों का प्रयोग काव्य रचनाओं में कर रहे थे। भक्ति और रीतिकाव्य के कवित्त, दोहे, सवैये लिखे जा रहे थे। साथ ही नवीन साहित्यिक गीत एवं लोक गीत लिखने का प्रचलन भी बढ़ रहा था। कजली, ठुमरी, गजल, होली, लावनी आदि विधाएं प्रसिद्ध थीं।

भाषा के क्षेत्र में इस काल में जो परिवर्तन दिखाई पड़ता है वह क्रांतिकारी है। अब तक जो भी काव्य रचना हो रही थी वह केवल अवधी और ब्रजभाषा में ही हो रही थी। रीतियुग में तो यह मान लिया गया था कि ब्रजभाषा के अतिरिक्त काव्य की कोई भाषा हो ही नहीं सकती। किंतु धीरे-धीरे खड़ी बोली का प्रादुर्भाव काव्य के क्षेत्र में हुआ। खड़ी बोली पद्य आंदोलन का सूत्रपात इसी समय हुआ था। सन् 1887 से 1890 के बीच वे लोग सामने आए जो नये-नये दृष्टिकोण लेकर खड़ी बोली में काव्य-रचना के समर्थक थे। कुछ लोगों ने परंपरा का अनुसरण करते हुए ब्रजभाषा को ही अपनाया। खड़ी बोली पद्य का समर्थन करने वालों में अयोध्याप्रसाद खत्री और श्रीधर पाठक प्रमुख हैं। धीरे-धीरे खड़ी बोली के प्रति कवियों का लगाव बढ़ता गया तथा ब्रजभाषा का स्थान खड़ी बोली लेती चली गई। खड़ी बोली पद्य रचना की क्षीण परंपरा खुसरों की पहेलियों, मुकरियों तथा कबीर के कतिपय दोहों से प्रारंभ होती है तथा आधुनिक काल तक पूर्ण विकास में परिणत होती है।

इसी समय हिंदी भाषा साहित्य में भारतेंदु का आगमन हुआ। हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु जी का आगमन हिंदी के लिए विशेषकर खड़ी बोली हिंदी के लिए गौरवशाली रहा है। भारतेंदु को बाल्यकाल से ही कवि परिवार में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। इनके पिता बाबू गोपाल चंद्र जी स्वयं उच्च कोटि के कवि थे। इसीलिए बचपन से ही काव्य-प्रणयन के प्रति भारतेंदु का लगाव दिखाई पड़ता है। अंग्रेजी, संस्कृत एवं हिंदी सहित अन्य भाषाओं

में भी पारंगत भारतेंदु जी ने अपनी काव्य-प्रतिभा से युग-पुरुष होने का गौरव प्राप्त किया है। इन्होंने अनेक यात्राएं की जिससे अंग्रेजी शासन प्रणाली के दौरान भारत की कुव्यवस्था देखने का अवसर इन्हें प्राप्त हुआ। देश की ऐसी दुर्दशा देखते हुए ही इनके हृदय में राष्ट्र-सेवा की भावना का विस्तार हुआ। इनके काव्य में यह भावना संपूर्ण रूप से दृष्टिगत है। हिंदी भाषा के उद्धार हेतु भारतेंदु ने जो प्रयास काव्य के माध्यम से किये वे सराहनीय हैं।

भारतेंदु के समय में भारतीय राजनीति में परिवर्तनकारी दौर चल रहा था। उपनिवेश के रूप में इंग्लैंड ने भारत का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया था। भारतीयों पर शासन के नाम पर अंग्रेजों द्वारा उनका शोषण किया जा रहा था। ब्रिटेन की महारानी ने जो घोषणापत्र 1857 की क्रांति के पश्चात जारी किया था, और जिसकी कल्पना मात्र से भारतीय सुहावने स्वप्नलोक में खो गए थे, उससे भारतीय जनता का मोहभंग होने लगा था। भारतेंदु हरिश्चंद्र का परिवार वैसे तो अंग्रेजी राज के प्रति वफादार था परंतु भारतेंदु की विचारधारा कुछ अलग प्रकार की रही। उन्होंने एक ओर तो राजभक्ति से संबंधित काव्य रचना की वहीं दूसरी ओर अंग्रेज सरकार की दमनकारी नीति का भी खुलकर विरोध किया। राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रसेवा के संकल्प से जुड़ते हुए उन्होंने हिंदी भाषा के माध्यम से इस कार्य को पूरा किया। अंग्रेजों ने न सिर्फ भारतीय राजनीति में कूटनीति से काम लिया अपितु उन्होंने भाषा संबंधी विवाद भी खड़ा किया। इसे भी माध्यम बनाकर वे अपना कार्य सिद्ध करना चाहते थे। उन्होंने हिंदू और मुस्लिमों को आपस में लड़ाने के लिए हिंदी और उर्दू के बीच विवाद उत्पन्न करने के अनेक प्रयास किये। राष्ट्रभाषा हिंदी हो अथवा उर्दू इस बात को लेकर कई बार हिंदुओं और मुस्लिमों में विवाद उत्पन्न हुए परंतु जिन विद्वानों की समझदारी ने विवाद को अधिक बढ़ने नहीं दिया उनमें भारतेंदु हरिश्चंद्र के प्रयास भी सार्थक हैं। भारतेंदु अंग्रेजों की इस नीति से पूरी तरह परिचित थे। इसीलिए उन्होंने साहित्य लेखन हेतु ऐसी भाषा की शुरुआत करने की बात कही जो सर्वग्राह्य हो। हिंदी और उर्दू का विवाद भी जिससे थम जाए। अत: उर्दू-मिश्रित खड़ी बोली का काव्य क्षेत्र में प्रयोग होने लगा। कुछ विद्वान खड़ी बोली में और कुछ उर्दू में भी काव्य रचना कर रहे थे। भारतेंदु का मानना था कि अपनी भाषा की उन्नति ही सब प्रकार की उन्नति का मूल है-

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
निज भाषा उन्नति बिना मिटै न हिय को सूल।।"

तत्कालीन भारतीय समाज में अनेकानेक कुरीतियों का बोलबाला था। इन कुरीतियों के विरुद्ध में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने काव्य में बिगुल बजाया। निर्धनता, विधवा-विवाह निषेध, बाल-विवाह, अशिक्षा इत्यादि बुराइयों पर अपनी लेखनी के प्रभाव से कुठाराघात किया। इन विषयों पर लिखकर भारतेंदु ने नवजागरण का सूत्रपात किया था। सन् 1826 में हिंदी का प्रथम समाचार-पत्र 'उदंत मार्तण्ड' कलकत्ता से पंडित युगल किशोर शुक्ल ने प्रारंभ किया। इसमें उन्होंने इस परंपरा का प्रारंभ किया था। इसी परंपरा का विकसित रूप भारतेंदु जी के काव्य में प्राप्त होता है। भारतेंदु जी ने अपने समाचार-पत्रों के द्वारा इस परंपरा को आगे बढ़ाया। हिंदी गद्य की विविध विधाओं का प्रारंभ भी भारतेंदु ने ही किया। उनकी लेखन-दृष्टि किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं रही। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में तत्कालीन उन सभी विषयों पर लेखन किया जिनसे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नवजागरण का उदय हुआ। भारतेंदु का प्रभाव

तत्कालीन सभी कवियों पर पड़ा। इसीलिए उन सभी कवियों ने जनजागरण के कार्य को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी भाषा और साहित्य को अपने लगभग 283 ग्रंथों से समृद्ध किया। भाषा, शैली, और नवीन विषयों का समावेश करके उन्होंने हिंदी साहित्य जगत को एक नवीन युग प्रदान किया। सबसे प्रमुख बात यह रही कि उन्होंने हिंदी भाषा साहित्य को पारंपरिक वातावरण से बाहर निकालकर एक नये मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया जो नवजागरण के नाम से अभिहित हुआ। इन्होंने अपना जीवन पूर्ण रूप से साहित्य में अर्पित कर दिया। इसलिए भारतेंदु का काव्य आधुनिक हिंदी साहित्य के नवजागरण का सूत्रपात था।

2.3 भारतेंदु की राजनीतिक चेतना

भारतेंदु हरिश्चंद्र के हृदय में देशप्रेम की भावना बाल्यकाल से ही विद्यमान थी। भारत की अंग्रेजों द्वारा की जा रही दुर्दशा से उनमें देशसेवा की भावना का उद्‌भव हुआ। इसी से उनके हृदय में हिंदी भाषा एवं राष्ट्र के प्रति सेवा-भावना का विकास हुआ। भारतेंदु जी ने मात्र सात वर्ष की अल्पायु में भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम देखा था। भारतीय राजनीति में परिवर्तनकारी दौर चल रहा था। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में भारतीयों को असफलता का मुंह देखना पड़ा। भारत इंग्लैंड का उपनिवेश बन चुका था। अंग्रेजों की शोषण नीति जारी थी। सन् 1857 के पश्चात ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रभुत्व से शासन व्यवस्था महारानी विक्टोरिया के हाथों में चली गई। महारानी विक्टोरिया की ओर से घोषणा-पत्र जारी किया गया जिसमें भारतीय जनता को लुभाने के लिए खुली आंखों से बड़े-बड़े सपने दिखाए गए। भारतेंदु जी का परिवार अंग्रेजी राजतंत्र का परमभक्त था। भारतेंदु स्वयं भी अंग्रेजी राज के समर्थक थे। उनके काव्य में कई स्थानों पर इनके उदाहरण प्राप्त होते हैं। जब भारतेंदु की आंखों से परदा हटा और उन्हें दिखा कि महारानी की घोषणा-पत्र मात्र छलावा है तब उन्होंने अंग्रेजी सरकार के विरोधस्वरूप आवाज उठाई। अंग्रेजी सरकार राजनीति में पूर्ण पारंगत थी। अंग्रेज अधिकारी और वायसराय कूटनीति में निपुण थे। अंग्रेजों की 'फूट डालो राज करो' की नीति अब जनमानस को समझ आने लगी थी। भारतेंदु भी अंग्रेज सरकार की इन सच्चाइयों से अनभिज्ञ नहीं थे। अब वे राजभक्ति से जुड़े नहीं रहे और अंग्रेजों की राजनीतिक चालों को वे अपने पत्रों और काव्य के माध्यम से जनता के समक्ष रखने लगे।

भारतेंदु के समय की राजनैतिक परिस्थितियां अत्यंत विकट थीं। प्राचीन व्यापारिक संबंधों का लाभ उठाते हुए ब्रिटिश व्यापारियों ने भारत में अपनी जड़ें जमानी शुरू कीं। मुगल शासकों के साथ कई यूरोपीय देशों के व्यापारियों का संघर्ष हुआ। अंग्रेज बुद्धिमान, कूटनीतिज्ञ, धनी और जल सेना के साथ थे। उन्होंने मुस्लिम शासकों से व्यापारिक संपर्क स्थापित करने प्रारंभ कर दिए। कूटनीति में निपुण होने के कारण भारत की राजनीति पर इनका ध्यान एवं प्रभाव तभी से पड़ने लग गया। 1757 ई. में प्लासी के युद्ध के पश्चात तो अंग्रेजों को अपने राज पर पूर्ण विश्वास और आत्मविश्वास बढ़ता चला गया। शनैः शनैः अंग्रेजों ने एक-एक करके अधिकांश भारतीय राज्यों पर अपना आधिपत्य जमा लिया। 1857 ई. के पश्चात राजनीति के क्षेत्र में एक बड़ा परिवर्तन आया। अंग्रेजों ने 1857 की भारतीय जनक्रांति को विद्रोह का नाम दिया। तत्पश्चात शासन का भार ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से निकलकर महारानी विक्टोरिया के हाथों में चला गया। महारानी विक्टोरिया की ओर से 1 नवंबर, 1858 ई

को एक घोषणा-पत्र जारी किया गया जिसमें भारतीयों को सुशासन का वरदान देने की घोषणा की गई। रंग, धर्म, वर्ग, जाति के आधार पर भेदभाव न करके प्रजा की भलाई के लिए कार्य करने का संकल्प प्रस्तुत किया गया। यह अंग्रेजों की कूटनीतिक चाल थी। इससे प्रसन्न होकर तत्कालीन कवियों ने अंग्रेज सरकार का स्तुतिगान किया और रानी विक्टोरिया की मुक्तकंठ से प्रशंसा भी की। भारतेंदु भी उनमें से एक थे। उस समय अंग्रेज सरकार की ओर से भारतीयों को विश्वास में लेने के लिए कुछ सुधार कार्य किये भी गए थे।

1866 और 1869 ई. में भारत में भीषण अकाल पड़ा तथा कई महामारियों ने भी जनमानस की बड़ी हानि की। 1877 ई. में दिल्ली में दरबार सजाया गया तथा लॉर्ड लिटन ने महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया। एक ओर अकाल तथा महामारी से ग्रसित भारतीय जनता तथा दूसरी ओर भव्य दरबार एवं महारानी विक्टोरिया का स्वागत। जनता क्षुब्ध हो उठी। सन् 1878 में 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' द्वारा भारतीय भाषाओं में प्रकाशित समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता पर पाबंदी लगा दी गई। इसका एकमात्र कारण था कि भारतीय साहित्य के माध्यम से अंग्रेजों की कूटनीतिक चालों और शोषण नीति को साहित्यकारों द्वारा जन-जन तक पहुंचाया जा रहा था। अंग्रेज सरकार की इन राजनैतिक गतिविधियों से भारतीय साहित्यकारों एवं जनता में रोष उत्पन्न हो गया। जनता के आक्रोश को कम करने के लिए वायसराय लॉर्ड रिपन ने कुछ महत्वपूर्ण कार्य किये। 1882 ई. में प्रेस एक्ट को समाप्त कर दिया गया। शैक्षणिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान की गई तथा प्रजाहित में कुछ अन्य कार्य भी किये गए। समग्रत: अंग्रेज वायसरायों ने भारतीय जनता के साथ कूटनीति के अंतर्गत दोहरी नीति अपनाई। राजनीतिक चालों के जरिए ऊपर से तो भारतीयों का मित्र बनने का नाटक किया गया तथा अंदर से अबोध भारतीय जनता को कुचल डालने के कार्य किये गए।

समस्त राजनीतिक परिदृश्य से भारतेंदु भली-भांति परिचित थे। भारतेंदु जी अंग्रेज सरकार के राजभक्त भी थे तथा उसकी शोषण नीति के प्रत्यक्ष गवाह भी थे। अंग्रेजों की संपूर्ण राजनीति उनकी आंखों के समक्ष साकार थी। इसीलिए उनके काव्य में राजनीतिक परिदृश्य का साकार चित्रण दृष्टिगत होता है। राजनीति की चालों से त्रस्त भारतीय जनता के असंतोष को भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी अपने काव्य और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से व्यक्त किया है। अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय असंतोष की भावना को व्यक्त करने के पीछे एक बिंदु सामने उभर कर आता है जो कि अजीबोगरीब है। एक ओर तो साहित्यकार भारत को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त कराने की बात करते थे तथा दूसरी ओर ब्रिटिश शासन को वरदान कहते हुए उसका स्तुतिगान भी करते थे। भारतेंदु की कविता में भी यही विरोधाभास देखने को मिलता है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में अंग्रेज सरकार की प्रशंसा के पुल बांधे गए दिखाई पड़ते हैं तथा बाद की रचनाओं में अंग्रेजों की शोषण-नीति और दासता का विरोध तीव्रता से दिखाई पड़ता है। भारतेंदु जी की सर्वाधिक प्रसिद्ध पंक्तियों में से एक पंक्ति उदाहरणस्वरूप द्रष्टव्य है-

"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।"

इस पंक्ति पर गौर किया जाए तो पहले तो वे बताते हैं कि अंग्रेजी राज से भारत देश में सुख की वृद्धि हुई है यह हितकारी रहा है। परंतु इस राज की सर्वाधिक खराबी यह है कि भारतीय धन विदेश चला जाता है। यह द्वंद्वात्मक विचार कई बार शंका उत्पन्न कर देता है। राजभक्ति और विरोध की दुविधा में फंसे भारतेंदु का काव्य इससे अछूता नहीं है।

अंग्रेजों की राजनीतिक चालों से त्रस्त जनता का सजीव चित्र भारतेंदु अपने काव्य में प्रस्तुत करते हैं। वे अंग्रेजों को भीतर ही भीतर खून चूसने वाला मानते हैं जो कि भारत को भौतिक और आर्थिक रूप से पूर्णतया नष्ट करना चाहते हैं–

"भीतर भीतर सब रस चूसै
बाहरि वे तन मन धन मूसै
जाहिर बातनि में अति तेज
क्यों सखि साजन! नहिं अंग्रेज।"

भारतेंदु अंग्रेजों की राजनीति के कहीं-कहीं समर्थक तो थे परंतु कट्टर समर्थक नहीं। सन् 1857 ई. की क्रांति के पश्चात अंग्रेजों की क्रूर दमनकारी नीति से उत्पन्न भय एवं आतंक के वातावरण तथा परवर्ती मध्यकालीन अराजकता से मुक्ति दिलाने के कारण इस कवि ने अंग्रेज राज की प्रशंसा भी की है परंतु अनुभव भी किया कि यही अंग्रेजी राजनीति ही भारत की बरबादी का कारण भी है। इससे मुक्ति के लिए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सन् 1874 में 'स्वदेशी' का आंदोलन चलाया था। वे अंग्रेज शासन व्यवस्था को तत्कालीन भारतीय दुर्दशा के लिए पूर्ण उत्तरदायी मानते थे। इसलिए इन्होंने तत्कालीन अंग्रेज अफसरों, पुलिस, न्यायाधीश, शिक्षक और वकील आदि की कटु आलोचना प्रस्तुत की है। भारतेंदु ने 'अंधेर नगरी' में चूरन बेचने वाले के मुख से तत्कालीन पुलिस एवं कानून व्यवस्था की जमकर धज्जियां उड़ाई है–

"चूरन अमले सब जो खावैं।
दूनी रिश्वत तुरत पचावैं।।
चूरन साहेब लोग जो खाता।
सारा हिन्द हजम कर जाता।।
चूरन पुलिस वाले खाते।
सब कानून हजम कर जाते।।"

इसके अतिरिक्त और भी अनेकानेक कारण हैं जिनके चलते अंग्रेजी राजनीति द्वारा भारत की दुर्दशा का चित्रण भारतेंदु ने किया है। यहां तक कि भारतेंदु जब होली का वर्णन करते हैं तब भी अंग्रेजों द्वारा भारत की की गई दुर्दशा को नहीं भूलते। भारत की दीनहीन दशा में भारतीय अपनी पिचकारी रूपी नेत्रों से अश्रुजल फेंक रहे हैं–

"भारत में मचो है होरी
धूर उड़त सोई अबीर उड़ावत सबको नैन भोरी
दीन दशा असुअन पिचकारी सब लिलार भिजयोरी।"

अंग्रेजों की कूटनीति को प्रकृति के साथ जोड़कर भी भारतेंदु ने प्रस्तुत किया है। इसी अंग्रेजी शासन की राजनीतिक चालों से भारत में अशिक्षा, अज्ञानता, अंधविश्वास और निष्क्रियता का वातावरण बन गया था। इसे प्रकृति से संबंधित करके वे लिखते हैं–

"छाई अंधियारी भारी सूझत नहि राह कहूँ।
गरजि गरजि बादर से जवन सब डरावैं।।
चलपा-सी हिन्दुन की बुद्धि वीरतादि भई।
छिपे वीर तारागन कहूं न दिखावैं
सुजस चंद मंद भयो कायरता घास बढ़ी।"

भारतेंदु का कहना है कि जिस प्रकार बिजली चमक कर आकाश में विलीन हो जाती है उसी प्रकार भारतीयों की वीरता अंग्रेजों के समक्ष क्षण भर के लिए ही दिखाई पड़ती है। वर्षा ऋतु में जिस प्रकार घास दूर-दूर तक घनी रूप में उग रही है वैसे ही भारतीयों में कायरता फैल गई है। यह सब अंग्रेजों की कूटनीति का ही परिणाम है।

भारतेंदु ने 'नये जमाने की मुकरी' में भी अंग्रेजों और उनकी शासन व्यवस्था की जमकर खिंचाई की है। राजनीतिक हलकों और न्यायालयों आदि में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग हो रहा था। अंग्रेजों की यह कूटनीति ही थी कि वे हिंदी और उर्दू के नाम पर हिंदुओं और मुसलमानों को लड़वा रहे थे परंतु अंग्रेजी को राजकाज भाषा के रूप में भारतीयों पर थोप रहे थे। भारतेंदु व्यंग्य करते हुए कहते हैं–

"सब गुरुजन को बुरा बतावै।
अपनी खिचड़ी अलग पकावै।
भीतर तत्व न झूठी तेजी
क्यों सखि साजन! नहि अंग्रेजी।"

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि भारतेंदु ने अंग्रेज सरकार की स्तुति भी की है जिसका एक कारण उनके परिवार का राजभक्त होना है। उस समय भारतीय लेखकों एवं कवियों को जेल में डाल दिया जाता था (जब उनके द्वारा ब्रिटिश सरकार की आलोचना की जाती थी)। भारतेंदु इस बात से वाकिफ थे। अत: वे न चाहते हुए भी ब्रिटिश राज और राजनीति का स्तुतिगान कर जेल जाने से बचने का प्रयास करते थे। उनके इस कृत्य से उनके परिवार की राजभक्ति भी अक्षुण्ण बनी हुई थी। अपने नाटक 'मुद्राराक्षस' के अंत में वे महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा करते हैं–

"पूरी अभी को कटोरिया सौ चिरजीओं सदा विकटोरिया रानी,
सूरज चंद प्रकाश करै जब लौं रहे सातहू सिंधु में पानी।
राज करौ सुख सौं तब लौं निज पुत्र और पौत्र समेत सयानी
पालौ प्रजाजन को सुख सो जग कीरति जात करै गुन जानी।"

विक्टोरिया के शासन काल में जारी घोषणा-पत्र से भारतेंदु को भी अटल विश्वास था कि विक्टोरिया के शासन से राष्ट्र में सुख-शांति और अमन-चैन रहेगा। वे कह उठते हैं–

"जासु राज सुख बस्यौ सदा भारत भय त्यागी
जासु बुद्धि नित प्रजा पुंज रंजन महं पागी।"

किंतु हुआ सब कुछ उल्टा ही। भारतीय जनता की जो दुर्दशा अंग्रेजी शासकों ने की वह भारतेंदु को विचलित कर देती है। देश की दुर्दशा पर वे रो उठते हैं। अंग्रेजों की राजनीति भारत को तार-तार कर देती है। तब वे सबको गले मिलकर रोने के लिए बुलाते हैं–

"रोवहू सब मिलि के आवहु, भारत भाई
हा हा! भारत दुर्दशा देखी नहिं जाई।"

अंग्रेजों की व्यापारिक नीति को वे भली-भांति जानते-समझते थे। भारत में विदेशी वस्तुओं की लोकप्रियता के कारण भारतीय औद्योगिक क्षेत्र दिन-प्रतिदिन पिछड़ता जा रहा था। विदेशी माल की खरीद बढ़ती जा रही थी। भारतीय मुद्रा विदेशों का रुख किये हुए थी। भारतेंदु अंग्रेजों की इस कूटनीति और भारतीयों की विदेशी माल के प्रति प्रेमभावना से आहत थे–

"मारकीन मलमल बिना चलत कहू नहि काम
परदेशी जुलाहन के मानहू भए गुलाम
वस्त्र कांच कागज कलम चित्र खिलौने आदि
आवत सब परदेस सो नितहि जहाजन लादि।"

वह भारतीय जनता जो अंग्रेजी राज में सरकारी नौकरियां प्राप्त कर चुकी थीं, अपने आपको अंग्रेजों से भी बड़ा शासक मानती थी। यह कटु सत्य है कि आंदोलनों को कुचलने के लिए अंग्रेजों ने भारतीयों पर डंडे बरसवाने के लिए भारतीय सिपाहियों को ही भेजा। ये पुलिस के जवान निरीह और निहत्थे भारतीयों पर निर्दयतापूर्वक वार करते थे। उनके द्वारा पशुओं से भी बदतर तरीके से भारतीयों को मारा-पीटा जाता था। जबकि पुलिस विभाग में खूब भ्रष्टाचार व्याप्त था। रिश्वतखोरी, जालसाजी, कपटीपन इत्यादि आरोप पुलिस प्रशासन पर आए दिन लगते थे। भारतेंदु ने लचर कानून व्यवस्था के साथ-साथ पुलिस की इन जुल्म-गाथाओं को भी अपने काव्य में स्थान दिया है। उदाहरण दृष्टव्य है-

"रूप दिखावत सरबस लूटै
फंदे में जो पड़े न छूटै
कपट कटारी हिय में हूलिस
क्यों सखि साजन! नहिं पुलिस।"

यही हाल अंग्रेज सरकार की कानून व्यवस्था का था। अंग्रेजी राज में कानून व्यवस्था एकदम लचर थी। भारतीयों और अंग्रेजों दोनों के लिए अलग-अलग दंड निश्चित थे। प्राय: न्यायालयों में इंग्लैंड से आए न्यायाधीश हुआ करते थे। वे भारतीयों के साथ अन्याय पूर्ण तरीके से पेश आते थे। कानून के नाम पर आये दिन पुलिस और अंग्रेजी अफसर भारतीयों को जाल में फंसाते रहते थे तथा मार-मारकर निरपराधी भारतीयों को अधमरा करते रहते थे। जिस भी व्यक्ति से अंग्रेजों को जरा-सा भी डर होता था उसे वे राजद्रोह के मुकदमें में फंसा दिया करते थे। कानून का चित्रण करते हुए भारतेंदु जी लिखते हैं-

"नई नई नित तान सुनावै,
अपने जाल में जगत फंसावै।
नित नित हमैं करै बल सून
क्यों सखि साजन! नहिं कानून।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने तत्कालीन राजनीति का वह रूप देखा है जो किसी भी प्रकार से भारतीयों के लिए लाभप्रद नहीं था। अंग्रेजों की शोषण नीति, दमनकारी नीति, 'फूट डालो और राज करो' नीति इत्यादि सभी नीतियों के केंद्र में भारतीयों को शोषण का शिकार बनाकर हर हाल में भारत पर अपनी सत्ता कायम रखना था। भारतेंदु राजभक्त होते हुए भी अंग्रेजों की इन दमनकारी नीतियों के विरोध में खड़े होकर अपने काव्य में इनका चित्रण करते हैं। प्रत्यक्षत: तो वे अंग्रेजों का विरोध अथवा बहिष्कार नहीं कर सकते थे किंतु अप्रत्यक्ष रूप में अपने काव्य एवं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजों की राजनीतिक चालों को जनता के समक्ष रखकर अपनी राजनीतिक चेतना का परिचय दिया।

2.4 भारतेंदु की काव्यगत विशेषताएं

हिंदी साहित्येतिहास में भारतेंदु युग को काव्य की दृष्टि से संक्रांति काल कहा जा सकता है। इस समय परंपरा से चली आ रही कविता का प्रणयन भी हुआ तथा काव्य के क्षेत्र में नवजागरण का प्रारंभ भी। ऐसे में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी कविता को नयी दिशा प्रदान की। समकालीन सभी कवि व लेखक उन्हें अपनी प्रेरणा मानकर चले तथा हिंदी नवजागरण को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारतेंदु ने भी अपने पूर्व की परंपरा का अनुसरण करते हुए काव्य-सृजन किया तथा साथ ही साथ अपनी एक नई परंपरा की शुरुआत भी की।

अपने पूर्व के कवियों का पूर्ण प्रभाव भारतेंदु के काव्य में मिलता है। उनके काव्य में वीरगाथा काव्य की झलक तो मिलती ही है साथ ही हम भक्ति काव्य की प्रवृत्तियों से भी रूबरू होते हैं। वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण वैष्णव भक्ति के प्रति उनका लगाव होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसीलिए कृष्ण काव्य की रचना उन्होंने मन लगाकर की। रीतिकाल में अपना बाल्यकाल बिताने के कारण उन पर रीतिकाल का प्रभाव भी खूब पड़ा है। उन्होंने रीति-मुक्त कवियों की स्वच्छंद काव्यधारा का अनुसरण किया है। भारतेंदु जी को आधुनिक काव्य के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है। साहित्य और आमजन के बीच जो खाई बनी हुई थी भारतेंदु ने उसे पाटने का काम किया। समाज और आम आदमी को कविता का विषय बनाकर उन्होंने रीतिकालीन और भक्तिकालीन परंपरा को तोड़ डाला। राष्ट्र-प्रेम, समाज सुधार, देशहित और हिंदी प्रेम जैसे विषयों पर काव्य लेखन करते हुए उन्होंने काव्य की संकीर्ण सीमा को विस्तार प्रदान किया। भारतेंदु जी के काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

1. **भक्ति काव्य**- भारतेंदु जी अपने से पूर्व भक्ति काल और रीतिकाल से प्रभावित थे। वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण वैष्णव भक्ति के प्रति उनमें अद्भुत अनुराग था। इसी कारण भगवद भक्ति से ओत-प्रोत रचनाएं लिखने में उन्होंने रुचि दिखाई। आत्मनिवेदन के पद ईश्वर के प्रति उनकी अटूट आस्था को व्यक्त करते हैं। 'श्रीरामलीला' नामक रचना में उन्होंने हरि-चरित की प्रशंसा मुक्त कंठ से की है-

   "कहत सुनत देखत जिय आनत देहि भगति अधिकाई।
   प्रेम बढ़त, अघ नसत पुन्य रति जिसमें उपजत असाई।।
   याही सों हरिचंद करत सुनि नित हरिचरित बड़ाई।।"

   कृष्ण एवं राम दोनों के चरणों में भक्तिभाव समर्पित करते हुए भारतेंदु ने सैकड़ों पदों की रचना की है। बाल लीला, रास-लीला, कृष्ण-विवाह, ब्रज वंदना, यमुना छवि, पूर्वराग, युगल विहार, भ्रमरगीत इत्यादि अनेक पद उन्होंने प्रस्तुत किये हैं। कृष्ण जन्माष्टमी का चित्रण करते समय वे कृष्ण जन्म के सौंदर्य को चित्रित करते हुए विचार व्यक्त करते हैं-

   "परसति चंद्रकला सो पूरब उज्ज्वल विमल विसद जस।
   हरीचंद ब्रज वधु चकरी सहजहि कीन्हीं निज बस।।"

   अपनी 'प्रेममालिका' रचना में 'खेलत राम कृष्ण दोऊ आंगन किलकत हंसत प्रमोद' कहते हुए राम और कृष्ण को एक साथ खेलते हुए चित्रित करते हैं। यह चित्रण उन्होंने सूरदास के काव्य से प्रेरणा लेते हुए किया है।

कृष्ण के नयनों पर भारतेंदु पूरी तरह आकर्षित हैं। कृष्ण के नेत्रों को देखकर कवि अपनी दृष्टि दूसरी ओर कर ही नहीं पाता-

"परवस भए फिरत हैं नैना, एक छन हरत न टारे।
'हरीचंद' ऐसी छवि निरखत तन मन धन सब हारे।।"

कृष्ण के नयनों पर वे अपना तन-मन-धन सब कुछ अर्पण कर चुके हैं।

2. **रीतिपरक काव्य रचना-** भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय में रीतिबद्ध शृंगारिक रचनाओं का भी प्रणयन हुआ। उन्होंने भी रीतिकाव्य रचना के सफल अंकन किये हैं। उनके सवैये, कवित्त आदि रीतिकाव्य ग्रंथों से प्रभावित रहे हैं। नायिका भेद का अनुसरण भारतेंदु ने रीतिकालीन कविता से ही किया है। उनके अनुसार नायिका यौवन, गुण और रूप की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ होनी चाहिए। अपनी रचना 'कर्पूर मंजरी' में वे नायिका के गुणों का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं-

"गोरो सो रंग, उमंग भरयो नित
अंग अनंग को मंत्र जगाए
काजर रेख खुभी दृग में
दोउ भौंहन काम कमान चढ़ाए
आवनि बोलनि डोलनि ताकी
चढ़ी चित में अति चांद बढ़ाए
सुंदर रूप सो नैनन में बस्यो
भूलत नाहिनै क्यों हू भुलाए!

नायिका का अपूर्व सौंदर्य भुलाए नहीं भूलता तथा पल-प्रतिपल हृदय पर आघात करता है। नायिका उपवन में जाकर श्रावन मास में झूला झूलती है तथा सखियों के साथ कल्लोल करती है। ऐसे में नायिका का सौंदर्य नायक को और अधिक विचलित कर देता है-

"कसी कंचुकि होत ढीली खुलि तनों के बंद
सिथिल कवरी उड़त सारी गिरत कर के छंद
प्रगट बदन दुरात, झूलत मैं तहां सानंद
मनु प्रेम सागर मनत इत उत तरह कढि बहुचंद।"

इस प्रकार भारतेंदु के काव्य में रीतिकालीन प्रवृत्तियों के दर्शन भी बहुतायत मात्रा में होते हैं।

3. **अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति–** भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अंग्रेजी शासन व्यवस्था के प्रति अपनी राजभक्ति भी प्रदर्शित की है। उनका परिवार अंग्रेजों के शासन का समर्थन करता था। भारतेंदु के परिवारजनों में राजभक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान थी। जहां भी भारतेंदु को अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित करने का अवसर मिला वे चूके नहीं। अंग्रेजी राज परिवार के प्रति अपने भावों को उन्होंने 'श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र', 'काशी में ग्रहण के हित महाराजकुमार के आने के हेतु कवित्त', 'सुमनोन्जलि', 'भारत-भिक्षा', 'विनयिनी विजय पताका', 'मानसोपायन' इत्यादि कविताओं में पूरे

जातियों के आपसी कलह के कारण समाज के सैकड़ों टुकड़े हो गए थे। वे चाहते थे कि समाज एकजुट हो जाए और सारी बुराइयां दूर हो जाएं। मदिरापान, मांस-भक्षण आदि पर उन्होंने करारा व्यंग्य किया है–

"यहि असार संसार में चार वस्तु है सार
जुआ मदिरा मांस अरु नारी संग विहार।"

भारतीय समाज में समुद्री यात्रा पर व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। भारतेंदु ने इसका विरोध करते हुए कहा–

"रोकि विलायत गमन कूप मंडूक बनायो
औरन को संसर्ग छुड़ाई प्रचार घटायो।"

विदेशी वस्तुओं के बढ़ते प्रयोग को भारतेंदु हेय दृष्टि से देखते हैं। भारतीय औद्योगिक जगत पर इसका कुप्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा था। उद्योग-धंधे चौपट होते जा रहे थे। विदेशी वस्तुओं के क्रय करने से भारतीय धन विदेशों में जा रहा था। इससे वे बहुत परेशान थे–

"वस्त्र काच कागज कलम चित्र खिलौने आदि
आवत सब परदेश सो नितहि जहाजन लादि।"

भारतीय धन का विदेश जाना उन्हें बहुत अखरता था। 'भारत-दुर्दशा' में वे लिखते हैं–

"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात इहै अति खारी।"

हिंदी भाषा के प्रति मोह– भारतेंदु हरिश्चंद्र का हिंदी भाषा के प्रति जो मोह था वह उनके काव्य में साफ दिखाई पड़ता है। हिंदी भाषा को वे सब उन्नति का मूल मानते हैं। यद्यपि वे सभी भाषाओं का सम्मान करते हैं। अंग्रेजी, हिंदी, उर्दू और संस्कृत का उन्हें अच्छा ज्ञान था। कुछ क्षेत्रीय भाषाओं का भी उन्हें ज्ञान था परंतु खड़ी बोली हिंदी और इसके प्रचार-प्रसार के प्रति इनका लगाव देखते ही बनता था। हिंदी की उन्नति के लिए इन्होंने लिखा है-

"प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि जत्न
राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न
भाषा सोधहु आपनी, होइ सबै एकत्र
पढ़हु पढ़ावहु लिखहु मिलि, छपवावहु कछु पत्र।"

भाषा के प्रति प्रेम की यह प्रवृत्ति भारतेंदु युग के लगभग समस्त कवियों में मिलती है। भारतेंदु जी के काव्य में यह चरम पर है। इसका प्रमुख और एकमात्र कारण है कि उनके समय में भाषायी आंदोलन का सूत्रपात हो चुका था। भारतेंदु जी तो सर्वमान्य मत प्रस्तुत करते हैं–

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
निज भाषा उन्नति बिना मिटै न हिय को सूल।"

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए विद्वानों की सभा में जाकर भारतेंदु की प्रसन्नता चरम पर पहुंच जाती है। वे सहज ही कह उठते हैं–

"अहो अहो मम प्रान प्रिय आर्य भ्रात जन आज
धन्य दिवस जो यह जुड़ो हिंदी हेतु समाज।"

इस विद्वत सभा में वे सभी हिंदी प्रेमियों के समक्ष निवेदन करते हैं–

"करहु विलंब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल
निज भाषा उन्नति करहू प्रथम जो सब करै भूल।"

7. **काव्यरूप की विविधता–** भारतेंदु हरिश्चंद्र ने दोहे, पद, कवित्त और सवैयों आदि की रचना विविध काव्यरूपों में की है। इन्होंने अपने काव्य लेखन में मुक्तक और प्रबंध काव्य के बीच की रचनाओं को स्थान दिया गया है। इन्हें निबंध काव्य, वर्णनात्मक काव्य और काव्य कहानी का नाम दिया है। हिंदी साहित्य में भारतेंदु ने इस प्रकार की रचनाओं का सूत्रपात किया। किसी भी विषय पर चिंतन करके पद्यबद्ध लेख के रूप में प्रस्तुत रचना को निबंध काव्य नाम दिया गया है। हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान, बकरी विलाप, प्रातः समीर, रिपनाष्टक आदि रचनाएं इसी कोटि की रचनाएं मानी जाएंगी।

बिना कथा सूत्र के किसी दृश्य का वर्णन करते हुए जो काव्य रचना की जाए उसे वर्णनात्मक काव्य कहा जा सकता है। भारतेंदु जी की 'हिंडोला', 'होली लीला' और 'मधुमुकुल छंद' ऐसी ही रचनाएं हैं। जिस रचना में कथा का लघु एवं क्षीण सूत्र वर्तमान हो और किसी घटना का विवरण प्रस्तुत किया जाए उसे विवरणात्मक काव्य से अभिहित किया जाता है। भारतेंदु की 'भारत-भिक्षा', 'भारत वीरत्व' और 'विजयिनी विजय वैजयंती' ऐसी ही रचनाएं हैं।

इनके अतिरिक्त भारतेंदु का काव्य मुक्तक है जिसमें प्रत्येक छंद स्वतंत्र है तथा काव्यानंद देने में पूर्ण है। इन्होंने साधारण मुक्तकों की रचना भी की है तथा प्रगीत मुक्तक भी रचे हैं। प्रेम तरंग, प्रेम माधुरी, प्रेम फुलवारी, प्रेम प्रलाप, बोधगीत, विनय प्रेम पचासा, गीत गोविंदानंद, होली, मधुमुकुल, वर्षा विनोद आदि रचनाएं इनकी मुक्तक रचनाएं हैं। इन्होंने लोकगीतों की भी रचना की है। कजली, दादरा, ठुमरी, गजल, लावनी, बारहमासा, चैती इत्यादि लोकगीत भी इन्होंने लिखे हैं।

8. **भाषा-शिल्प–** काव्य-प्रणयन के लिए भारतेंदु ने न तो पूर्व परंपरा के अनुसार ब्रज भाषा को ही केवल काव्य भाषा के रूप में मान्यता दी और न ही तत्सम शब्द बाहुल्य संस्कृत निष्ठता को काव्य में स्थान दिया। उन्होंने काव्य रचना के लिए सरल, सरस, सहज, स्पष्ट एवं परिष्कृत ब्रजभाषा को अपनाया। रीतिकाल में जो ब्रजभाषा का रूप दिखाई पड़ता है वह क्लिष्ट होने के साथ-साथ कृत्रिम भी लगता है। परंतु भारतेंदु ने जिस ब्रज भाषा का प्रयोग किया है वह खड़ी बोली हिंदी के बहुत निकट है। काव्य रचना हेतु उन्होंने ब्रज भाषा में तद्भव शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से किया है। ब्रज भाषा के पारंपरिक स्वरूप को त्यागते हुए उन्होंने उसके लोक प्रचलित, बोधगम्य और परिष्कृत रूप को महत्व दिया। उदाहरणतः

"नैना वह छवि नाहिन भूलै।
दया भरी चहु दिसि की चितवनि नैन कमल दल फूलै।
वह आवनि वह हसनि छबीली वह मुसकनि चित चोरै।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह देखन चहुं कोरै।
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछै।
वह बीरी मुख वेनु बजावति पीत पिछौरी काछै।
पर बस भए फिरत हैं नैना एक छन टरत न टारै।
'हरिचंद' ऐसी छवि निरखत तन मन धन सब हारै।"

भाषा में तत्सम शब्दों से उन्होंने दूरी बनाकर रखी है। मारग, यथारथ, विथा, विरथा जैसे तद्भव शब्दों के प्रयोग द्वारा उन्होंने अपनी ब्रजभाषा को लोक के सामने लाकर खड़ा कर दिया।

उर्दू, अंग्रेजी और स्थानीय शब्दों के प्रयोग इनकी भाषा में यदा-कदा दिखाई पड़ते हैं। अंग्रेजी शब्दों के अधिकांश प्रयोग उन्होंने व्यंग्य रचनाओं में किये हैं–

"विष्णु वाहनी, पोर्ट पुरुषोत्तम, भद्य मुरारी
शैंपेन शिव, गौरी गिरीश, ब्रांडी ब्रह्म बिचारी।"

उर्दू का ज्ञान भारतेंदु को उतना ही था जितना अंग्रेजी और संस्कृत का। अर्थात वे उर्दू के अच्छे जानकार थे परंतु काव्य-प्रणयन में उन्होंने उर्दू के प्रचलित और साधारण शब्दों को ही अपनाया है। खाना, तमाशा, ऐशो-आराम आदि शब्द यहां मिल जाते हैं–

"खाना पीना नाच तमाशा लाख ऐश आराम सभी
जैसे बिंजन नमक बिना त्यों राम बिना वे काम सभी।"

काशी के निवासी होने के कारण बनारसी भाषा उन्हें अत्यंत प्रिय थी। भाषा को सुगम, बोधगम्य बनाने के लिए उन्होंने स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग भी प्रचुरता से किया है। सरल भाषा के कारण ही उनके गीतों को सर्वप्रिय माना गया है। उदाहरण दृष्टव्य है–

"कैसे छिपाऊं छिपत नहीं सजनी
छैला मदमाती मई मधु मखियां
सांवरो रूप देख परबस भई इन
कुल-लाज तनिक नहीं रखियां।"

इस प्रकार अंग्रेजी, उर्दू और स्थानीय भाषा की शब्दावली से युक्त ब्रज भाषारूप की अपनी अलग ही छटा भारतेंदु काव्य में दिखाई पड़ती है। ऐसा उन्होंने जनसामान्य से काव्य भाषा को जोड़ने के उद्देश्य से किया जिसमें वे पूर्णतः सफल भी रहे। उनके इसी प्रयास से बाद में खड़ी बोली भी हिंदी कविता में प्रमुख स्थान प्राप्त कर पाई।

9. **छंद विधान–** भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अधिकतर प्रगीत मुक्तक रचे हैं जो कि विषम मात्रिक छंदों के अंतर्गत आते हैं। इनके गीतों की गति मात्राओं पर निर्भर है। चरणों की संख्या भी असमान है। किसी पद में दस चरण हैं तो किसी में केवल चार ही हैं। प्रथम पंक्ति प्रायः छोटी ही रखी गई है। उदाहरण के रूप में निम्नलिखित पद द्रष्टव्य हैं–

"तुम्हैं तो पतितन ही सों प्रीति।
लोकरू बेद विरुद्ध चलाई क्यों यह उलटी रीति।
सब बिधि जनत हौं निश्चय करि तुमसों छिप्यो न नैक।
बेद पुरान प्रभाव तजन को मेरो यह अविवेक।
महापतित सब धर्म बिवर्जित श्रुति निंदक अधखान।
मरजादा वे रहित मनस्वी मानत कहु न प्रमान
जानत भए अजान काहे क्यों रहे तेल दै कान।
तुम्हें छोड़ि जग को नहिं जो मोहि बिगरयो करत बखान।
बलिहारी यह रीझि शवरी कहां खुटानी आय।
हरिचंद सो नेप निबाहत हरि कहु कही न आय।"

प्रस्तुत पद की प्रत्येक पंक्ति में मात्राओं की संख्या एक-सी नहीं है। अनेक पंक्तियों द्वारा छंद में प्रभाव क्षमता को बढ़ाने का प्रयास किया गया है।

भक्तिकालीन कवियों से भारतेंदु ने पद लेखन की काव्य परंपरा को ग्रहण किया। पद-निर्माण में विविध राग-रागिनियों के आधार पर स्वर एवं लय का पूरा ध्यान रखा गया है। उदाहरण स्वरूप–

"धनि ये मुनि वृन्दावन वासी।
दरसन हेतु विहंगम है रहे मूरति मधुर व्यासी।
नव कोमल दल पल्लव द्रुम पै मिलि बैठत है आई।
नैननि मूंदि त्यागी कोलाहल-सुनहि वेनु धुनि भाई।
प्राननाथ के मुख की बानी करहि अमृत रस पान।
'हरीचंद' हम कौ सोऊ दुर्लभ यह विधि की गति आन।"

रीतिकाव्य से भारतेंदु ने दोहा, कवित्त और सवैया छंदों को ग्रहण किया है। इनके इन छंदों में रीति कवियों की भांति चमत्कार विलक्षणता नहीं है अपितु सरलता और भवाभिव्यक्ति की पूर्णता इनके काव्य की विशेषता है। इन्होंने कवित्त के साथ ही देव धनाक्षरी का प्रयोग भी किया है। मत्तगयंद, अरसात, सुंदरी और किरीट सवैयों में भी भारतेंदु ने काव्य रचना की है। लोकगीतों की रचना इन्होंने कजरी, होली, लावनी आदि छंदों में की है। इनके काव्य में उर्दू, फारसी तथा बंगाली भाषा के छंदों के प्रयोग भी देखे जा सकते हैं। अत: भावाभिव्यक्ति के अनुसार ही छंदों के प्रयोग इनके काव्य की विशेषता है।

10. **रस योजना–** भारतेंदु हरिश्चंद्र के काव्य से उनके दो रूप सामने आते हैं– प्रथम तो भक्त का रूप तथा द्वितीय उनका कवि रूप। इनके संपूर्ण काव्य में शायद इसीलिए शांत रस एवं शृंगार रस का परिपाक हुआ है। व्यंग्यपूर्ण रचनाओं में कहीं-कहीं हास्य रस का भी प्रयोग हुआ है लेकिन ऐसी रचनाएं कम ही हैं। शृंगार वर्णन के अंतर्गत भारतेंदु ने संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सुंदर प्रणयन किया है। संयोग शृंगार का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

"आज कुंज मंदिर अनंद भरि बैठे स्याम
स्यामा संग रंगन उमंग अनुराग है।
घन घहरात बरसात होत जात ज्यों ज्यों
त्यों ही त्यों अधिक दोऊ प्रेम पुंज पाग है।।"

इस कवित्त की पंक्तियों में कवि ने राधाकृष्ण के युगल रूप का माधुर्यपूर्ण चित्रण किया है। वर्षा ऋतु में फुहारें उनके शरीर को काम वासना से ग्रसित कर रही हैं और वह युगल रूप मानों एकाकार हो गया हो।

भारतेंदु के काव्य में शांत रस का भी सुंदर परिपाक हुआ है। वैष्णव भक्ति में संलग्न भारतेंदु ने जहां भी भक्ति पदों की रचना की है वहीं शांत रस का सुंदर समायोजन दिखाई पड़ता है–

"भावत हरि को बाल विनोद
श्याम राम मुख निरखि निरखि, सुख मुदित शोहिबौ जननि जसोद।"

"नाथ तुम अपनी ओर निहारो
हमरी लखते अबलौगुन औगुन अपने गुन बिसराई।
तौ तरते किमि अजामेल से पापी देहु बताई
अब लौ तौ कबहुं नहिं देख्यो जन के औगुन प्यारे
तौ अब नाथ नई क्यों ठानत भारबहु बार हमारे।"

भारतेंदु ने वीर रस के उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। देशभक्ति से संबंधित रचनाओं में ऐसे उदाहरण प्राप्य हैं। एकाध स्थान पर रौद्र, भयानक और अद्‌भुत रस को भी देखा जा सकता है किंतु शांत और शृंगार रस को ही प्रमुख रूप से इनके काव्य में स्थान मिला है।

11. **अलंकार-वर्णन–** रीति युग में अलंकारों के बोझ से लदी कविता को भारतेंदु ने आधुनिक युग में मुक्त करने के सार्थक प्रयास किये। भारतेंदु ने इस प्रवृत्ति को दूर कर दिया। वे सीधी-साधी भाषा में बात करने के पक्षधर थे। काव्यालंकारों से दुरूह बना काव्य उन्हें कभी भी रुचिकर न था। अलंकार वर्णन उनके काव्य में सहज और स्वाभाविक रूप से ही आया है। उनके काव्य में मुख्यतः अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, संदेह, पुनरुक्ति प्रकाश आदि अलंकारों को स्थान मिला है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

अनुप्रास : *"तरनि तनुजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।"*

यमक : *"अमल कमल कर पद बदन जमल कमल से नैन।*
क्यों न करत कमला विमल कमल नाभ संग सैन।।"

पुनरुक्ति प्रकाश :

वह वन वन विहरन कुंज कुंज तरु पोते
वह गल भुज डालन प्रीति प्रीति की घातै

वह चंद चांदनी और निराली रातें
एक एक की सौ सौ जी में खटकती बातें।

उपमा : *नागरी रूप लता सी सो है*
कमल सो बदन पल्लव से कर पद देखत ही मनमोहे।"

अतः अलंकारों का यथोचित वर्णन भारतेंदु के काव्य में प्राप्त होता है जो कि सहज एवं स्वाभाविक रूप में ही है।

2.5 पाठांश

2.5.1 प्रेम-माधुरी

बार बार पिय आरसी सत देखहु चित लाय।
सुंदर कोमल रूप में दीठ न कहुं लगि जाय।।
देखन देहुं न आरसी सुंदर नन्दकुमार।
कहुं मोहित ह्वै रूप निज, मति मोहिं देहु विसार।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'प्रेम माधुरी' काव्य संकलन से लिए गए हैं। गोपी श्रीकृष्ण से अपने ही रूप को दर्पण में देखने से मना करती हुई कहती है–

व्याख्या

हे प्रियतम! तुम्हारे लिए बार-बार इस तरह दर्पण को देखना उचित नहीं है। तुम्हारे लिए अपना रूप देखने की चाह तो अपने हृदय से निकाल देना ही उचित है। तुम्हारा कोमल रूप स्वयं में अद्वितीय है, उसे किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे ऐसा करने से कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे कोमल गात पर तुम्हारी ही नजर लग जाये। इस सुंदर संदर्भ को समाज की नजरों से तो बचाना ही है साथ ही स्वयं की नजर भरी दृष्टि से भी ओझल रखा जाये तो उचित होगा। वह आगे कहती है कि, हे सुंदर नंद कुमार (श्रीकृष्ण) तुम्हें यह दर्पण नहीं देखने दूंगी। कहीं ऐसा न हो कि तुम अपने सौंदर्य पर रीझकर मुझे विस्तृत कर दो।

विशेष

1. दर्पण यथार्थ का सूचक है।
2. दोहा छंद का चित्रण है।
3. ब्रज भाषा का प्रयोग।
4. पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार है।
5. नजर पत्थर को भी तोड़ देती है, ऐसी धारणा है।
6. गोपी के मन का द्वन्द्व व्यक्त है।
7. सौंदर्य पर मुग्ध होना नैसर्गिक स्वभाव है।

राखत नैनन मैं हिय मैं भरि दूर भए छिन होत अचेत है।
सौतिन की कहै कौन कथा तसीवर हूं सों सतराति सहेत है।
लाग भरी अनुराग भरी 'हरिचंद' सबै रस आपुहिं लेत है।
रूप-सुधा इकली ही पियै पियहू को न आरसौ देखन देत है।।।।

प्रसंग

प्रस्तुत काव्यांश हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'प्रेम माधुरी' काव्य संकलन से लिया गया है। इसमें प्रियतम के प्रेम में डूबी प्रियतमा की स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

व्याख्या

प्रेमिका अपने प्रियतम को नेत्रों में बसाये रखती है। हृदय में दिन-रात उन्हीं का नाम लेती रहती है। उससे एक पल भी अलगाव उसे पसंद नहीं है। अगर कोई उसे प्रियतम को दूर करने का सुझाव देता है पलभर में अचेत हो जाना उसकी नियति बन जाती है। अगर उससे सौतन के बारे में चर्चा कर दी जाए, तो उसका रौद्र रूप देखते ही बनता है। जब वह सौतन की काल्पनिक तस्वीर से इतनी नफरत करती है तो वास्तविक सौतन के सामने आने पर उसका क्या हाल होगा? कल्पना से परे है। उसके सामने प्रेम की बातें की जाए या अनुराग का प्रसंग छेड़ा जाये। दोनों ही स्थिति में वह प्रियतम के प्रेम में सदा आनंदित रहना चाहती है। इस प्रेम रस का किसी को पता भी नहीं चलने देती। वह इतनी सयानी है कि नंदलाल के अमृत रूपी सौंदर्य का पान अकेले ही करना चाहती है। अगर उस समय उसका पति भी सामने आ जाए तो भी, तनिक भी नहीं शरमाती। उस रूप-दर्पण को अपने अधिकारों में रखना चाहती है।

विशेष

1. प्रेमी के प्रति समर्पित प्रेमिका का वर्णन है।
2. सौतियाडाह का प्रसंग जीवंत है।
3. श्रीकृष्ण पर अपना एकछत्र अधिकार जताना उनकी प्रेमिका का मूलाधिकार है।
4. ब्रजभाषा
5. सवैया छंद
6. रूपक अलंकार
7. प्रिय को सदैव स्वयं में समाहित रखना ही प्रेमी की अभीप्सा होती है।

कूकै लगीं कोइलैं कदंबन पै बैठि फेरी
धोए-धोए पात हिलि-हिलि सरसै सगे।
बोलै लगे दादुर मयूर लगे नाचैं फेरी
देखि कै संजोगी जन हिय हरसै लगे।।2।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद्यांश हिंदी साहित्य के आधुनिक युग के जन्मदाता भारतेंदु हरिश्चंद्र के प्रसिद्ध काव्यसंग्रह 'प्रेम-माधुरी' से लिया गया है। वर्षा ऋतु के आगमन से सहृदयशील का द्रवित होना स्वभाविक है। कविवर भारतेंदु हरिश्चंद्र वर्षा ऋतु का मनोहारी वर्णन करते हुए कहते हैं–

व्याख्या

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। सच कहा जाए तो जीवन में क्रमबद्धता के लिए परिवर्तन आवश्यक है। प्रत्येक ऋतु अपने विलक्षण बदलाव से वातावरण के साथ मन:स्थिति को भी प्रभावित करती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र वर्षा ऋतु के आगमन से होने वाले परिवर्तन को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जब वर्षा ऋतु आती है तो कदम्ब के वृक्षों की डालियों पर कोयल कूकने लगती है। जिससे कानों में मधुर रस का संचार होने लगता है। जो पत्ते ग्रीष्म ऋतु की धूल से ढके हुए थे, वे वर्षा के जल से धुलकर मनोहर लगने लगते हैं। उनका धीरे-धीरे हिलना मन में सरसता का भाव उत्पन्न करता है। मेंढक टर्र-टर्र कर अपनी प्रसन्नता का अहसास कराते हैं। जो मोर ग्रीष्म ऋतु की तपन से बेहाल थे, मदमस्त होकर नाचने लगते हैं। प्रकृति के इस खुशनुमा माहौल को देखकर संयोगी जन अपने प्रिय के सामीप्य से गदगद होने लगे हैं।

विशेष

1. वर्षा ऋतु के आगमन की सूचना कोयल, मोर, दादुर द्वारा दे दी जाती है।
2. प्रकृति का उद्दीपन रूप वर्णित है।
3. ब्रज भाषा।
4. अनुप्रास अलंकार-कूकै कोयलें कदंबन तथा पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार-धोए-धोए, हिलि-हिलि में दर्शनीय है।
5. शृंगार रस।

पहिले ही जाय मिले गुन में श्रवन फेरि
रूप-सुधा मधि कीनो नैनहू पयान है।
हंसनि नटनि चितवनि मुसुकानि सुघराई
रसिकाई मिलि मति पय पान है।
मोहि मोहि मोहन-मई री मन मेरो भयो
'हरीचंद' भेद ना परत कछु जान है।
कान्ह भये प्रानमय प्रान भये कान्हमय
हियमेंन जानी परै कान्ह है कि प्रान है।।3।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद्यांश हिंदी खड़ी बोली के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'प्रेम माधुरी' काव्य संकलन से लिया गया है। प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रेम में डूबी प्रियतमा गोपी अपनी मनोदशा का वर्णन करते हुए सखि से कहती है–

व्याख्या

हे सखि! कृष्ण के गुणों का श्रवण करने से पहले ही मेरे प्राणों का उस प्रियतम से मिलन हो गया। मैं स्वयं में तथा श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं कर पा रही हूं। वह नटखट श्रीकृष्ण अपने सर्वग्राह्य गुणों के कारण मुझमें समा गया है। मेरे नेत्रों ने केवल श्रीकृष्ण की छवि का दर्शन

किया है। उस मनमोहन की नटखट छवि, उसकी हंसी तथा मुस्कराहट मेरी आंखों में समा गई है। मेरी बुद्धि ने श्रीकृष्ण के अमृत तुल्य गुणों का पान किया है। मेरा मन कहता है कि मैं अब मोहन-मोहन ही रटती रहूं। अर्थात मेरा मन भी मोहनमय हो गया है। सखि कहती है कि मोहन और मुझमें भेद कर पाना दुष्कर ही नहीं असंभव है। मेरे प्राण कान्हा के प्राणों से जा मिले हैं अर्थात वह मेरे लिए प्राणमय हो गया है। अब यह बता पाना असंभव है कि कान्हा प्राण है या प्राण कान्हा है।

विशेष

1. प्रियतमा का कृष्ण के प्रति समर्पण का भाव व्यंजित है।
2. हृदय, तन, मन सहित गोपी का कृष्णमय हो जाना अद्वैतावस्था का प्रमाण है।
3. आदर्श प्रेमभाव की व्यंजना।
4. कबीरदास की आत्मा भी परमत्व से मिलने पर यही भाव व्यक्त करती है–'लाली मेरे लाल की जित देखूं नित लाल। लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गई लाल।।'
5. ब्रजभाषा।
6. सवैया छंद।
7. नायिका के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण।
8. मोहि मोहि मोहन में अनुप्रास तथा पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार है।

करि कै अकेली मोहिं जात प्राननाथ अबै
कौन जानै आय कब फेर दुख हरिहौ।
औध को न काम कछू प्यारे घनश्याम बिना
आप कैं न जीहैं हम जो पै इतै धरिहौ।
'हरीचंद' साथ नाथ लेन मैं न मोहिं कहा
लाभ निज जीअ मैं बताओ तो बिचरिहौ।
देह संग लेते तो टहलहू करत जातो
एहो प्रान-प्यारे प्रान लाइ कहा करिहौ।।4।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद्यांश हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के सूत्रधार भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'प्रेम माधुरी' काव्य संकलन से लिया गया है, जो स्पष्ट करता है कि गोपियों ने श्रीकृष्ण के साथ मिलकर प्रेम का सफल निर्वाह किया। उनका उठना-बैठना, चलना-फिरना कृष्णमय हो गया। ऐसे में अपरिहार्य कारणों से जब कृष्ण को मथुरा जाना पड़ा तो गोपियों को एक-एक दिन एक युग के समान लगने लगा। व्यथित होकर गोपी कहती है–

व्याख्या

हे प्राणनाथ! तुम मुझे अकेला किसके सहारे छोड़ गए। यहां मेरा कौन अपना है? न जाने तुम्हारे लौटने में कितना समय लगे और तुम आकर मेरा दुःख दूर करो। जब आने का समय नहीं मालूम तो मेरा दुख-दर्द कैसे कम करोगे। अवधि की सीमा का जब हमें ज्ञान नहीं है तो हम

किसे आधार मानकर प्रतीक्षा करें। हमारे लिए तो घनश्याम ही सर्वोपरि है, जिनके बिना हमारा एक पल भी जीना संभव नहीं है। हरिश्चंद्र जी कहते हैं कि गोपियों का तर्क यही है कि उनके हृदय में जाने किस लाभ की कामना थी। हमें साथ ले जाते तो उन्हें जाने कितना नुकसान उठाना पड़ता? जबकि प्रेम में लाभ-हानि का तो प्रश्न ही नहीं उठता। विचार मंथन करके हमें यह समझायें कि किस लाभ हेतु प्राणनाथ हमें यहीं दुख की आग में जलने को छोड़ गए। हे प्राणनाथ! अगर तुम्हारे साथ हम भी जाते तो तुम्हारा क्या अहित होता? हे प्राणों के प्रियवर! हम किसके सहारे अपनी सूखी हड्डियों में प्रेम का संचार करें, कोई उपाय हो तो हमें अवश्य बता दो।

विशेष

1. गोपियों की विरह-व्यथा व आत्मनिवेदन की भावना व्यक्त है।
2. प्रेम के व्यवहार में लाभ-हानि का कोई स्थान नहीं होता।
3. प्रेम में समर्पण की पराकाष्ठा का वर्णन है।
4. ब्रजभाषा।
5. सवैया छंद।
6. रूपक अलंकार।
7. गोपियों की तर्कशीलता व वाक्चातुरी व्यक्त है।

गुरु-जन बरजि रहे री बहु भाँति मोहिं
सक तिनहूं की छाँडि प्रेम-रंग राची मैं।
त्योंही बदनामी लई कुलटा कहाई हौं
कलंकिनिहु बनी ऐसी प्रेम-लीक खांची मैं।
कहै 'हरिचंद' सबै छोड़यो प्रान-प्यारे काज
यातैं जग झूठयो रह्यो एक भई सांची मैं।
नेह के बजाय बाज छोड़ि सब लाज आज
घूंघट उघारि ब्रजराज-हेतु नाची मैं।।5।।

प्रसंग

प्रस्तुत सवैया हिंदी खड़ी बोली के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'प्रेम माधुरी' काव्य संकलन से लिया गया है। श्रीकृष्ण के प्रेम में गोपियों ने कुलमर्यादा को भी त्याग दिया। यहां एक सखि दूसरी सखि से अपने ऊपर पड़े श्रीकृष्ण के अभिष्ट प्रभाव को व्यक्त करती हुई कहती है–

व्याख्या

हे सखि! गुरुजन मुझे तरह-तरह से समझाकर, रोककर थक गए लेकिन मैं नहीं मानी। मैंने उनके प्रयासों को तिरस्कृत कर दिया। उनका मुझे तरह-तरह से समझाना-बुझाना व्यर्थ हो गया है। मैं श्रीकृष्ण के प्रेम रंग में यूं डूब गई हूं कि मेरे लिए उनका प्रेम ही सर्वोपरि है। जैसे ही मैं उनके प्रेम में डूबी, बदनाम हो गई। मुझे कुलटा कहा जाने लगा। मेरे प्रेम मार्ग में बढ़

जाने के कारण मुझे कलंकिनी भी कहा जाने लगा है। इतना सब होने पर भी मैंने प्रेममार्ग नहीं छोड़ा। गोपी कहती है कि मैंने अपने प्राणप्रिय प्रियतम के लिए दुनियादारी वाले सभी कार्य-व्यवहार त्याग दिये हैं। मुझे अब सारा संसार झूठा-सा लगने लगा है और केवल मैं सच्ची लगने लगी हूं। मैंने प्रेम के वशीभूत होकर समाज के बंधनों को, लोक की लाज को छोड़ देने में ही अपनी भलाई समझी है। इसलिए मैंने शर्म का घूंघट उतारकर रख दिया। इस तरह मैं ब्रजराज (श्रीकृष्ण) के लिए नृत्य करने को बाध्य हो चुकी हूं।

विशेष

1. गुरु की शिक्षा सर्वोपरि मानी गई है किंतु प्रेम-अवरोधक होने की दशा में त्याज्य।
2. संसार की रीति है कि प्रेम-भाव न समझने के कारण वह प्रेमी को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। वस्तुतः प्रेमरीति संसाररीति से श्रेष्ठ है।
3. पर्दे को औरत का गहना माना गया है, लेकिन प्रेम में इसका भान नहीं रहता।
4. कुलटा, कलंकिनी शब्द नारी के चरित्र पर उंगली उठाते हैं।
5. प्रेम के लिए लाज छोड़ देने का प्रसंग मीराबाई का स्मरण कराता है।
6. ब्रजभाषा।
7. एकनिष्ठ प्रेम की पराकाष्ठा।

बाढ़यौ करै दिन ही छिन ही छिन कोटि उपाय करौ न बुझाई।
दाहत लाज समाज सुखै गुरु को भय नींद सबै संग लाई।
छीजत देह के साथ में प्रानहु हा 'हरिचंद' करौ का उपाई।
क्योंहू बुझे नहिं आंसू के नीरन लालन कैसी दवारि लगाई।।6।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद्यांश भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'प्रेम माधुरी' काव्य संकलन से उद्धृत है। इसमें कृष्ण के वियोग से गोपियों में पैदा हुई विरह-व्यथा का चित्रांकन किया गया है।

व्याख्या

अपनी विरह-व्यथा बयान करते हुए एक गोपी कहती है कि मेरा विरह बाढ़ के समान दिन-दूना, रात-चौगुना बढ़ता जा रहा है। मेरा शरीर विरह के कारण प्रतिदिन सूखता जा रहा है। मेरे द्वारा किये गए सभी उपाय व्यर्थ सिद्ध हो रहे हैं, लेकिन मेरी विरहाग्नि बुझ नहीं पा रही है। गुरु का भय मुझे रह-रहकर सता रहा है। समाज निर्मित बेड़ियां तोड़ना कठिन हो रहा है। लाज के पहरे से मेरी नींद भी जाती रही। हे प्रियतम! तेरे विरह में शरीर के साथ मेरे प्राण भी धीरे-धीरे मेरा साथ छोड़ने को तत्पर हैं। हरिश्चंद्र के शब्दों में; गोपी कहती हैं कि हे श्रीकृष्ण! कुछ उपाय करके इस विरह की अग्नि में जलती मुझ प्रेयसी को बचा लो। तुम्हारी याद में मेरी आंखों से आंसू थम नहीं रहे हैं, तुमने यह कैसी अग्नि लगाई है।

विशेष

1. विरह की मार्मिकता का जीवंत प्रत्यक्षीकरण।
2. ब्रजभाषा।

3. सवैया छंद।

4. रूपक अलंकार।

5. गुरु समाज का प्रदर्शक होता है उसका भय लगना स्वाभाविक है।

6. विरह-पीड़ा में अश्रुस्राव नैसर्गिक प्रक्रिया है।

7. विरह की अग्नि शरीर को भी सुखा देती है, यह प्राकृतिक सत्य मुखर है।

छाड़ि कै मोहिं गए मथुरा कुवरी तहं जाय भई पटरानी।
जो सुधि लीनो तो जोग सिखायो भए 'हरिचंद' अनूपम ज्ञानी।
गोप सों जो पैस्भए रजपूत लड़ौ किन जोड़ को आपुने जानी।
मारत हौ अबलागन को तुम याही मैं वीरता आय खुटानी।।7।।

प्रसंग

प्रस्तुत काव्यांश भारतेंदु हरिश्चंद्र की कृति 'प्रेम माधुरी' से उद्धृत है। श्रीकृष्ण ब्रज से मथुरा गए, तो वहीं के होकर रह गए। वहां उनके कुब्जा के प्रति प्रेमभाव के कारण गोपियां सौतियाडाह से दग्ध होने लगी। एक सखि श्रीकृष्ण के इस बर्ताव का बखान करती हुई दूसरी सखि से कहती है–

व्याख्या

हे सखि! श्रीकृष्ण के व्यवहार को देखो। पहले हमसे प्रेम किया, हमें अपने प्रेम में सराबोर किया। अब मथुरा जाकर कुब्जा संग प्रेम व्यवहार कर हमें और दुख दे रहे हैं। उस कुब्जा को देखो, श्रीकृष्ण ने दो मीठी बातें क्या कर लीं उन पर अपना अधिकार भी जताने लगी है। उनकी पटरानी बनकर इतरा रही है। जब श्रीकृष्ण को हमारी याद आई तो हमें योग की शिक्षा देने उद्धव को हमारे पास भेज दिया, जिससे रही-सही कसर भी पूर्ण हो गई। ऐसा लगता है कि वह (श्रीकृष्ण) ज्ञानियों के ज्ञानी हो गए हैं, और हमें ज्ञान सिखाने की बातें कर रहे हैं। हमें यह भी लगता है कि अब वे ग्वाले से राजपूत हो गए हैं। अगर वे राजपूत कहलाना चाहते हैं तो उन्हें हम अबलाओं पर अत्याचार करने से वीरता प्राप्त नहीं होगी। राजपूत तो अबलाओं की रक्षा करते हैं। गोपी कहती है, हे कृष्ण! तुम तो हम अबलाओं को मार रहे हो, इसलिए मुझे तो तुम्हारी वीरता में भी खोट दिखाई देता है।

विशेष

1. गोपी का उलाहना व उसकी वाक्चातुरी का सहज-स्वाभाविक चित्रण है।
2. सौतियाडाह का मनोवैज्ञानिक स्वरूप।
3. 'अबला को सताना वीरता नहीं, कायरता' का संदेश।
4. श्रीकृष्ण के दोहरे चरित्र का वर्णन।
5. ब्रजभाषा।

6. सवैया छंद।

7. 'योग पुरुषों को शोभा देता है स्त्रियों को नहीं' इस बात का संकेत।

बाजी करै बंसी धुनि बाजि बाजित श्रवनन,
जोरा-जोरी मुख-छवि चितहि चुराए लेत।
हसनि हंसावित जगत सों तिहारी मुरि,
मुरनि पियारी मन सब सों मुराए लेत।
'हरिचंद' बोलनि चलनि बतरानि पीत-,
पट फहरानि मिलि धीरज मिटाए लेत।
जुलफैं तिहारी लाज-कुलपन तोरैं प्रान,
प्यारे नैन-सैन प्रान संग ही लगाए लेत।।8।।

प्रसंग

प्रस्तुत काव्यांश हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के सूत्रधार भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'प्रेम माधुरी' से लिया गया है। इसमें गोपिका के ऊपर श्रीकृष्ण के बाजीगर सदृश व्यक्तित्व के प्रभाव को दर्शाया गया है।

व्याख्या

गोपिका अपनी सखि से अपनी मनोदशा व्यक्त करती हुई कहती है कि श्रीकृष्ण बाजीगर के समान हैं। जिस प्रकार एक बाजीगर अपनी कुशलता से दर्शकों का मन मोह लेता है, ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भी हमारे साथ किया है। मुरली की मधुर आवाज से हमारा ध्यान आकर्षित कर लिया, जिससे हमारे कान अन्य कोई ध्वनि नहीं सुनना चाहते। अपने मुख-लावण्य से मेरे चित्त (हृदय चेतना) को चुराकर मेरी सोचने-समझने की क्षमता भी छीन ली। अब परिणाम जो भी हो, चाहे मेरी जग हंसाई ही क्यों न हो, मैंने तो मुरली वाले श्रीकृष्ण के प्रति अपना समग्र समर्पण कर दिया है। मुझे अब तो मुरली भी अधिक प्रिय लग रही है। सखि कहती है कि बोलने, चलने और वार्तालाप से सभी तरह मैं केवल नंदलाल की ही प्रेयसी बन गई हूं। जब श्रीकृष्ण पीतवस्त्रों को धारण करके मुरली की मधुर तान सुनाते हैं तो मेरा धैर्य टूट जाता है और मैं तन-मन और आत्मा से समर्पित हो कर उन्हीं में खो जाती हूं। उनके मुख मंडल पर लटकती जुल्फें मन को आकर्षित कर लेती हैं। मैंने लोक की लाज व कुल की मर्यादा का परित्याग कर श्रीकृष्ण के प्रति समर्पण किया है। लगता है कि मेरे ये नेत्र अब प्रियतम के साथ ही रहना चाहते हैं।

विशेष

1. श्रीकृष्ण को बाजीगर के समान बताया गया है।
2. श्रीकृष्ण की मुरली की मधुर तान पर मोहित होने की स्वाभाविकता वर्णित।
3. मुखमंडल पर लटकती लटों के चित्रण से सौंदर्य की सृष्टि।
4. ब्रजभाषा।
5. सवैया छंद।

हौं तो तिहारे दिखाइवे वे हित जागत ही रहीं नैन उजार सौ।
आए न राति पिया 'हरिचंद' लिए कर घोर लौं हौं रही भार सौ।
है यह हीरन सों जड़ी रंगन तापै करी कछु चित्र चितार सौ।
देखो जू लालन कैसी बनी है नई यह सुंदर कंचन-आरसी।।9।।

प्रसंग

प्रस्तुत सवैया भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'प्रेम माधुरी' काव्य संकलन से लिया गया है। गोपिका श्रीकृष्ण के दर्शन की प्रतीक्षा करती रही लेकिन उनके दर्शन दुर्लभ ही रहे। यहां कवि ने उसकी बेचैनी का रेखांकन किया है।

व्याख्या

गोपी कृष्ण के प्रति शिकायत भाव से कहती है कि सारा संसार मुझे तुम्हारी प्रेमिका कहकर संबोधित करता है। मैं फिर भी तुम्हारे दर्शन करने के लिए बेचैन रहती हूं। तुम्हें निहारने के लिए मेरे नैन रात भर खुले रहे, मैं रात भर सो नहीं पाई। हरिश्चंद्र जी कहते हैं कि गोपियों को यह असहनीय लग रहा था कि उनका प्रियतम रात्रि में भी उसके पास नहीं था। वह कहती है कि मैं प्रात:काल तक निद्रा के भार में दबी रही। उसका कहना है कि उसका शरीर मानो हीरे से युक्त वस्त्रों से सुसज्जित है। उस पर परमात्मा रूपी चित्रकार की मनपसंद चित्रकारी भी हो रही है। लेकिन प्रियतम बिना सब व्यर्थ है। हे प्रियतम यह पूरी तरह नष्ट न हो जाए, इसलिए तुम एक बार इस कंचन काया को अवश्य देख लो।

विशेष

1. प्रतीक्षा की व्याकुलता का चित्रण।
2. रात्रि में प्रियतम बाहर रहे तो असहनीयता की अनुभूति स्वाभाविक।
3. ब्रजभाषा।
4. सवैया छंद का प्रयोग।
5. उपमा अलंकार की छठा है।

सोई तिया अरसाय कै सेज पै सो छबि लाल बिचारत ही रहे।
पोंछि रुमाल सों श्रम-सीकर भौंरन कौं निरुवारत ही रहे।
त्यौं छवि देखिबे कौं मुख तैं अलकैं 'हरिचंद जू' टारत ही रहे।
ह्वैक घरी लौं जके से खरे वृषभानु-कुमार निहारत ही रहे।।10।।

प्रसंग

प्रस्तुत काव्यांश भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'प्रेम माधुरी' काव्य संकलन से लिया गया है। प्रियतम के वियोग में वियोगिनी की क्या दशा होती है? कृष्ण की गोपी के बहाने इसका वर्णन यहां किया गया है।

व्याख्या

नाइका का कहना है कि मैं अपनी सेज पर अलसायी हुई पड़ी थी और प्रियतम की सुंदरता का विचार कर रही थी लेकिन मेरा प्रियतम मुझसे दूर था। फिर भी उसकी प्रेमभरी बातें मेरे

साथ ही थीं। उसके हाव-भावों के दृश्य ने मुझे एक पल भी उससे अलग नहीं होने दिया। जिस प्रकार कोई श्रमिक अपनी थकान को कपड़े से पौंछकर आराम की सांस लेता है, उसी प्रकार मेरा शरीर भी प्रियतम के साथ हुई प्रेमपूर्वक बातों से थक गया था। मेरा शरीर पसीने में भीगा हुआ था। जिस प्रकार भ्रमर अपनी मधुर गुंजाओं से सभी को मंत्रमुग्ध कर देते हैं, उसी प्रकार प्रियतम की मधुर बातों से मुझ पर प्रेम का नशा छा जाता है। हरिश्चंद्र जी के अनुसार गोपिका कहती है कि जिस प्रकार प्रियतम को पाकर प्रियतमा की खुशी का ठिकाना नहीं रहता, ठीक उसी प्रकार के प्रभाव के लिए मेरी इच्छा है कि मैं प्रियतम की छवि का दर्शन करते हुए उनके रूप सौंदर्य में डूब जाऊं। अगर एक घड़ी भी मैंने श्रीकृष्ण का निकटता से दर्शन कर लिया तो मेरा जीवन सार्थक हो जाएगा।

विशेष

1. श्रीकृष्ण के प्रति गोपी का अनन्य प्रेम चित्रित है।
2. प्रगाढ़ प्रेम में साथी की अनुपस्थिति भी उपस्थिति का भान करा देती है।
3. ब्रजभाषा।
4. सवैया छंद।
5. उपमा अलंकार।

2.5.2 यमुना छवि

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन हित मनहु सुहाये।।
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
के प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा।।
मनु आतप वारन तीर कौं, सिमिटि सबै छाये रहत।
के हरि सेवा हित नै रहे, निरखि नैन मन सुख लहत।।।।

प्रसंग

प्रस्तुत पंक्तियां आधुनिक हिंदी कविता के आदि कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविता 'यमुना छवि' से उद्धत की गई हैं। इन पंक्तियों में कवि ने यमुना नदी की प्राकृतिक सुषमा को व्यक्त करते हुए उसके धार्मिक महत्व को भी स्पष्ट किया है।

व्याख्या

सूर्य की पुत्री यमुना नदी के तट पर तमाल के बहुत सारे श्रेष्ठ वृक्ष दर्शनीय हैं। इन विशाल तमाल वृक्षों का सौंदर्य अनुपम है। ये झुके हुए वृक्ष यमुना जल का स्पर्श करते हुए दिखते हैं जो हृदय में आह्लाद उत्पन्न करते हैं। ऐसा लगता है मानो ये वृक्ष उचक-उचक कर जल रूपी दर्पण में अपनी छवि निहारने के लिए आतुर हों और अपनी सुंदरता देखने के लिए इनमें होड़ लगी हुई हो। या फिर यमुना के परम पवित्र जल को फलदायी मानते हुए ये लोभवश झुक रहे हैं। ऐसा लग रहा है मानो यमुना तट का ताप हरण करने को ये प्रकट हुए हैं तथा सभी सिमटकर एक साथ खड़े हुए हैं और यमुना तट को सूर्य के ताप से बचा रहे हैं। ऐसा लगता है जैसे ईश्वर की सेवा में रहते हुए ये अपने नेत्रों से यमुना जल को देखते हुए मन में सुख का अनुभव कर रहे हों।

विशेष

1. पौराणिक आख्यानों में यमुना को सूर्यपुत्री कहा गया है।
2. कवि का प्रकृति-प्रेम मोह अभिव्यक्त है।
3. अनुप्रास अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत है।

तिन पै जेहि छिन चंद जोति रक निसि आवति।
जल मैं मिलिके नभ अवनी लौं तानि तनावति।।
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।
तन मन नैन जुदात देखि सुंदर सो साभा।।
सो को कबि जो छबि कहि, सके ता जमुन नीर की।
मिलि अवनि और अम्बर रहत, छबि इक – सी नभ तीर की।।2।।

प्रसंग

प्रस्तुत काव्य-पंक्तियां आधुनिक हिंदी साहित्य के सूत्रधार भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविता 'यमुना छवि' से ली गई है। चांद का प्रतिबिंब यमुना जल में दिखने पर जिस सौंदर्य की सृष्टि होती है, उसकी अभिव्यक्ति असंभव बताते हुए कवि का कहना है कि–

व्याख्या

रात्रिकाल में जब चंद्रमा का प्रतिबिंब यमुना जल में दिखाई देता है तब ऐसा लगता है मानों पृथ्वी और आकाश दोनों मिलकर यमुना के सौंदर्य को और अधिक बढ़ा रहे हों। उस समय की शोभा से ऐसा प्रतीत होता है कि उज्ज्वल सौंदर्य दर्पण में स्वयं को निहार रहा हो। उस शोभा को देखकर तन, मन और नयन तीनों सुखमय संसार में विचरण करने लगते हैं। ऐसा कौन कवि है जो उस समय के यमुना जल के सौंदर्य का वर्णन कर सके। अर्थात उस सौंदर्य को देखकर कवियों के भाव शून्य हो जाते हैं और वे सौंदर्य-वर्णन नहीं कर पाते। उस समय पृथ्वी और आकाश के एकरूप हो जाने से यमुना जल के साथ-साथ क्षितिज का सौंदर्य भी अद्वितीय दृष्यमान होता है।

विशेष

1. अप्रतिम प्राकृतिक सौंदर्य की सृष्टि।
2. उपमा अलंकार।
3. धरती-आकाश जहां समागम करते हुए (मिले हुए) प्रतीत होते हैं, उसे क्षितिज कहा जाता है।

परत चंद्र प्रतिबिंब कहूं जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुं सोइ मन भायो।।
मनु हरि दरसन हेत चंद्र जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छबि छायो।।

कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है।
कै जल उर हरि मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है।।3।।

प्रसंग

यमुना जल में पड़ रहे चंद्रमा के प्रतिबिंब का संबंध भगवान श्री कृष्ण से जोड़ने वाली प्रस्तुत काव्य-पंक्तियां आधुनिक हिंदी कविता के आदि कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र की कृति 'यमुना छवि' से उद्धृत हैं।

व्याख्या

कवि का कथन है कहीं-कहीं यमुना के जल में चंद्रमा का प्रतिबिंब एकदम मध्य में चमकता हुआ दिखता है तो वह किसी लहर के आने पर नृत्य करता हुआ-सा प्रतीत होता है। ऐसा लगता है मानो भगवान कृष्ण के दर्शन करने को आतुर चंद्रमा यमुना जल में आकर छिप गया है। या फिर वह प्रतिबिंब यमुना की लहरों रूपी दर्पण को हाथ में लेकर अपने सौंदर्य को स्वयं निहार रहा है। या फिर ऐसा लगता है कि रास रचाते हुए भगवान श्रीकृष्ण के मुकुट की शोभा यमुना जल में दिखाई पड़ रही है। ऐसा भी लगता है जैसे जल के हृदय में ईश्वर की मूर्ति साक्षात प्रतिष्ठित है तथा उसकी परछाई यमुना जल में सुशोभित हो रही है।

विशेष

1. कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं का संबंध यमुना से है।
2. चंद्रमा का मानवीकरण किया गया है।
3. यमुना की लहरों को दर्पण सदृश बताया गया है।

कबहुं होत सत चंद कबहुं प्रगटत दूरि भाजत।
पवन गवन बस बिंब रूप जल मैं बहु साजत।
मनु ससि भरि अनुराग जामुन जल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरनि करत कलोलैं।।
कै बालगुडी नभ में उड़ी, सोहत इत उत धावती।
कई अवगाहत डोलात कोऊ ब्रजरमनी जल आवती।।4।।

प्रसंग

प्रस्तुत काव्य पंक्तियां आधुनिक हिंदी साहित्य के आधुनिक युग के सूत्रधार भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविता 'यमुना छवि' से उद्धृत हैं। यमुना के जल में प्रतिबिंबित हो रहे चंद्रमा से उत्पन्न सौंदर्य के विविध स्वरूपों की अभिव्यंजना करते हुए कवि कहता है कि–

व्याख्या

यमुना की लहरों में कभी तो चंद्रमा साक्षात प्रकट होता दिखाई पड़ता है तथा कभी वह अदृश्यमान हो जाता है। कुछ क्षण पश्चात वह पुनः प्रकट हो जाता है। वायु के प्रवाह के वशीभूत वह प्रतिबिंब यमुना जल में विभिन्न प्रकार से सुशोभित होता है। ऐसा लगता है कि

यमुना जल के अनुराग में चंद्रमा उसमें खुशी से लोट रहा हो। या फिर ऐसा लगता है जैसे यमुना-लहर की डोर के हिंडोले में चंद्रमा मस्ती कर रहा हो। ऐसा लगता है मानो कोई गौरैया आसमान में उड़ते हुए इधर-उधर दौड़ रही हो। ऐसा भी लगता है मानो कोई ब्रजबाला अकेली जल भरने को आ रही हो।

विशेष

1. बादलों के प्रवाह/प्रभाव अथवा अपनी घटती-बढ़ती प्रवृत्ति के कारण चांद कभी दिखता है, कभी नहीं दिखता।
2. जल में प्रतिबिंबित चंद्रमा के स्वरूप को वायु का प्रवाह भी प्रभावित करता है क्योंकि इससे लहरें बनती हैं।
3. उपमा अलंकार की छटा।

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटी जात जामुन जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अबिकल।।
कै कालिन्दी नीर तरंग जितौ उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत।।
कै बहुत रजत चकई चालत के फुहार जल उच्छरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत।।5।।

प्रसंग

प्रस्तुत काव्यांश आधुनिक हिंदी कविता के सूत्रधार भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविता 'यमुना छवि' से उद्धृत है। यमुना के जल में प्रतिबिंबित हो रहे चंद्रमा के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

प्रसंग

यमुना के जल में चंद्रमा का प्रतिबिंब इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो चंद्रमा प्रत्यक्ष रूप से यमुना जल में विलीन होने के लिए आतुर हो। या फिर तारक वृंद को ठगने के लिए उनसे छिपने को आतुर होकर चंद्रमा यमुना जल में प्रकट दिख रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो यमुना की लहरों ने चंद्रमा के हृदय में यमुना के प्रति प्रेमोत्पन्न कर दिया है तथा वह अनेकानेक रूप धारण कर उससे मिलन को आतुर इधर-उधर दौड़ रहा है। ऐसा लगता है मानो बहुत-सी चांदी की चकवी यमुना जल में किल्लोल कर रही हों और खुशी से जल उछाल रही हों। यमुना के जल में चंद्रमा का सौंदर्य ऐसा प्रतीत होता है मानो रात्रि का स्वामी चंद्रमा पहलवान के रूप को धारण कर अनेक प्रकार से उठता-बैठता हुआ कसरत कर रहा हो।

विशेष

1. चांद को रात्रि का राजा/स्वामी कहा जाता है।
2. चंद्रमा का आकार स्वाभाविक तौर पर परिवर्तित होता रहता है। जल में पड़ रहे उसके प्रतिबिंब में लहरों आदि के कारण भी बदलाव आता है।
3. शृंगार रस एवं उपमा अलंकार की अभिव्यंजना।

कूजत कहुं कलहंस कहूं मज्जत पारावत।
कहुं कारण्डव उडत कहुं जल कुक्कुट धावत।।
चक्रवाक कहुं बसत कहूं बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुं पियत कहूं भ्रमरावलि गावत।।
तट पर नाचत मोर बहु रोर बिधित पच्छी करत।
जल पान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब धरत।।6।।

प्रसंग

प्रस्तुत काव्य-पंक्तियां आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविता 'यमुना छवि' से ली गई हैं। विभिन्न पक्षियों के संयोग से यमुना के सौंदर्य में क्या बढ़ोतरी होती है, इसका वर्णन करते हुए भारतेंदु जी कहते हैं–

व्याख्या

यमुना के जल में कहीं-कहीं हंस कूजते हुए दिखाई पड़ते हैं तथा कहीं वे नहाते हुए दिखाई पड़ते हैं। कहीं बत्तख समूह उड़ते हुए दिख रहे हैं तथा कहीं जलमुर्गे पानी में दौड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। कहीं जल में चक्रवाक दिखाई पड़ते हैं तथा कहीं ध्यानमग्न बगुले दिखाई पड़ रहे हैं। कहीं तोते और मैना यमुना का जल पीते हुए दिखाई पड़ रहे हैं तो कहीं भ्रमर-समूह गुंजायमान करते हुए परिवेश को और अधिक शोभायमान कर रहे हैं। यमुना तट पर मयूर समूह नृत्य कर रहे हैं तथा हर्ष पूर्वक शोर मचा रहे हैं। विविध प्रकार के पक्षीगण चहचहाते हुए सुशोभित हो रहे हैं। यमुना-जल का पान कर नहाने से सभी प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। ऐसा लगता है मानो सौंदर्य साक्षात रूप धारण कर यमुना तट पर प्रस्तुत हो गया हो।

विशेष

1. पौराणिक दर्शन के अनुसार यमुना का जल पीने, उसमें नहाने से सभी सुख प्राप्त होते हैं।
2. यमुना की प्राकृतिक शोभा का मनभावन चित्रण।
3. ब्रज भाषा का सौंदर्य।
4. अनुप्रास एवं उत्प्रेक्षा अलंकार।

गतिविधि

भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं उनके समकालीन प्रमुख साहित्यकारों के चित्र इंटरनेट के सहयोग से प्राप्त कीजिए और उन्हें अपनी अभ्यास-पुस्तिका में लगाइए।

क्या आप जानते हैं?

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'हरिश्चंद्र पत्रिका', 'कवि वचन सुधा' तथा 'बाल विनोदिनी' पत्रिकाओं का संपादन किया।

2.6 सारांश

भारतेंदु के समय में भारतीय राजनीति में परिवर्तनकारी दौर चल रहा था। उपनिवेश के रूप में इंग्लैंड ने भारत का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया था। भारतीयों पर शासन करने के नाम लेकर अंग्रेजों द्वारा उनका शोषण किया जा रहा था। ब्रिटेन की महारानी ने जो घोषणापत्र 1857 की क्रांति के पश्चात जारी किया था, और जिसकी कल्पना मात्र से भारतीय सुहाने स्वप्न लोक में खो गए थे, उससे भारतीय जनता का मोहभंग होने लगा था। भारतेंदु हरिश्चंद्र का परिवार वैसे तो अंग्रेजी राज के प्रति वफादार था परंतु भारतेंदु की विचारधारा कुछ अलग प्रकार की रही। उन्होंने एक ओर तो राजभक्ति से संबंधित काव्य रचना की, वहीं दूसरी ओर अंग्रेज सरकार की दमनकारी शोषण नीति का भी खुलकर विरोध किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी भाषा और साहित्य को अपने लगभग 283 ग्रंथों से समृद्ध किया। भाषा, शैली, और नवीन विषयों का समावेश करके उन्होंने हिंदी साहित्य जगत को एक नवीन युग प्रदान किया। सबसे प्रमुख बात यह रही कि उन्होंने हिंदी भाषा साहित्य को पारंपरिक वातावरण से बाहर निकालकर एक नये मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया जो नवजागरण के नाम से अभिहित हुआ।

भारतेंदु जी अंग्रेज सरकार के राजभक्त भी थे तथा अंग्रेजों की शोषण नीति के स्पष्ट गवाह और साहित्यिक पत्रकार के रूप में उसके विरोधी भी थे। अंग्रेजों की संपूर्ण राजनीति उनकी आंखों के समक्ष साकार थी। इसीलिए उनके काव्य में राजनीतिक परिदृश्य का साकार चित्रण दृष्टिगत होता है। राजनीति की चालों से त्रस्त भारतीय जनता के असंतोष को भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने काव्य और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से व्यक्त किया है। अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय असंतोष की भावना को व्यक्त करने के पीछे एक बिंदु सामने उभर कर आता है जो कि अजीबोगरीब है। एक ओर तो साहित्यकार भारत को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त कराने की बात करते थे तथा दूसरी ओर ब्रिटिश शासन को वरदान कहते हुए उसका स्तुतिगान भी करते थे। भारतेंदु की कविता में भी यही विरोधाभास देखने को मिलता है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में तो अंग्रेज सरकार की प्रशंसा के पुल बांधे गए दिखाई पड़ते हैं तथा बाद की रचनाओं में अंग्रेजों की शोषण-नीति और दासता का विरोध तीव्रता से दिखाई पड़ता है। अंग्रेजों की व्यापारिक नीति को वे भली-भांति जानते व समझते थे। भारत में विदेशी वस्तुओं की लोकप्रियता के कारण भारतीय औद्योगिक क्षेत्र दिन-प्रतिदिन पिछड़ता जा रहा था। विदेशी माल की खरीद बढ़ती जा रही थी। भारतीय मुद्रा विदेशों का रूख किये हुए थी। प्रत्यक्षत: तो वे अंग्रेजों का विरोध अथवा बहिष्कार नहीं कर सकते थे किंतु अप्रत्यक्ष रूप में अपने काव्य एवं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजों की राजनीतिक चालों को जनता के समक्ष रखा और अपनी राजनीतिक चेतना का परिचय दिया।

साहित्य और आमजन के बीच जो खाई बनी हुई थी भारतेंदु ने उसे पाटने का काम किया। समाज और आम आदमी को कविता का विषय बनाकर उन्होंने रीतिकालीन और भक्तिकालीन परंपरा का अतिक्रमण किया। राष्ट्र-प्रेम, समाज सुधार, देशहित और हिंदी प्रेम जैसे विषयों पर काव्य लेखन करते हुए उन्होंने काव्य की संकीर्ण सीमा को विस्तार प्रदान किया। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र विलक्षण प्रतिभा के धनी थे तथा इनके युग में ओजस्वी रचनाओं का सृजन हुआ। इनका साहित्य अंग्रेजों की वास्तविकताओं से हमें अवगत करता है।

2.7 मुख्य शब्दावली

- **सूल** : शूल, कांटा।
- **विमल** : साफ, बेदाग, विशुद्ध।
- **कंचुकि** : चोली, कवचधारी, रनिवास का रक्षक।
- **प्रसूत** : उत्पन्न, उत्पत्ति का साधन।
- **कूप मंडूक** : कुएं का मेंढक, जिसके ज्ञान की सीमा बहुत संकुचित हो।
- **प्रणयन** : लाना, ले जाना, करना।
- **खेवनहार** : नाविक, पार उतारने वाला।
- **अवनि** : पृथ्वी, धरती।
- **बालगुड़ी** : गौरैया नामक पक्षी।
- **सुक** : तोता, शुगना।
- **पिक** : मयूर, मोर।

2.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. सन् 1857 में
2. सन् 1885 में
3. साम्राज्यवादी और शोषण की नीति
4. केशवचंद्र सेन के प्रयासों के परिणामस्वरूप
5. 1856 ई. में
6. फोर्ट विलियम कॉलेज की
7. सन् 1825 में कलकत्ता से
8. लगभग 283 ग्रंथों से
9. सात वर्ष की अल्पायु में
10. सन् 1757 में
11. लार्ड लिटन के द्वारा
12. 1882 ई. में
13. 'स्वदेशी' आंदोलन
14. 'श्रीरामलीला' नामक रचना में
15. जाति-पाति को

16. वर्णनात्मक काव्य

17. दोहा, कवित्त और सवैया छंदों को

18. (i) भक्त का रूप, (ii) कवि का रूप

19. अनुप्रास अलंकार

2.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. विषयवस्तु की दृष्टि से भारतेंदु युगीन कविता की दो विशेषताएं बताइए।
2. भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविता में भाषा संबंधी विचारों पर टिप्पणी लिखिए।
3. भारतेंदु ने अंग्रेजी राज का विरोध क्यों किया जबकि वे राजभक्त परिवार से संबंधित थे?
4. 'नए जमाने की मुकरी' रचना में भारतेंदु जी ने अंग्रेज सरकार की खिंचाई कैसे की?
5. भारतेंदु के काव्य के भाषा शिल्प पर टिप्पणी लिखिए।

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र के काव्य की सामान्य विशेषताएं बताइए।
2. हिंदी नवजागरण के सूत्रपात में भारतेंदु-काव्य का क्या योगदान रहा? विस्तारपूर्वक लिखिए।
3. तत्कालीन भारतीय राजनीति के विश्लेषक के रूप में भारतेंदु जी के क्या विचार थे?
4. पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और काव्य रचना के माध्यम से भारतेंदु जी ने नवजागरण और हिंदी को किस प्रकार नई दिशा प्रदान की?
5. "भारतेंदु का आगमन हिंदी भाषा-साहित्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था।" इस कथन को सोदाहरण सिद्ध कीजिए।
6. सप्रसंग व्याख्या कीजिए-

   (क) एक ही गांव में बास सदा.....आंखियां दुखियां नहिं मानती हैं।

   (ख) तरनि तनूजा तट तमाल.....निरठि नैन मन सुख लहल।

2.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. नंद दुलारे वाजपेयी, *आधुनिक साहित्य: सृजन और समीक्षा*, लिपि प्रकाशन।
2. डॉ. रामविलाश शर्मा, *भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की परंपरा* (गूगल पुस्तक)।
3. स्मृति जोशी, *विलक्षण प्रतिभा के धनी भारतेंदु*, (वेब दुनिया)।
4. नंदकिशोर शुक्ल, *भारतेंदु हरिश्चंद्र और 'निजभाषा'* लोक-आलोक।

इकाई 2 मैथिलीशरण गुप्त एवं जयशंकर प्रसाद

2.0 परिचय

खड़ी बोली के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर मैथिलीशरण गुप्त जी का जन्म 3 अगस्त 1886 को झांसी में हुआ। श्री पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी से प्रेरणा प्राप्त करके इन्होंने खड़ी बोली को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया और अपनी रचनाओं के द्वारा खड़ी बोली को काव्य-भाषा के रूप में स्थापित करने का अथक प्रयास किया। गुप्त जी की प्रारंभिक शिक्षा झांसी के राजकीय विद्यालय में हुई परंतु कवि का मन इस शिक्षा में नहीं रमा और उन्होंने घर पर ही संस्कृत, हिंदी और बांग्ला साहित्य का व्यापक अध्ययन किया। गुप्त जी को काव्य क्षेत्र का शिरोमणि कहा जाता है। इनकी प्रसिद्धि का मूल आधार भारत-भारती है। इनकी यह रचना राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का घोषणा पत्र बन गई थी। 1952 में गुप्त जी राज्यसभा के सदस्य बने तथा 1954 में इन्हें पद्मभूषण अलंकार से सम्मानित किया गया। 12 दिसंबर 1964 को गुप्त जी का देहावसान हुआ।

साकेत महाकवि मैथिलीशरण गुप्त का अनुपम महाकाव्य है। इसमें कवि ने श्री राम, सीता और लक्ष्मण के वन गमन के पश्चात उर्मिला के विरह और अकेलेपन का वर्णन किया है। सीता तो अपने पति के साथ वन प्रस्थान कर गई। यद्यपि भरत अपनी पत्नी से दूर नन्दिग्राम में थे तथापि अपनी पत्नी से बहुत दूर नहीं थे। केवल उर्मिला ही एकमात्र स्त्री थी जो नितांत अकेली थी। भरे-पूरे परिवार में पति का साथ न हो तो जीवन एकाकी हो जाता है। लक्ष्मण पूरे चौदह वर्षों के लिए वन चले गए। उनकी अनुपस्थिति में उर्मिला विरहाकुल होकर कभी अपनी सखियों से, कभी प्रकृति के विभिन्न रूपों से तो कभी पक्षियों और फूलों से व्यथा सुनाती है तो कभी प्रेरणात्मक उपदेश भी देती है। वह अपने विरह काल को अपना पतिव्रता धर्म मानकर अपने प्रिय लक्ष्मण को भी कर्तव्य पालन करने के लिए प्रेरित करती है और चौदह वर्ष के लंबे अंतराल को धैर्य के साथ व्यतीत करती है।

साकेत का नवम् सर्ग काव्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस सर्ग में उर्मिला के वियोग का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया गया है। प्रत्येक ऋतु में वियोग का उतार-चढ़ाव

दर्शाया गया है। प्रस्तुत इकाई में हम मैथिलीशरण गुप्त की स्त्री चेतना का 'साकेत' के नवम् सर्ग के द्वारा विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में स्त्री-चेतना के उदात्त स्वरों का वर्णन कर पाएंगे;
- गुप्त जी के महाकाव्य 'साकेत' के नवम् सर्ग के आधार पर गुप्त जी की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- उर्मिला के विरह की दशा का विश्लेषण कर पाएंगे;
- साकेत के नवम् सर्ग के संपूर्ण भावार्थ को जान पाएंगे।

3.2 स्त्री-चेतना एवं मैथिलीशरण गुप्त का काव्य

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिंदी की राष्ट्रीय धारा के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उन्होंने अपने समय के समाज व देश की लगभग सभी समस्याओं को अपने काव्य में प्रस्तुत करते हुए देश की जनता का मार्गदर्शन किया। गुप्त जी के समय में स्त्रियों की ऐसी स्थिति थी कि क्रांतिकारी अपने विमर्श में जिन दोस्तों को शामिल करते थे, उनकी पत्नियों से अपनी गतिविधियां छिपाते थे। सन् 1914 में गुप्त जी का काव्य 'भारत भारती' प्रकाशित हुआ। इस काव्य में उन्होंने तत्कालीन समाज का पथ-प्रदर्शन करते हुए आधुनिक भारत में महिलाओं की उन्नति का प्रयास किया। उदाहरणार्थ जब देश में शिक्षा के विकास व प्रचार की बात की जाती है तो वे कहते हैं कि– 'हमारी शिक्षा भी तब तक किसी काम नहीं आएगी जब तक महिलाएं शिक्षित नहीं होंगी। यदि पुरुष शिक्षित हो जाए और महिलाएं अनपढ़ रह गईं तो हमारा समाज ऐसे व्यक्ति की तरह होगा जिसका आधा हिस्सा लकवे से बेकार है।' यथा–

"विद्या हमारी भी तब तक काम में कुछ आएगी
अर्द्धांगिनियों को भी सुशिक्षा दी न जब तक जाएगी
सर्वांग के बदले हुई यदि व्याधि पक्षाघात की
तो भी न क्या दुर्बल तथा व्याकुल रहेगा गात ही?"

आधुनिक सामाजिक चेतना का अत्यधिक संबंध नारी-जागरण और नारी-संबंधी सुधारों से है। इन सुधारों को भले ही तात्कालिक समय के अनुसार किया गया हो परंतु इनके मूल में भारतीय चेतना ही थी। भारतेंदु युग के उपरांत बीसवीं शती और द्विवेदी युग का प्रारंभ एक साथ हुआ। मैथिलीशरण गुप्त जी भी इसी युग के सबसे बड़े कवि थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा जनता को राष्ट्रीय स्वाधीनता की चेतना के साथ सामाजिक स्वाधीनता और उन्नयन की प्रेरणा प्रदान की। गुप्त जी के समय में जनता पूर्ण रूप से रूढ़िवाद से जकड़ी हुई थी, व देश की परंपरा को भूलती जा रही थी। यही कारण था कि गुप्त जी ने अपनी कलम के द्वारा जनता को जाग्रत करने का प्रयास किया। गुप्त जी ने अपने काव्य के द्वारा नारी के महत्व को स्थापित करने, उसे समाज में उचित स्थान दिलाने, उसके विभिन्न रूपों को जानने तथा

उसे अपनी गहरी संवेदना प्रदान करने का प्रयास किया। गुप्त जी का युग नारी के उत्थान का युग था। राजनीतिज्ञ, बुद्धिजीवी, विचारक और सर्जक यह मानते थे कि जब तक महिलाओं को सामंतवादी रूढ़ियों से बाहर नहीं निकाला जाएगा तब तक उसे समाज में आत्मगौरव और आत्मनिर्भरता से खड़े होने का अवसर भी प्राप्त नहीं होगा। गुप्त जी ने समय की मांग को समझा। यही कारण है कि उन्हें अपने समय का प्रतिनिधि कवि कहा जाता है। उन्होंने अपने समय में चल रहे नारी-आंदोलनों, नारी-उत्थान के प्रयत्नों के लिए किए जाने वाले कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी रचनाओं में नारी चरित्र, किसी-न-किसी रूप में नारी की महत्ता, समाज व परिवार में उसकी स्थिति व पक्ष को उजागर करते हैं। यदि गुप्त जी के संपूर्ण काव्य को उठाकर देखा जाए तो हमें लगता है कि भावात्मकता के दो केंद्र हैं–(i) राष्ट्र और (ii) स्त्री। मानव-समाज में वे नारी को सबसे ऊपर रखते हैं, पुरुष से भी ऊपर। इस बात को उन्होंने बहुत कुशलता से कहा है–

"एक नहीं दो-दो मात्राएं
नर से भारी नारी।"

उन्होंने देखा कि समाज में महिलाएं युगों (द्वापर) से उत्पीड़न का शिकार रही हैं, उसकी दशा को देखकर व अनुभव करके करुणा की आंखें भी छलछला जाती हैं। स्त्री तरह-तरह के अत्याचारों व उपेक्षाओं की शिकार हुई व आज भी हो रही है। संपूर्ण समाज इससे प्रभावित हुआ। गुप्त जी के अनुसार देश जिस असफलता और दुर्दशा का शिकार हो रहा है, उसका कारण भी वह नारी की अपेक्षा को ही मानते हैं। 'भारत भारती' में वे कहते हैं–

"ऐसी उपेक्षा नारियों की जब स्वयं हम कर रहे
अपना किया अपराध उनके शीष पर हम धर रहे
भागें न फिर हमसे भला क्यों दूर सारी सिद्धियां
पाती स्त्रियां आदर जहां रहती वहीं सब ऋद्धियां।"

यह वह समय था जब कवि गुरु रवींद्रनाथ ठाकुर 'काव्येतर उपेक्षिता' और महावीर प्रसाद द्विवेदी 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' जैसे लेख लिख रहे थे तो स्पष्ट होता है कि उस समय का संपूर्ण साहित्यिक समाज स्त्री के प्रति किए गए अन्याय का अनुभव कर रहा था। गुप्त जी ने अपने काव्य में न केवल लक्ष्मण-पत्नी उर्मिला की उपेक्षा के दाग को समाज व कवियों के हृदय से पोंछा साथ ही इतिहास में निरंतर उपेक्षित नारियों की तलाश की जो अपने महान त्याग और मानव-कल्याण का केंद्र होने के बावजूद इतिहास और कविता दोनों में लुप्त रही। 'उर्मिला' के साथ ही उन्होंने 'साकेत' में कैकेयी के व्यक्तित्व को उभारा। इसके पश्चात उन्होंने गौतम की पत्नी यशोधरा के त्याग, करुणा और उदात्तता की प्रतिमूर्ति के रूप में 'यशोधरा' नाम से एक चंपू काव्य लिखा। उन्होंने चैतन्य महाप्रभु की पत्नी के परिपूर्ण व्यक्तित्व को 'विष्णुप्रिया' काव्य में प्रस्तुत किया। 'यशोधरा' में गुप्त जी का एक कथन संपूर्ण स्त्री जीवन को समाविष्ट करता है–

"अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में पानी।।"

'विष्णुप्रिया' में वह कहते हैं–"रो-रोकर मरना ही नारी लिखा लाई है"

गुप्त जी नारी को सर्वोच्च स्थान पर बिठाने के पक्षधर हैं। भरत जब चित्रकूट में राम से अयोध्या चलकर शासन संभालने का निवेदन करते हैं और राम उनके हर निवेदन को अस्वीकार कर देते हैं तब भरत सीता से निवेदन करते हैं–

"जब तक पितुराज्ञा आर्य यहां पर पालें
तब तक आर्या ही चलें स्वराज्य संभालें।"

गुप्त जी नारी को सर्वोच्च स्थान पर स्थापित करने के लिए सदैव प्रयासरत रहे। उनके प्रयासों को 1965 में पूरा होता देखा गया। 'स्वराज्य' की बागडोर एक महिला ने संभाली। स्वाधीनता संघर्ष के लिए जो सामाजिक और वैचारिक संघर्ष किए गए उनका फल ही हमें स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के भारत में मिला। 1948 में एक विधेयक पास हुआ जिसमें महिलाओं को प्रशासनिक पद की पात्रता प्रदान की गई।

'साकेत' में उर्मिला का युद्ध-प्रसंग उर्मिला को एक वीर, साहसी, सेवाभावी, राष्ट्रभक्त और विवेकी नारी के रूप में प्रस्तुत करता है। इस तरह साकेत एक उपेक्षित नारी का करुणा-क्रंदन न रहकर समकालीन नारी-चेतना का आख्यान बन जाता है।

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने अपने काव्य में नारी के सम्मान, उसके अधिकार व हर क्षेत्र में उसकी प्राथमिकता को उचित सम्मान दिया है व समाज में उसे सर्वोच्च दर्जा प्राप्त कराने का अपने काव्य में हर संभव प्रयास किया है।

3.3 साकेत का नवम् सर्ग और गुप्त जी की काव्यगत विशेषताएं

'साकेत' महाकाव्य द्वादश सर्गों में बांटा गया है। नवम्, एकादश तथा द्वादश सर्ग बाकी सर्गों से बड़े हैं। प्रत्येक सर्ग का जब अंत लिखा गया है तब उसमें आने वाले सर्ग के कथानक का संकेत दिया गया है। जिस प्रकार पहले सर्ग के अंत में कवि ने लिखा है 'विदा विशेष हुए, दंपती फिर अनिमेष', जिसका अर्थ है कि सुख की रात्रि बीतने पर उन दोनों को अलग होना है। 'साकेत' का नवम् सर्ग कुछ अलग सा है यदि इस सर्ग को निकाल भी दिया जाए तो कथा के अर्थ, प्रबंध में कोई बाधा नहीं आएगी।

काव्य की शुरुआत गणपति वंदना से होती है व काव्य में स्वजनों की प्रशंसा व दुष्टजनों की निंदा भी की गयी है।

भाषा और शब्द विधान

'साकेत' खड़ी बोली में लिखा गया है। इस काव्य तक आते आते गुप्त जी की भाषा संवर चुकी थी। भावव्यजंना की दृष्टि से भी भाषा पूर्ण व सूक्ष्म हो गयी थी। भावों का प्रयोग गुप्त जी ने किसी कुशल शिल्पी की तरह किया है। चित्रकूट की सभा में भरत प्रसंग अत्यंत मार्मिक व करुण है–

"ले आर्य, क्या रहा भरत अभीप्सित अब भी।
मिल गया अकंटक राज्य उसे जब तक भी ?
पाया तुमने तरु तले, अरण्य बसेरा ?
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा।

तनु तड़प-तड़प कर तप्त तात ने त्यागा।
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा ?
हा! इसी अयश के हेतु जनम था मेरा ?
निज जननी के हाथ हनन था मेरा ?
अब कौन अभीप्सित और आर्य, वह किसका?
संसार नष्ट है भ्रष्ट हुआ घर जिसका।
मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुंह फेरा।
हे आर्य बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा।"

भावपक्षीय विशिष्टताएं

भावपक्षीय सुदृढ़ता का परिचय देने वाले साकेत के प्रासंगिक सर्ग में अनेक ऐसी अभिव्यंजनाएं हैं जो पाठकों का सहज साधारणीकरण करती हैं। प्रिय-वियोग में पीड़ा की पर्याय बन चुकी उर्मिला की स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

"विफल जीवन व्यर्थ बहा, बहा
सरस दो पद भी न हुए हहा।"

स्वामी के सानिध्य के कारण सीता के लिए वन भी नंदनवन साबित हुआ लेकिन स्वामी के अभाव में उर्मिला के लिए राजमहल भी वन गया कवि के शब्दों में-

"स्वामी सहित सीता ने
नंदन माना सघन-गहन कानन भी,
वन उर्मिला बधू ने
किया उन्हीं के हितार्थ निस उपवन भी"

गुप्त जी सूक्ष्म भावों द्वारा भी अपने कथ्य को स्वस्थ अभिव्यक्ति देने में सफल हैं। चौदह वर्ष का समय अत्यंत लंबा होता है; यह जानते हुए भी उर्मिला हर पल लक्ष्मण का इंतजार करती है। इस धुन में वह स्वयं को भी भूल जाती है-

"आठ पहर चौसठ घड़ी स्वामी का ही ध्यान
छूट गया पीछे स्वयं उससे आत्मज्ञान!!"

काव्य में भाव को उभारने के लिए इस सर्ग में कवि ने विरोधाभासी अभिव्यंजना भी की है। प्रकाश का प्रतिरोध करती हुई उर्मिला कहती है-

"दीपक-संग शलभ भी
जला न सखि, जीत सत्व से तम को
क्या देखना-दिखाना
क्या करना है प्रकाश का हमको?"

लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक प्रयोग

नवम् सर्ग में अनेक लाक्षणिक प्रयोग हुए हैं-

"जीवन के पहले प्रभात में आंख खुली जब मेरी।
हरी भूमि के पात-पात में मैंने हृदयगति फेरी।।

यहां जीवन के पहले प्रभात से तात्पर्य है 'बचपन' व आंख खुली से मतलब है 'होश संभालना', हरि भूमि के पात पात का अर्थ है 'सृष्टि की वैभव'।

"अरी सुरभि जा, लौट जा, अपने अंग सहेज।
तू है फूलों में पली, यह कांटों की सेज।।"

कांटो की सेज से तात्पर्य विरह-संताप से है। इन प्रयोगों से साकेत में सरसता, सुंदरता, व सजीवता आ गई है।

चित्रोपमता

साकेत में अनेक प्रसंग हैं जो पाठकगण के मन पर छाप छोड़ देते हैं। नवम् सर्ग के अंत में एक मार्मिक प्रसंग है जिसमें वियोगिनी अपने प्रिय के वियोग में चिता में जल जाती है व उस चिता की राख पर जब प्रेमी के आंसू गिरते हैं तो वहां एक पुष्प खिलता है जिसमें भी प्रेमी को अपनी प्रेमिका दिखायी देती है।

"जब जल चुकी विरहिणी बाला,
बुझने लगी चिता की ज्वाला,
तब पहुंचा विरही मतवाला,
सती हीन ज्यों सूली।
लाना-लाना सखि तूली।
झुलसा तरु मरमर करता था,
झड़ निर्झर झर-झर करता था,
हत विरही हरहर करता था,
उड़ती थी गोधूली।
लाना-लाना सखि तूली।
ज्यों ही अश्रु चिता पर आया।
उग अंकुर पत्तों से छाया।
फूल वही वदनाकृति लाया।
लिपटी लतिका फूली।।
लाना-लाना सखि तूली।

लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग

साकेत की सबसे बड़ी विशेषता लोकोक्ति व मुहावरे हैं। इसकी भाषा में मार्मिकता, भाव सजीवता है। कुछ उदाहरण–

1. जंगल में भी मंगल है।
2. क्यों कांटो में घसीटोगी मुझे।
3. संकट में अब मुंह फेरू
4. लगे इस मेरे मुंह में आग।
5. आर्य, छाती फट रही है हाय।

6. फिर मरूं न क्यूं, मुंड फोड़ के।

7. भक्षक से रक्षक बलवान

8. ले, मेरे कंटक टले अभी।

स्वर मैत्री

'साकेत' में जगह-जगह पर स्वरों की एकता पर ध्यान दिया गया है –

"काली कोयल बोली-
होली, होली, होली!
हंसकर लाल-लाल होठों पर हरियाली हिल डोली।
फूटा यौवन, फाड़ प्रकृति की पीली-पीली चोली।
होली होली होली।"
"सखि नील नभस्सर में उतरा,
यह हंस अहा! तरता-तरता।
अब तारक मौक्तिक शेष नहीं,
निकला उनको चरता-चरता।
अपने हिम बिन्दु बचे तब भी,
चलता उनको धरता-धरता।
गड़ जाएं न कण्टक भूतल के,
कर डाल रहा डरता-डरता।।"

व्यंजन मैत्री

साकेत में अनेक स्थानों पर व्यंजन मैत्री के उदाहरण मिल जाते हैं–

"सखी निरख नदी की धारा।
ढलमल-ढलमल, चंचल-चंचल, झलमल-झलमल तारा।
निर्मल जल अन्तः स्थल भर के उछल-उछल पर छल-छल करके।
थल-थल करके, कल-कल करके बिखरता है पारा।।"

कहीं-कहीं कठोर वर्ण भी प्रयोग हुए हैं–

"देख भाव प्रवणता, वर वर्णता,
बाध्य हुई सुनने को उत्कीर्णता।"

संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग

'साकेत' में संस्कृत के दीर्घ-समास शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। निम्न शब्दों का प्रयोग संस्कृत में भी किया जाता है-

मिथ्या लोक, आभरण-वरण, पितुराज्ञा आदि संस्कृत भाषा के कुछ शब्द खड़ी बोली हिंदी में भी अप्रचलित हैं जैसे- विरूपाक्ष, जिष्णु, निषादी आदि। काव्य में प्रयुक्त देशज शब्द इस प्रकार हैं- मचिया, धुरक, चिहुंक, लल्ली, निगोड़ी, अली आदि। कुछ नवीन शब्दों का इस्तेमाल भी किया गया है। जैसे- प्रतिपात, उत्कर्णता, प्रमाणी, अपाप आदि।

विदेशी शब्द

साकेत में कहीं-कहीं उर्दू भाषा के शब्द भी इस्तेमाल हुए हैं जैसे कि–

"भूमिमय विवरण समेत, जुदे-खुदे।
ऐतिहासिक कृत जिसमें हैं खुदे।।"

दीर्घ समासांत पद

1. प्रजा वर्ग की धर्म-धान्य-धन व सिद्धियां।
2. तनु लता सफलता स्वादु आज ही आया।
3. कविता केश कल विभास की।

शिथिल तुकबंदी

साकेत में तुकबंदी शिथिल प्रकार की है। उदाहरण हेतु–

"अवसर न खो निठल्ली, बढ़जा विपट निकट बल्ली।
अब छोड़ना न लल्ली, कदम्ब अवलंब तू मल्ली।।"
अहा! समाई नहीं अयोध्या फूली-फूली।
तब तो उसमें भीड़ असाई अली-अली।।

लक्षण-लक्षणा का

"जीवन के पहले प्रभात में आंख खुली जब मेरी।"

व्यंजना

मम्मटाचार्य जी ने ध्वनि प्रधान काव्य को ही श्रेष्ठ कहा है। अभिधामूलाव्यंजना का एक उदाहरण इस प्रकार है–

"भ्रमरी इस मोहन मानस के सुन,
मादक है रस भाव सभी।
मधु पीकर और मदान्ध न हो,
उड़ जा बस है अब क्षेम तभी।
पड़ जाए न पंकज बंधन में,
निषि यद्यपि है कुछ दूर नहीं।
दिन देख नहीं सकते सविशेष,
किसी जन का सुख भोग कभी।

भ्रमरी व मधु शब्द से तात्पर्य भ्रमण करने वाली स्त्री व मदिरा है, परंतु संयोग वश यह शब्द क्रमशः भौंरी व करंद के बोधक हो गए हैं। इसका अर्थ है कि भ्रमण करने वाली नारी को मदिरा पी कर मस्त नहीं होना चाहिए, नहीं तो पर पुरुष के बंधन में उसे जाना ही पड़ेगा।

वृत्तियां

वृत्तियों से काव्य में रस, लालित्य आ जाता है–

"किसलय कर स्वागत हेतु हिला करते हैं।
मृदु मनोभाव सम सुमन खिला करते हैं।।
डाली में फल नित्य मिला करते हैं।
तृण-तृण पर मुक्ता भार झिला करते हैं।।
निधि खोले दिखला नहीं प्रकृति निज माया।
मेरी कुटिया में राज भवन मन भाया।।"

कोमल वृत्ति के अंतर्गत पंचम वर्ण युक्त रचना होती है।

"निरख सखी ये खंजन आये।
फेरें उन मेरे मन रंजन नयन इधर मन भाये।।"

पौरुषा वृत्ति का उदाहरण-

"प्रथम वेग से बचे बचे शत्रु जो सजग खड़े थे।
करके अब हुंकार प्रेम से टूट पड़े थे।।
दल बादल भिड़ गये, धरा धंस चली धमक से।
भड़क उठा क्षय कड़क तड़क से चमक दमक से।।"

रीतियां और गुण

रीतियां तीन प्रकार की होती हैं वैदर्भी, पांचाली व गौड़ी। साकेत में रीतियों का प्रयोग किया गया है।

गुण भी तीन प्रकार के होते हैं- 1. ओज 2. माधुर्य व 3. प्रसाद।

अलंकार योजना

अलंकार हर काव्य में भाव को उभारने के काम आते हैं। साकेत में अलंकारों का प्रयोग अर्थ के अनुसार किया गया है। उदाहरण हेतु-

"मेरे चपल यौवन-बाल!
अचल अंचल में पड़ा सो, मचल कर मत साल!
बीतते फिर रात, होगा सुप्रभात विशाल।
खेलना या खेल मन के पहन के मणि-लाल।
पक रहे हैं भाग्य-फल तेरे सुरम्य रसाल।
डर न अवसर आ रहा है, जा रहा है काल।
मन पुजारी और इस तन दु:खिनी का थाल।
भेंट प्रिय के हेतु उसमें एक तू ही लाल।।"

साकेत में प्रयुक्त शब्दालंकार के कुछ उदाहरण -

छेकानुप्रास- इसमें व्यंजनों की एक बार स्वरूपत: और फिर क्रम में आवृत्ति होती है।

यथा- लपट से झट रूखे जले, जले।
नदी नद, घट सूख चले।।

यहां लपट में प के बाद एवं झट में झ के बाद ट स्वरूप की आवृत्ति। नदी नद में न के बाद आवृत्ति क्रम से।

वृत्यानुप्रास- इसमें वर्णों की अनेक बार स्वरूपतः व फिर क्रमतः आवृत्ति होती है।

यथा- *ऐसे अगणित भाव उठे लघु-सगर नगर में।*
बगर उठो बड़ अगर तगर में डगर-डगर में।।

सगर नगर में गर की 2 बार आवृत्ति-स्वरूपतः और अगली पंक्ति में ग, र की चार बार आवृत्ति-क्रमतः।

यमक- एक शब्द अधिक बार प्रयुक्त होकर, पृथक-पृथक अर्थ की सृष्टि करे तो यमक अलंकार होता है यहां चित्र शब्द के अर्थ आकृति, छवि और यादें हैं।

यथा- *चित्र भी या चित्र और विचित्र भी।*
रह गये चित्र रूप से सौमित्र भी।।

श्लेष- एक शब्द के एकाधिक अर्थ होने पर श्लेष अलंकार होता है।

यथा- *उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से।*
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से।।

मुद्रा- यहां रुदन्ती का अर्थ 'रोने वाली' है। दूसरे अर्थ में रुदन्ती एक वनस्पति होती है जिसके लेप से ताम्रपत्र सोने सदृश हो जाता है।

मुद्रा अलंकार में पद्य रचना के लिए प्रयुक्त छंद का उल्लेख कर संकेत किया जाता है। प्रस्तुत उदारहण में आर्या छंद का प्रयोग हुआ है। कविता में समरसता, करुण रस से उत्पन्न होती है, जिसे विभूति कहते हैं।

यथा- *करुणे क्यों रोती है? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई।*
मेरी विभूति है जो, उसको भव-भूति क्यों कहे कोई।।

काकुवक्रोक्ति- इसमें ध्वनि-विकार अथवा आवाज में परिवर्तन द्वारा वक्रोक्ति (प्रत्यक्ष अर्थ के अतिरिक्त भिन्नार्थ) की सृष्टि होती है। अर्थात वर्ण = अक्षर, रंग। कर्ण = कान, महाभारत का पात्र। सुवर्ण = सुंदर शब्दांकन, सोना, वर्ण।

यथा- *वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के।*
क्यों न बनते कवि जनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के।।

वीप्सा- इसमें मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए शब्दों की आवृत्ति होती है।

यथा- *हाय! आर्य रहिये, रहिये,*
मत कहिये, यह मत कहिये।

अर्थालकार– ये अलंकार अर्थ पर आधारित होते हैं।

साकेत में उपमा, रूपक, व्यतिरेक आदि अलंकारों का भी प्रयोग हुआ है।

उपमा– जब किसी प्रसिद्ध वस्तु या व्यक्ति की तुलना दूसरे समान गुण वाले व्यक्ति या वस्तु से की जाती है तब वहां उपमा अलंकार होता है।

साकेत में उपमा अलंकार के अनेक उदाहरण दिए गए हैं।

गुण सादृश्य–

1. कमल जाति का भी कमल-सी कोमला,
   धन्य है उस कल्प-शिल्पी की कला,
2. देखती है जब जिधर यह सुंदरी,
   दमकती है दामिनी-सी द्युति भरी।

रंग सादृश्य–

1. लपेट ये घन जैसे बाल।
2. गोट जड़ाऊ घूंघट की,
   बिजली जलदोपम पट की।

मूर्त के लिए मूर्त उपमान–

कंधे ढककर कच छहर रहे थे उनके,
रक्षक-तक्षक-से लहर रहे थे इनके।

मूर्त के लिए अमूर्त का उपमान–

1. मत्यु सी पड़ी कैकेयी जान।
2. चले पीछे लक्ष्मण ऐसे,
   भाद्र के पीछे आश्विन जैसे।।

अमूर्त के लिए मूर्त उपमान–

मोद का आज न ओर न छोर।
आम्रवन-सा फूला सब ओर।

अमूर्त के लिए अमूर्त उपमान–

दित से सब हास-विलास है
पित-से सब किंतु उदास हैं।

पूर्वोपमा– जिसमें उपमा के चारों अंग (उपमेय/उपमान/समान धर्म/सादृश्यवाचक शब्द) मौजूद हों।

यथा- चूमता था भूमितल को अर्ध विधु-सा भाल
बिछ रहे प्रेम के दृग-जाल बनकर बाल।
छत्र-सा सिर पर उठा था प्राणप्रति का हाथ,
हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ।।

स्मरण– अनुभव के अनुसार समदृश्य वस्तु के देखे जाने पर जिसका स्मरण होता है वहां स्मरणालंकार होता है।

यथा- अलि, इसी वापी में हंस बने बार-बार हम विहरे।
सुधकर उन छींटों को मेरे अंग आज भी सिहरे।।

यहां बगीचे को देखकर वहां लक्ष्मण संग व्यतीत किए गए क्षणों का स्मरण उर्मिला को होता है।

तिरंग रूपक–

भाग्य भास्कर उदयगिरि पर चढ़ गया।

सांगरूपक–

सखि नील नभस्सर में उतरा
यह हंस अहा! तरता-तरता
अब तारक मौक्तिक शेष नहीं,
निकला जिनको चरता-चरता।।
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी,
चला उनको धरता-धरता।
गड़ जायें न कंटक भूतल के,
कर डाल रहा डरता-डरता।।

भ्रान्तिमान– जब प्रस्तुत दृष्टिगत होता है और अप्रस्तुत की संवेदना हो जाती है वहां भ्रांतिमान अलंकार होता है।

नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का समझकर भ्रान्ति से।
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अन्य शुक यह कौन है!

यहां होठों की कांति से बिजली की चमक की भ्रांति हो रही है।

संदेह– जब उपमेय में उपमान का संदेह आरोपित होता है तब संदेह अलंकार होता है।

खुल गया प्राची दिशा का द्वार है,
गगन-सागर में उठा क्या ज्वार है।
पूर्व के ही भाग्य का यह भाग है,
या नियति का राग पूठी सुहाग है?

यहां 'ज्वार' और 'सुहाग' में संदेह है।

अतिशयोक्ति– जहां किसी व्यक्ति या वस्तु की तुलना लोकसीमा से अत्यंत बढ़ाचढ़ाकर की जाती है वहां अतिश्योक्ति अलंकार होता है।

ठहर अरी इस हृदय में-
लगी विरह की आग।
तालवन्त से और भी,
धधक उठेगी आग।

यहां 'तालवन्त' से विरहाग्नि का धधक उठना अतिशयोक्ति है।

रूपकातिशयोक्ति–

नैश-गगन के गाज में पड़े फोले हाय।

वस्तूत्प्रेक्षा–

यथा– *"जान पड़ता नेत्र देख बड़े-बड़े*
हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े।
पद्मरागों से अधर मानों बने,
मोतियों से दांत निर्मित हैं घने।"

विरोधाभास– जहां पर विरोध न होने पर भी विरोध का आभास हो वहां विरोधाभास अलंकार होता है।

यथा– *हो गया निर्गुण सगुण साकार है,*
ले लिया, अखिलेश ने अवतार है।

यहां 'निर्गुण सगुण साकार' में विरोधाभास है।

विभावना– जहां पर कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति का वर्णन किया जाए वहां विभावना की सृष्टि होती है।

यथा– *सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ,*
किंतु समझो रात का जाना हुआ।
क्योंकि उसके अंग पीले पड़ चुके,
रूप रत्नाभरण ढीले पढ़ चुके।।

यहां सूर्योदय बिना ही रात्रि के प्रस्थान में विभावना है।

विषम– जहां दो बेमेल पदार्थों का संबंध बताया जाए वहां विषम अलंकार होता है।

यथा– *"स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहां*
किंतु सुर सरिता कहां, सरजू कहां।"

यहां स्वर्ग का संबंध सरिता से बताए जाने में विषम अलंकार है।

दृष्टांत– जब उपमेय-उपमान में बिम्ब-प्रतिबिम्ब का भाव उत्पन्न होता है तब काव्य में दृष्टांत अलंकार प्रस्तुत होता है।

यथा– *एक राज्य न हो, बहुत से हों जहां*
राष्ट्र का बल निखर जाता है वहां।
बहुत तारे थे अंधेरा कब मिटा।।

अप्रस्तुत प्रशंसा– समासोक्ति का उल्टा यानी अप्रस्त (प्रतीकों) के माध्यम से प्रस्तुत का वर्णन।

यथा– *री छावेगा फिर भी वसंत,*
जैसे मेरे प्रिय प्रेमवन्त।
दुःखों का भी है एक अंत,
हो रहिये दुर्दिन देख मूक।

व्यतिरेक– जहां उपमान की अपेक्षा उपमेय का व्यतिरेक यानी उत्कर्ष वर्णन किया जाए वहां व्यतिरेक अलंकार होता है।

यथा- *कहती मैं चातकि, फिर बोल।*
ये खारी आंसू की बूंदें, दे सकती यदि मोल
कर सकते हैं क्या मोती भी उन बोलों की तोल।

समासोक्ति- जब प्रस्तुत के माध्यम से अप्रस्तुत का वर्णन किया जाता है तब समासोक्ति अलंकार होता है।

यथा- *मान छोड़ दे मान अरी!*
कली, अली आया, हंसकर ले, यह बेला कहां धरी।
सिर न हिला झोंकों में पड़कर, रख सहृदयता सदा हरी।
छिपा न उसको भी प्रिय तम से यदि है भीतर धूल भरी।।

मानवीकरण- जहां जड़ वस्तुओं या प्रकृति पर मानवीय चेष्टाओं को आरोपित किया जाए वहां मानवीकरण अलंकार होता है।

यथा- *अरुण सन्ध्या को आगे ठेल।*
देखने को कुछ नूतन खेल।।
सजे विधु की बेटी से भाल।
यामिनी आ पहुंची तत्काल।।

साकेत में नए, पुराने सभी तरह के अलंकारों का उपयोग किया गया है।

छंद योजना

मात्रिक व वार्णिक दोनों ही तरह के छंदों का प्रयोग यहां हुआ है। 'साकेत' के हर सर्ग में प्राय: एक ही छंद है, अंत में किंतु बदल दिया गया है।

प्रथम सर्ग के छंद-

मंगलाचरण में 'मनहरण' छंद है। इसमें 8, 8, 7, 7 पर यति देकर 31 वर्ण हैं। प्रथम सर्ग में पीयूष वर्ष छंद देखा जाता है। इसमे 10 और 8 मात्राओं पर यति देकर 19 मात्राएं होती हैं। सरलतापूर्वक इस छंद के माध्यम से हास्य का पुट लाया जा सकता है।

रे सुभाषी बोल, = 10 मात्राएं
चुप क्यों हो रहा? = 9 मात्राएं

द्वितीय सर्ग-

सजीवता के साथ 'शृंगार छंद' में तीव्र भाव का वर्णन हो जाता है। मंथरा व कैकेयी का संवाद इस छंद के कारण सुंदर हो गया है। इस छंद में प्रारंभ में तीन व दो मात्राओं पर यति और फिर ग्यारह मात्राएं होती हैं।

तृतीय सर्ग-

'सुमेरु' छंद का प्रयोग इस सर्ग में किया गया है। वियोग, दुख, आह का वर्णन इस छंद के माध्यम से कुशलतापूर्वक किया जा सकता है।

चतुर्थ सर्ग–

यहां हाकलि छंद का प्रयोग हुआ है। इस छंद के माध्यम से स्त्री सुंदरता, सौम्यता का वर्णन भली प्रकार से किया जा सकता है। सर्ग के अंत में पहले छार छंद व उसके बाद 'सावटी' जो कि मराठी भाषा का छंद है को अपनाया गया है। 'तोमर छंद' का प्रयोग अंत में किया गया है।

पंचम सर्ग–

यहां त्रिलोकी छंद का प्रयोग हुआ है। मंद गति के लिए यह उपयुक्त है।

षष्ठ सर्ग–

इस सर्ग में पदाकुलक छंद का प्रयोग हुआ है। यह छंद अपनी गतिशीलता के कारण जाना जाता है। इस सर्ग में दशरथ मृत्यु का वर्णन किया गया है।

सप्तम सर्ग–

यहां नवीन छंद का प्रयोग किया है। यह चंद्र छंद का विस्तृत रूप कहा जा सकता है।

अष्टम सर्ग–

इस सर्ग में राधिका छंद का प्रयोग हुआ है। यह गायन में मधुर होता है–

''मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।''

नवम् सर्ग–

इस सर्ग में कई प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है। जैसे कि वार्णिक, मात्रिक, नवीन आदि। वार्णिक में मंदाक्रांता, शिखरिणी मालिनी, भुजंग प्रभात आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। मात्रिक में नीतिक, शक्ति आदि का प्रयोग हुआ है।

प्रगति मुक्तक की पंक्ति टेक के रूप में है जैसे -

1. सिद्ध-शिलाओं के आधार,
   ओ गौरव गिरि उच्च उदार।
2. वेदने, तू भी भली बनी,
   पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी।
3. दोनों और प्रेम पलता है,
   सखी, पतंग जलता है। दीपक भी जलता है।

दशम सर्ग–

इस सर्ग में 'वियोगिनी' छंद का प्रयोग किया गया है। यह वियोग, शोक की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता है।

एकादश सर्ग–

वीर छंद का प्रयोग इस सर्ग में किया गया है।

द्वादश सर्ग–

इस सर्ग के सभी छंद लयबद्ध व गति पूर्ण हैं। इस सर्ग में रोला छंद का प्रयोग हुआ है। यह छंद वीरभाव के लिए उपयुक्त है। साकेत में अनेक प्रकार के छंदों का सफल प्रयोग हुआ है।

3.4 उर्मिला का विरह वर्णन

साकेत की परम महत्वपूर्ण घटना उर्मिला का वियोग है। उर्मिला ही एक मात्र पात्र है जो कि सबसे निरीह है। उर्मिला के दुख से पाठक गण भी अछूते नहीं रह पाते हैं वे भी आंसुओं से भीग जाते हैं। इस कारण इस काव्य को विरह काव्य कहा जाए तो अनुचित न होगा। सीता ने भी उर्मिला के लिए कहा–

''आज भाग्य है जो मेरा,
यह भी हुआ न हाय! तेरा।''

उर्मिला के विरह वर्णन से संदर्भित विशिष्टताओं को निम्न बिंदुओं के तहत समझा जा सकता है–

व्याकुलता में भी संयतता

व्याकुल होने पर भी उर्मिला संयत रहती है व अपने हृदय को शांत करते हुए कहती है–

''हे मन,
तू प्रिय पथ पर विघ्न न बन।''

लक्ष्मण वन गमन के पश्चात उर्मिला की दशा विदीर्ण हो जाती है। उसका शरीर दुर्बल हो जाता है। गुप्त जी ने उर्मिला के लिए कुछ इस प्रकार कहा है–

''मुख कांति पड़ी पीली-पीली,
आंखें अशांत नीली-नीली
क्या हाय! यही वह कृश काया,
पर उसकी शेष सूक्ष्म छाया।''

कर्तव्य भावना का उत्सर्ग

चित्रकूट में उर्मिला व लक्ष्मण का मिलन होता है हालांकि थोड़ी देर के लिए ही सही किंतु लक्ष्मण उर्मिला की दशा देख विचलित हो जाते हैं।

उर्मिला समझ सकती है कि लक्ष्मण को एक वन में रहने वाले हिरन के समान भय है कि कहीं वह फिर बंधन में न बंध जाएं। इस पर उर्मिला कहती हैं–

''मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी,
मैं बांध न लूंगी तुम्हें तजो भय भारी।''

कुल-मर्यादा का ध्यान

यदि उर्मिला चाहती तो वह भी घर छोड़ सकती थी, किंतु उसने कुल मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखा। व संयम से विरह के चौदह वर्ष काटने का संकल्प लिया। सुबह होती है, शाम होती है, वह खाती भी है व सोती भी तथा रोती भी–

"खान-पान तो ठीक है, परन्तु तदनन्तर हाय।
आवश्यक विश्राम जो, उनका कौन उपाय।।"

काम पर नियंत्रण का आदर्श-

मिलन के सुखद पल याद कर भी वह द्रवित हो जाती है व कामदेव से कहती है-

"मुझे फूल मत मारो!
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो।"

साकेत की प्रधानता उर्मिला का चरित्र है जो कि अन्य पात्रों के बीच, फलता फूलता गया है। वैसे मूलकथा 'रामचरितमानस' व 'वाल्मीकि रामायण' से प्रेरित है। सभी पात्र मुख्य पात्र को उभारने में सहायक रहे हैं। इस दृष्टि से 'साकेत' खरा उतरा है।

धरती के राम-

गुप्त जी ने इस काव्य में जिस राम का चित्रण किया है वह अवतार होते हुए भी लौकिक है। गुप्त जी ने दो प्रकार के पात्र बताएं हैं- आदर्श तथा साधारण। गुप्त जी के राम धरती को ही स्वर्ग बनाने आए हैं।

"संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।"

उनमें मानव भावनाएं भी दिखायी देती हैं-

"आता है जी ताप यही,
पीछे पहले व्यवधान यही
झट लोटूं चरणों में आकर।"

पात्रों पर संस्कार व परिस्थिति दोनों का प्रभाव होता है। संस्कार प्रधान पात्र जैसे भरत, सीता, माण्डवी, शत्रुघ्न आदि समान रहते हैं। जैसे कौशल्या हर अवसर पर उदार दिखाई देती हैं-

"सीता ने अपना भाग लिया,
पर इसने वह भी त्याग दिया।"

करुणामय विरह व्यंजना-

उर्मिला का विरह, रुदन अत्यंत करुणामय हो जाता है-

"विरह रुदन में गया, मिलन में भी रोऊं,
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, पद-रज धोऊं।"

कैकेयी की भावदशा-

गुप्त जी का हर पात्र स्वतंत्र भी है। नारी पात्र सभी स्त्री गुणों से पूर्ण हैं। कैकेयी का मातृत्व स्वाभाविक है-

"चुप अरे चुप, कैकेयी का स्नेह,
जान पाया तू न निस्संदेह।

पर वही वह वत्स, तुझसे व्याप्त,
छोड़ता है राज पद भी प्राप्त।"

गुप्त जी पात्रों के मन में उतर कर उनका भाव पाठकों तक पहुंचाने में सफल हुए है। जैसे कैकेयी कहती है-

सब करें मेरा महापवाद,
किंतु न तो न कर हाय! प्रमाद!
× × ×
किंतु मेरा भी यह वात्सल्य।

उपकारी नारी पात्र-

गुप्त जी की शैली विलक्षण है। चरित्र चित्रण के लिए कवि कथनोपकथन, गीत आदि का प्रयोग किया है। दो पात्रों को वे सामने लाते हैं जैसे प्रथम सर्ग में लक्ष्मण उर्मिला, दूसरे सर्ग में कैकेयी मंथरा व तीसरे सर्ग में राम लक्ष्मण आदि। पात्र सभी सजीव व पुष्ट हैं। नारी का आदर्श रूप गुप्त जी ने चित्रित किया है। नारी पुरुष का पूरक है। उसका हृदय विशाल है। मानव जीवन नारी का उपकार कभी नहीं भूल सकता है।

"मेरी यह महामति है। पति ही पत्नी की गति है।"

जहां कवि ने, सीता, उर्मिला, कौशल्या, सुमित्रा का उत्तम रूप दिखाया है वहीं कैकेयी के चरित्र को भी उठा दिया है। उन्होंने सब दोष मंथरा को न दे, विधाता को भी दिया है। यही उसे सहानुभूति का पात्र बना देता है। एक स्थान पर गुप्त जी ने कहा है–

"सीता ने अपना भाग लिया,
पर इसने वह भी त्याग दिया।"

उर्मिला का वियोग 'साकेत' में भावपूर्ण है। वियोग की कसौटी पर उर्मिला खरी उतरती है व स्वर्ण की भांति चमक उठती हैं। स्वयं राम भी उर्मिला की प्रशंसा करते हैं–

"तूने तो यह धर्मचारिणी के भी ऊपर,
धर्मस्थापना किया, भाग्यशालिनी इस भू पर।"

अबला का सबला में परिवर्तन

प्रो. धर्मेंद्र ने एक स्थान पर लिखा है, "गुप्त जी के कवि संसार की प्रायः सभी नारियों का अवतरण अबला के रूप में होता है, किंतु पुरुषों के तिरस्कार की चोट खाकर अबला सबला में परिवर्तित हो जाती है" वियोग में अश्रु बहाने वाली कभी क्रोधित भी हो जाती है।

"मानिनी कैकेयी का कोप, बुद्धि का करने लगी विशेष।
एड़ियों तक आ छूटे केश, हुआ देवी दुर्गा का वेष।।"

नारी अपने भावों को छुपाना भी जानती है। वन गमन के समय उर्मिला का मन आंदोलित है किंतु फिर भी वह शांति से काम लेती है। उदाहरण प्रस्तुत है–

"कहा उर्मिला ने हे मन,
तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।

आज स्वार्थ है त्याग भरा,
है अनुराग विराग भरा।
तू स्वार्थ से पूर्ण न हो
शोक भाव से चूर्ण न हो।''

आशावाद का अंकुर-सिंचन

जब उर्मिला की सखियां उसे आश्वस्त करती है कि लक्ष्मण शीघ्र ही आ जाएंगे तब उर्मिला कहती है-

''हाय, सब कुछ गया! आशा न गई।''

× × ×

''लौटेंगे क्या प्रभु और बहन।
उनके पीछे का दुख दहन।।''

वह प्रिय की याद को जीवन का आधार बना लेती है-

''वेदने तू भी भली बनी।
पाई मैंने तुझी में अपनी चाह घनी।।''

विश्व कल्याण की उदात्त भावना-

अपने अथाह-विरह के बाद भी उर्मिला विश्व कल्याण सोचती है। वह कहती है-

''भ्रातृ-स्नेह-सुधा बरसे,
भू पर स्वर्ग भाव सरसे।''

दुख है तो बस यही-

''यदि स्वामी के संग रह न सकी,
तो क्यों इतना भी कह न सकी।''

''यह भ्रातृ स्नेह न ऊना हो,
लोगों के लिए नमूना हो।''

उर्मिला का चरित्र सीता से भी उच्च हो गया है।

साकेत राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की वह अमर कृति है जिसे गुप्त जी अपने साहित्यिक जीवन की अंतिम रचना के रूप में पूरी करना चाहते थे। उनकी इस इच्छा के अनुरूप साकेत वास्तविक अर्थों में उनकी अमर रचना बन गई। यद्यपि साकेत में राम, लक्ष्मण और सीता के वन गमन का मार्मिक चित्रण है। इस कृति में समस्त मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति पाठक को होती है।

इस कृति में उर्मिला के विरह का जो चित्रण गुप्त जी ने किया है वह अत्यधिक मार्मिक और गहरी मानवीय संवेदनाओं और भावनाओं से ओत-प्रोत है। सीता तो राम के साथ वन गई, किंतु उर्मिला लक्ष्मण के साथ वन न जा सकी। इस कारण उनके मन में विरह की जो पीड़ा निरंतर प्रवाहित होती है उसका जैसा करुण चित्रण राष्ट्रकवि ने किया है, वैसा चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है।

है, कि आंखें बरबस नम हो जाएं और राष्ट्रकवि की साहित्यिक क्षमता को नमन कर दे।

कमल, तुम्हारा दिन है और कुमुद, यामिनी तुम्हारी है,
कोई हताश क्यों हो, आती सबकी समान वारी है।
धन्य कमल, दिन जिसके, धन्य कुमुद, रात साथ में जिसके,
दिन और रात दोनों, होते हैं हाय! हाथ में किसके?

3.5 पाठांश

साकेत-नवम् सर्ग

दो वंशों में प्रकट करने पावनी लोक-लीला
सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियां पूतशीला,
त्यागी भी हैं शरण जिनके, जो अनासक्त गेही,
राजा-योगी जय जनक, वे पुण्यदेही, विदेही।

प्रसंग– सीता व उर्मिला के त्याग के कारण राजा जनक भी धन्य समझे गए हैं।

व्याख्या– सीता व उर्मिला ने दोनों कुलों को पावन कर दिया। दोनों पुत्रों से भी अधिक पूजनीय है। वे ऐसे राजा की पुत्रियां हैं जो राजा होते हुए भी साधु हैं व गृहस्थ होते हुए भी त्यागी हैं। ऐसे राजा को हम नमन करते हैं। राजा जनक देहधारी होते हुए भी विदेह कहलाते थे।

विशेष

1. जनक की जय जयकार की गयी है।
2. उर्मिला व सीता का महत्व बताया गया है।
3. विरोधाभास का पुट है।

विफल जीवन व्यर्थ बहा, बहा,
सरस दो पद भी न हुए हहा!
कठिन है कविते, तव-भूमि ही,
पर यहां श्रम भी सुख-सा रहा।

प्रसंग– उर्मिला के कष्ट का वर्णन किया गया है। उसका समस्त जीवन प्रिय वियोग में ही व्यतीत हो गया।

व्याख्या– उर्मिला का जीवन प्रिय-वियोग के कारण विफल होकर व्यर्थ हो गया। समूचा जीवन दुख पूर्ण रहा, सरसता आ ही नहीं पायी। कितनी कठिन है उसकी यह तमपूर्ण स्थिति, वह कष्ट में भी सुख का अनुभव करती रही है। अर्थात उसने स्वयं को दुख में ही इस तरह से समाहित कर लिया कि उसी में वह सुख का अनुभव करने लगी।

विशेष

1. जीवन और सरस में श्लेष अलंकार। कविता और उर्मिला दोनों ही सरस न हो सके।

करुणे, क्यों रोती है? "उत्तर" में और अधिक तू रोई-
'मेरी विभूति, है जो
उसको 'विभूति क्यों कहे कोई।

प्रसंग– विभूति-भस्म, उत्तर-उत्तररामचरितम् नाटक का वह हिस्सा जिसमें सीता निर्वासन की कथा है।

व्याख्या– उर्मिला के चरित्र पर करुण होने पर कवि कहते हैं कि पहले रचे गए उत्तर रामचरितम् में जीवन में करुण रस प्रधान है। वहां करुणा भी मानों रोती और रुलाती है। कवि ने भवभूति की विभूति का वर्णन करते हुए कहा है कि करुणा के कारण ही इसका महत्व है। यह करुणा तो मेरा अंग है न कि भवभूति, यह शिव विभूति अर्थात मेरा ही अभिन्न अंग है।

विशेष

1. करुणामय वर्णन
2. कविता में सरसता करुण रस के कारण उत्पन्न होती है उसे सांसारिक भाषा में विभूति कहते हैं।
3. आर्या छंद है।
4. श्लेष अलंकार है।

अवध को अपनाकर त्याग से,
वन तपोवन-सा प्रभु ने किया।
भरत ने उनके अनुराग से,
भवन में वन का व्रत ले लिया।

प्रसंग– राम जी व भरत के त्याग का वर्णन है।

व्याख्या– त्याग की मूर्ति से श्रीराम ने अवध को त्याग दिया व वन को तपोवन बना दिया व उन्हीं के समान भरत ने राज्य होते हुए भी राजमहल को वन सदृश मान लिया और वनवासी की भांति जीवन व्यतीत किया।

विशेष

1. अत्यंत साधारण सरल पदावली व तुकबंदी है।
2. त्याग और अपनाना में विरोधाभास अलंकार है।

स्वामी-सहित सीता ने
नन्दन माना सघन गहन कानन भी,

वन ऊर्मिला बंधू ने
किया उन्हीं के हितार्थ निज उपवन भी
अपने अतुलित कुल में
प्रकट हुआ था कलंक जो काला,
वह उस कुल बाला ने
अश्रु-सलिल से समस्त धो डाला।

प्रसंग– राम एवं लक्ष्मण के वन जाने के पश्चात सीता व उर्मिला की दशा का वर्णन किय गया है।

व्याख्या– श्रीराम के साथ वन गमन को सीता जी ने सुख का प्रतीक माना व उस वन को भी नन्दवन समझ लिया। लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला जो कि राज महल में निवास कर रही थी, उसने महल के उपवन को वन समान मान लिया क्योंकि उसका प्रियतम वन में था। लक्ष्मण के कार्य में बाधा न आ जाए इसलिए उन्हें राम के साथ भेजकर अपना जीवन जो कि सुख के साथ बीत सकता था, उसको दुखी बना लिया।

राम के वन जाने से रघुकुल पर जो कलंक लग गया था, मानो उस कालिमा को उस कुल बाला उर्मिला ने अपने आंसुओं की धारा से धो डाला।

विशेष

1. उर्मिला के उज्ज्वल चरित्र का वर्णन किया गया है।
2. एक प्रकार से उर्मिला के चरित्र को सीता के चरित्र की अपेक्षा अधिक महत्व दिय गया है, क्योंकि सीता को तो वन में भी पति का साहचर्य मिल रहा था। उर्मिला तो चौदह वर्षों तक पति-विहीन रही।
3. आर्या छंद है।

भूल अवधि-सुध प्रिय से
कहती जगती हुई कभी-'आओ'!
किंतु कभी सोती तो
उठती वह चौंक बोलकर-'जाओ'।

प्रसंग– लक्ष्मण के वियोग में उर्मिला अत्यंत दुखी है व प्रलाप करने लगती है-

व्याख्या– उर्मिला अत्यधिक वियोग में है वह यह भी भूल गयी है कि वनवास की अवधि चौदह वर्ष की है, वह व्याकुल होकर कहती है कि प्रिय आ जाओ व कभी सोते हुए अचानक उठकर कहती है कि जाओ। वह उन्माद में इस प्रकार कहने लगती है। उसे समय का भी ज्ञान नहीं रहता है कि चौदह वर्ष का लंबा अंतराल अभी समाप्त नहीं होगा फिर भी वह लक्ष्मण को सोते जागते याद करती है।

विशेष

1. उर्मिला की उन्माद अवस्था का वर्णन किया गया है।

2. भाव सूक्ष्म है किंतु उनकी अभिव्यक्ति स्पष्ट है।
3. सरल भाषा है।

मानस-मंदिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप!
आखों में प्रिय-मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम-वियोग!
आठ पहर चौंसठ घड़ी स्वामी का ही ध्यान,
छूट गया पीछे स्वयं उससे आत्मज्ञान!

प्रसंग– विरह की अग्नि में उर्मिला लीन है व लक्ष्मण के ध्यान में उसने सब कुछ त्याग दिया है। कवि उसके हृदय की मर्मस्पर्शी दशा को व्यक्त करते हैं–

व्याख्या– जिस प्रकार से मंदिर में मूर्ति स्थापित करके आरती व पूजा अर्चना की जाती है उसी प्रकार सती उर्मिला ने अपने मन को मंदिर मान कर लक्ष्मण की प्रतिमा को उसमें स्थापित कर लिया है व स्वयं को आरती के रूप में अर्पित करती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि लक्ष्मण के विरह से उर्मिला आरती के समान जल रही है, उसने अपने नेत्रों में भी प्रिय की मूरत को स्थापित किया है जिससे उन्हें कुछ दिखाई ही नहीं देता। उसने सभी सांसारिक सुख भुला दिए हैं। किसी भी वस्तु में उसे सुख का अनुभव नहीं होता है। यह विषम वियोग तो योग से भी अधिक कठिन व कष्टकारी है। उर्मिला को आठों पहर, चौंसठ घड़ी, अपने स्वामी का ही ध्यान रहता है। इस कारणवश उसे अपनी सुध भी नहीं रहती।

विशेष

1. वियोग को योग से अधिक कष्टकर बताया गया है।
2. उर्मिला के उन्माद का चित्रण है।
3. आरती का उर्मिला में आरोपण होने से रूपक अलंकार है।

उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह विक्षेप से,
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के?

प्रसंग– कवि उर्मिला का चरित्र चित्रण करने से महाकवि हो सकता है क्योंकि उर्मिला का चरित्र इतना महान था। इससे पहले किसी कवि ने उर्मिला के चरित्र को इतना महत्व नहीं दिया था।

व्याख्या– जिस प्रकार से रुदंती जोकि एक वनस्पति होती है उसके लेप से ताम्रपत्र भी सोना बन जाता है उसी प्रकार प्रिय की वियोग रूपी अग्नि प्रिय में विरहिणी का रुदन रूपी रस भ तपकर सोना बन गया है, और उस सोने से कवि के कानों के आभूषण बन जाते हैं। उर्मिल के विरह वर्णन से कवि स्वयं महाकवि हो सकता है क्योंकि कर्ण के विजनों के सुंदर वर्ण में लिखित ताम्रपत्र के समान उपाधि-युक्त हो जाएंगे। यहां मम्मटाचार्य द्वारा बताए गए काव

के उद्देश्य 'अर्थकृते' (धनार्जन) पर कवि की दृष्टि है। कवि उर्मिला के आंसुओं के वर्ण के द्वारा, ताम्रपत्र से आगे बढ़कर 'स्वर्ण पत्र' पर लिखित सम्मान की अभिलाषा प्रकट क रहा है।

विशेष

1. श्लेष अलंकार का प्रयोग किया गया है।
2. यहां पर कवि ने ताम्र से सोना बनाने की रीति को श्लेष द्वारा चित्रित किया है।
3. कवि का रासायनिक ज्ञान दर्शित है।

पहले आंखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे
छींटे वहीं उड़े थे, बड़े-बड़े अश्रु वे कब थे?
उसे बहुत थी विरह के एक दण्ड की चोट,
धन्य सखी देती रही निज यत्नों की ओट।

प्रसंग– प्रिय लक्ष्मण की मूर्ति उर्मिला के हृदय में विराजित है उसी का चमत्कारिक विश्लेषण किया गया है।

व्याख्या– जो लक्ष्मण पहले उर्मिला के नेत्रों में थे वही अब हृदय में वास करने लगे हैं। हृदय में वास करने से उस सरोवर के छींटे आंसू के रूप में बह निकले। विरह की एक घड़ी भी युग के समान लगती थी। उसकी सखियां ही उसे इस वेदना से बचाया करती थीं। वे बड़े जतन से उर्मिला को विरह-अग्नि में जलने से बचाती रहती थीं। तथापि आंसुओं का छींटों के रूप में उड़ना एक दुरूह व हास्यास्पद कल्पना है।

विशेष

1. विरह की अनोखी कल्पना है।
2. कवि के द्वारा उर्मिला के चरित्र की विशेषता का अनूठा वर्णन।

मिलाप था दूर अभी धनी का,
विलाप ही था बस बनी का।
अपूर्व आलाप वही हमारा,
यथा विपंची-दिर दार दारा!

प्रसंग–गुप्तजी ने इन पंक्तियों में नायिका उर्मिला के चौदह वर्षों की विलाप अवधि का वर्णन किया है–

व्याख्या– उर्मिला व लक्ष्मण का मिलाप अभी दूर था अतः विलाप ही एक मात्र कार्यकलाप था, इसलिए जिस प्रकार सितार वादन से दिर दार दारा की ध्वनि निकलती है व समय व्यतीत होता रहता है, वैसे ही विरह आलाप में समय निकल जाएगा। अर्थात दीर्घ समय तक विरह का ही सहारा रहेगा।

विशेष

1. नाद सौंदर्य समाहित है जैसे आलाप, मिलाप, विलाप।
2. सखियों की सहज भावना व्यक्त की गयी है।
3. दृष्टांत अलंकार।

सींचें ही बस मालिनें, कलश लें, कोई न ले कर्त्तरी,
शाखी फूल फलें यथेच्छ बढ़के, फैलें लताएं हरी।
क्रीड़ा कानन-शैल यंत्र-जल से संसिक्त होता रहे,
मेरे जीवन का, चलो सखि, वही सोता भिगोता बहे?

प्रसंग– विरह में डूबी उर्मिला अपने उद्यान में मालिनों को आदेश दे रही है।

व्याख्या– उर्मिला आदेश देती है कि मालिनें मात्र कलश से वृक्षों को सींचें वे कैंची हाथ में न लें ताकि वृक्ष, बेल फले फूलें, अपनी इच्छा से आगे बढ़ें। हमारा फव्वारा जल देता रहे जिससे बाग सिंचित होता रहे। जीवन का जल रूपी स्रोत सदा बना रहे।

विशेष

1. उर्मिला की उदारता का वर्णन किया गया है।
2. रूपक है 'जीवन का सोता'।
3. विरह के कारण उर्मिला पेड़ पौधों को कोई हानि नहीं होने देना चाहती है।

क्या क्या होगा साथ, मैं क्या बताऊं!
है ही क्या, हां! आज जो मैं जताऊं?
तो भी तूली, पुस्तिका और वीणा,
चौथी मैं हूं, पांचवीं तू प्रवीण!

प्रसंग– सखि व उर्मिला का वार्तालाप वर्णित है।

व्याख्या– उर्मिला अपनी सखी से कहती है कि वह उसे क्या बताए? इस कठिन घड़ियों में मेरा कोई भी साथ देने वाला नहीं है। यदि कोई है भी तो वह मात्र तूलिका, पुस्तिका, वाद्ययंत्र-वीणा ही है व एक मैं और तू मेरी चतुर सखी ही है। उर्मिला नितांत अकेलापन भोग रही है।

विशेष

1. उर्मिला के कला ज्ञान को दर्शाया गया है।
2. उर्मिला अपने एकाकीपन में अपनी तूलिका एवं पुस्तक को अपना साथी मानती है। वीणा और उसकी सखियां भी अकेलेपन की साथी हैं।

हुआ एक दुःस्वप्न-सा सखि, कैसा उत्पात,
जगने पर भी वह बना वैसा ही दिन रात!
खान-पान तो ठीक है पर तदनन्तर हाय!
आवश्यक विश्राम जो उसका कौन उपाय?

प्रसंग– विरह अग्नि में नायिका को रात व दिन एक-सा लगता है, क्योंकि रात्रि के कि का दुख दिन में भी छाया रहता है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है यह कैसा उत्पात है चाहे रात हो या दिन प्रिय वियोग में स एक-सा लगता है। खान-पान के समय तो ठीक है किंतु फिर वही हाय की स्थिति रहती है विश्राम के समय प्रिय की याद आती है और वह क्षण युग बन जाता है। इसका कोई उपा भी नहीं है। यह विरहकाल अत्यंत लंबा प्रतीत होता है।

विशेष

1. वियोग-वर्णन का सुंदर चित्रण किया गया है।
2. भाषा सरल, सहज व सुंदर है।

अरी, व्यर्थ है व्यंजनों की बड़ाई,
हटा थाल, तू क्यों इसे आप लायी?
वही पाक है, जो बिना भूख भावे,
बता किंतु तू ही, उसे कौन खावे?
बनाती रसोई, सभी को खिलाती।
इसी काम में आज मैं तृप्ति पाती।
रहा किंतु मेरे लिए एक रोना,
खिलाऊं किसे मैं अलोना-सलोना?

प्रसंग– उर्मिला द्वारा स्वयं उसके विरह की स्थिति का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है कि वियोग में खाना भी अच्छा नहीं लगता व खाने की प्रशंस करना तो बिल्कुल नहीं। पकवान तो बिना भूख के भी सब खा लेते हैं किंतु मैं नहीं क सकती। एक समय था जब अपने हाथों से भोजन बना कर सब को खिलाती थी अब तो रोन ही शेष है। जब प्रिय ही नहीं तो किसके लिए मीठा या नमकीन भोजन बनाऊं। जब मेरे प्रि ही साथ नहीं है तो मुझे भी कुछ अच्छा नहीं लगता है।

विशेष

1. स्मृति, स्मरण का उदाहरण प्रस्तुत किया है।
2. भाषा, सुंदर, सहज व सरल है।
3. अलोना-सलोना में अनुप्रास अलंकार है।

वन की भेंट मिली है,
एक नई वह जड़ी मुझे जीजी से,
खाने पर सखि, जिसके
गुड़-गोबर-सा लगे स्वयं ही जी से।
रस हैं बहुत, परंतु सखी, विष है विषम प्रयोग।
बिना प्रयोक्ता के हुए, यहां भोग भी रोग।

प्रसंग– सीता जी ने उर्मिला को एक जड़ी बूटी दी थी इसमें उसी का उल्लेख है। जिसके खाने से भूख-प्यास नहीं लगती।

व्याख्या– जब वे सीता से मिलने चित्रकूट पहुंचे थे तब सीता ने उर्मिला को एक जड़ी बूटी दी थी जिसके सेवन से भूख प्यास मिट जाती है। वह सखी से कहती है कि इसी कारण उसे समस्त भोजन स्वादहीन लगता है। भोजन में सभी रस हैं किंतु विरह में विष समान लगते हैं। जैसे विष दुख देता है प्रयोग न करने के कारण भोग करना भी रोग के बराबर है। जब मन प्रसन्न न हो तो सब रंगहीन, स्वादहीन प्रतीत होता है। विरह की प्रबलता हो तो स्वाभाविक रूप से मीठा भी फीका हो जाता है। किंतु किसी जड़ी-बूटी को खाकर अपने विरह की प्रबलता को सिद्ध करने का यह प्रयास उर्मिला व सीता दोनों को निम्न धरातल पर ले जाता है।

विशेष

1. भाषा अत्यंत सरल है।
2. कवि की अनावश्यक कल्पना है।
3. वियोग में सब कुछ नीरस लगे ऐसा प्रयास करना पड़ रहा है।
4. 'गुड़-गोबर' जैसी लोकोक्ति का प्रयोग हास्यरस में अधिक उपयुक्त होता है, 'करुण-रस' में यह वीभत्स रस की सृष्टि कर रहा है।

लाई है क्षीर क्यों तू? हठ मत कर यों,
मैं पियूंगी न आली,
मैं हूं क्या हाय! कोई शिशु सफल हठी,
रंक भी राज्यशाली!
माना तूने मुझे है तरुण, विरहिणी,
वीर के साथ ब्याहा,
आंखों का तीर ही क्या कम फिर मुझको?
चाहिए और क्या हा!

प्रसंग– सखी द्वारा दूध लाए जाने पर उर्मिला विरोध करना चाहती है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है सखी तू मेरे लिए दूध क्यों लाई है, मैं इसे पीना नहीं चाहती व तू हठ न कर। तू भले ही मुझे एक जिद्दी बालक समझे जो अपनी जिद मनवाने में सफल हो जाता है किंतु मैं एक निर्धन रानी भी हूं और मेरा हठ उचित है। मैं वियोगिनी हूं व वीर की पत्नी भी हूं। आंखों में जो पानी है क्या वही कम है जो मैं दूध पीऊं। मेरे लिए रोना ही पर्याप्त है।

विशेष

1. विरह में नायिका को खान पान भी नहीं भाता है।
2. उर्मिला का शिशु-समान हठ करना भी उसके दुखी मन का परिचायक है।

चाहे फटा-फटा हो, मेरा अम्बर अशून्य है आली,
आकर किसी अनिल ने भला यहां धूलि तो डाली!

धूलि-धूसर है तो क्या, यों तो मृन्मयमात्र गात्र भी,
वस्त्र से वल्कलों से तो हैं सुरम्य, सुपात्र भी!
फटते हैं, मैले होते हैं, सभी वस्त्र व्यवहार से,
किंतु पहनते हैं क्या उनको हम सब इसी विचार से,
पिऊं ला खाऊं ला सखि पहनूं ला सब करुं
जिऊं मैं जैसे हो, यह अवधि का अर्णव तरूं।
कहे जो, मानूं सो, किस विध बता, धीरज धरूं;
अरी कैसे भी तो पकड़ प्रिय के वे पद मरूं।

प्रसंग– उर्मिला के द्वारा अपने प्रिय से पुनः मिलन व प्रिय के चरणों में प्राण त्यागने की इच्छा का वर्णन किया है।

व्याख्या– मेरा हृदय रूपी आकाश भले ही वियोग के कारण खाली दिख रहा हो किंतु ऐसा है नहीं उसमें मेरे प्रिय मूर्ति रूप में हैं। विरह रूपी वायु ने उसे धूमिल कर दिया है, मेरा मन भले ही धूल से भर गया हो किंतु इसकी भी चिंता नहीं है। यह शरीर भी मिट्टी ही तो है। मेरे वस्त्र वृक्ष की छाल से तो अच्छे हैं व मैं भी सुंदर हूं। शरीर रूपी वस्त्र आत्मा को ढकता है व आत्मा भी वस्त्र बदलती है इस कारण शरीर से मोह नहीं करना चाहिए। जैसे वस्त्र मैले होते हैं वैसे ही शरीर खत्म हो जाता है। किंतु कोई भी मानव यह सोच कर जीवन नहीं बिताता है।

हे सखि, मैं भी खा-पी लेती हूं क्योंकि जीवित रहकर ही इस वियोग समुद्र को पार करना होगा। मैं तेरा हठ अर्थात बात मानूंगी बस धैर्य रखने का तरीका बता दे। मैं अपने प्रिय के चरणों में मरने की कामना रखती हूं।

विशेष

1. विरह का मर्मस्पर्शी वर्णन है।
2. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया गया है।

रोती हैं और दूनी निरखकर मुझे
दीन-सी तीन सासें,
होते हैं देवरश्री नत, हत बहनें
छोड़ती हैं उसासें।
आली, तू ही बता दे, इस विजन बिना
मैं कहां आज जाऊं?
दीना, हीना, अधीना ठहरकर जहां
शान्ति दूं और पाऊं?

प्रसंग– उर्मिला की व्यथा का वर्णन है। वह अपनी बहिनों मांडवी और श्रुति कीर्ति को भी दुखी नहीं करना चाहती है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है कि मुझे व्यथित देखकर मेरी तीनों सासें और बहनें भी अत्यंत दुखी हैं व देवर शत्रुघ्न भी। मेरी व्यथा से ये सभी संबंधी जन प्राणी व्यथित हैं। मैं इस निर्जनता

को कहां ले जाऊं व दीन, अधीन होकर इन सबको शांति दूं व खुद भी शांत हो पाऊं। मुझे तो अपने इन परिजनों को भी संबल देना है।

विशेष

1. उपमा अलंकार का प्रयोग दीन-सी तीन सासें।
2. भाषा तत्सम प्रधान है।

आई थी सखि, मैं यहां लेकर हर्षोल्लास,
जाऊंगी कैसे भला देकर यह निःश्वास?
कहां जाएंगे प्राण ये लेकर इतना ताप?
प्रिय के फिरने पर इन्हें फिरना होगा आप।

प्रसंग– वियोग में प्राण भी नहीं त्यागने हैं। क्योंकि प्रिय को देखने की लालसा बाकी है।

व्याख्या– उर्मिला अपनी सखी से कहती है कि मेरा जीवन हर्ष से 'खुशी से भरा था'। दुनिया में प्रसन्नता से आयी थी। क्या दुख के अधीन होकर प्राण त्याग दूं? नहीं मेरे प्राण भी नहीं निकलेंगे। इतना दुःख देखकर अगर निकल भी गए तो प्रिय के आने पर प्राण भी वापस आ जाएंगे।

विशेष

1. भाषा सरल समझने योग्य है।
2. विरह वर्णन है।
3. उर्मिला अपने जीवन का विश्लेषण भी कर रही है।

साल रही सखि, मां की
झांकी वह चित्रकूट की मुझको,
बोलीं जब वे मुझसे-
'मिला न वन ही न भवन ही तुझको!'

प्रसंग– स्मृति-स्मरण करती हुई उर्मिला चित्रकूट की बातें याद करती है।

व्याख्या– उर्मिला सखी को कह रही है कि बार-बार आंखों में वह दृश्य आ रहा है व दुख दे रहा है जब चित्रकूट में राजा जनक के साथ आई उर्मिला की मां ने कहा था कि तुझे तेरे प्रिय के साथ वन गमन भी नहीं मिला व भवन में रहना भी नहीं। अर्थात सीता को तो राम का साथ मिला ही। मांडवी व श्रुतिकीर्ति को भी क्रमशः भरत व शत्रुघ्न का साथ मिला। लक्ष्मण के चले जाने पर उर्मिला ही अकेली रह गई थी।

विशेष

1. माता उर्मिला की मां ने उसके हृदय की पीड़ा को समझा था।
2. शैली माधुर्य व प्रसाद है।

जात तथा जामाता समान ही मान तात थे आये,
पर निज राज्य न मंझली माता को वे प्रदान कर पाये!
मिली मैं स्वामी से, पर कह सकी क्या संभल के?
बहे आंसू होके सखि सब उपालम्भ गल के।
उन्हें हो आई जो निरख मुझको नीरव दया,
उसी की पीड़ा का अनुभव मुझे हा! रह गया।

प्रसंग–राजा जनक के मन के भाव उर्मिला ने व्यक्त किए हैं। जब वे भी चित्रकूट में श्रीराम, सीता व लक्ष्मण से मिलने गये थे।

व्याख्या– उर्मिला कहती है कि राजा जनक उनको पुत्र व जमाई दोनों समझ कर आये थे व कैकेयी को राज्य न दे सके। उर्मिला अपने स्वामी लक्ष्मण से मिलने पर भी कोई बात नहीं कह पाई। उर्मिला में जो उलाहना मन में भरी भी थी वह आंसू बन कर ही बह गई। उर्मिला के प्रति मौन में लक्ष्मण का मन भी दया से भर गया। सिर्फ वही दुख दिख रहा था बाकी सब मैं भूल गई थी। मैं उन्हें अपने दुख: में दुखी देखकर अत्यंत द्रवित हो गई। मेरा मन पीड़ा से भर गया।

विशेष

1. विरह में चिंता दिखती है।
2. स्मरण अलंकार।
3. माता कैकेयी की राज्य की अभिलाषा पर व्यंग्य।

न कुछ कह सकी अपनी,
न उन्हीं की पूछ मैं सकी भय से,
अपने को भूले वे,
मेरी ही कह उठे सखेद हृदय से।

प्रसंग– उर्मिला सखी से कहती है कि सभी परिवारजनों के साथ होने के कारण चित्रकूट में पूर्ण रूप से वह लक्ष्मण से अपनी बात भी नहीं कह पाई।

व्याख्या– उर्मिला अपनी सखी के प्रति अपने भाव व्यक्त करती हैं कि चित्रकूट में लक्ष्मण जी से भेंट होने पर भी गुरुजनों के डर के कारण अपने हृदय की बात नहीं कह पाई न ही कुछ पूछ सकी। लक्ष्मण भी स्वयं को भूल कर उसकी ही दशा पर दुख व्यक्त कर रहे थे उन्हें मेरी पीड़ा का अनुमान था किंतु वे भी अपने कर्तव्य से बंधे थे।

विशेष

1. स्मरण अलंकार का सुंदर वर्णन किया गया है।
2. चुप रह कर भी बहुत कुछ कह दिया लक्ष्मण ने।
3. प्रिय मिलन का अत्यंत मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है।

मिथिला मेरा मूल है और अयोध्या फूल,
चित्रकूट को क्या कहूं, रह जाती हूं भूल!
सिद्ध शिलाओं के आधार,
औ गौरव-गिरि, उच्च उदार!
तुझ पर ऊंचे ऊंचे झाड़,
तने पत्र मय छत्र पहाड़!
क्या अपूर्व है तेरी आड़,
करते हैं बहु जीव विहार,
ओ गौरव-गिरि, उच्च-उदार!

प्रसंग– उर्मिला यहां चित्रकूट पर्वत के वन प्रदेश का स्मरण करती हैं।

व्याख्या– उर्मिला कह रही हैं कि उनके जीवन रूपी वृक्ष की जड़ मिथिला है व साकेत उस वृक्ष का पुष्प है। चित्रकूट से क्या संबंध बताऊं वह तो ऐसी शिला है जहां रहने वाला सिद्धि प्राप्त कर लेता है। वह अत्यंत उदार है, सभी को आश्रय देता है। यहां वृक्ष भी हैं जिनके तने व पत्ते पहाड़ के छत्र समान हैं। जीव-जंतु भी यहां रहते हैं। चित्रकूट गौरव पूर्ण व उदार है। विरहिणी उर्मिला को लगता है कि चित्रकूट ही अत्यंत उदार व भाग्यशाली स्थल है जहां श्रीराम, सीता और लक्ष्मण रह रहे हैं।

विशेष

1. सरल, सुबोध भाषा का प्रयोग किया गया है।
2. चित्रकूट से संबंध दर्शाया गया है।
3. चित्रकूट की प्राकृतिक सुंदरता का वर्णन है।
4. यहां 'पवर्गीय' तुकबंदी के आग्रह से मूल, फूल व भूल शब्दों का प्रयोग किया गया है। तथापि 'भूल' शब्द की संगति आगे चित्रकूट के वर्णन से मिलान का औचित्य नहीं प्रकट कर पा रही।

प्रोषित पतिकाएं हों
जितनी भी सखि, उन्हें निमंत्रण दे आ,
समदु:खिनी मिलें तो
दु:ख बंटे, जा, प्रणयपुरसर ले आ।

प्रसंग– उर्मिला अपने विरह में इतनी दुखी है कि वह नहीं चाहती कि विवाहित-प्रिय की संगिनियों के साथ समय व्यतीत करें, वह तो अपने जैसी विरहिणियों के साथ ही अपना दुख बांटना चाहती है।

व्याख्या– उर्मिला अपनी सखी से उन स्त्रियों को बुलाने को कहती है जो कि उसी की तरह वियोग में है क्योंकि वही उसकी मनोदशा समझ सकेंगी व आपस में दुख बांट सकेंगी। सुखी स्त्रिया यह पीड़ा न जान पाएंगी। वह सखी से कहती हैं कि उन सबको प्रेमपूर्वक ले करके आना।

विशेष समान मानसिक स्थिति का व्यक्ति ही पीड़ा व अन्य भावों को समझ सकता है।

कौन-सा दिखाऊं दृश्य बन का बता मैं आज?
हो रही है आलि, मुझे चित्र-रचना की चाह,
नाला पड़ा हो पथ में, किनारे जेठ-जीजी खड़े,
अम्बु अवगाह आर्य पुत्र ले रहे हैं थाह?
किंवा वे खड़ी हों घूम प्रभु के सहारे आह,
तलवे से कण्टक निकालते हों ये कराह?
अथवा झुकाये खड़े हों ये लता और जीजी,
फूल ले रही हों, प्रभु दे रहे हों, वाह वाह?

प्रसंग– उर्मिला चित्रकला के विषय में बात करती है।

व्याख्या– उर्मिला सखी से पूछती है कि आज मैं चित्र बनाना चाह रही हूं, कौन सा दृ बनाऊं तुम मेरी कुछ सहायता कर दो। कुछ मन में इस प्रकार की कल्पना है–

1. राम, लक्ष्मण व सीता के सामने एक नाला आ गया है और लक्ष्मण वहां भी आ बढ़ कर उसकी गहराई देख रहे हैं। यहां भी वे भाई-भाभी के लिए सेवारत हैं। उन्हें कोई कष्ट नहीं देना चाहते हैं।
2. दूसरे चित्र की कल्पना है कि सीता राम के सहारे खड़ी हैं व लक्ष्मण कराहते उनके पैर से कांटे निकाल रहे हैं। यहां भी लक्ष्मण की भाभी के प्रति आदर भा दिखाई देती है।
3. तीसरे चित्र की कल्पना कर उर्मिला कहती हैं कि इस चित्र में सीता जी को ल से फूल प्राप्त करते हुए दिखाना चाहती हैं व लक्ष्मण लता को झुका रहे हैं। श्री सीता को फूल दे रहे हैं और वे ले रही हैं। अपनी इस कल्पना पर उर्मिला स ही 'वाह-वाह' कहती हैं।

विशेष

1. कल्पना की अभिव्यक्ति है।
2. यथार्थ और कल्पना शक्ति का सुंदर समन्वय है।
3. 'वाह-वाह' का प्रयोग उर्दू की शायरी की महफिल का दृश्य प्रस्तुत कर रहा है

प्रिय ने सहज गुणों से, दीक्षा दी थी मुझे प्रणय, जो तेरी,
आज प्रतीक्षा-द्वारा लेते हैं वे यहां परीक्षा मेरी?

प्रसंग– उर्मिला इस प्रसंग में कहती हैं कि जैसे उनकी परीक्षा हो रही है।

व्याख्या– मेरे प्रिय ने जो प्रेम रूपी शिक्षा दी थी वे आज उसकी परीक्षा ले रहे हैं कि मै उसे ग्रहण किया भी है या नहीं। प्रिय ने जो सहज सरल ढंग से मुझे प्रेम करना सिखाय यह उसी की परीक्षा है। प्रिय की यह प्रतीक्षा करना एक प्रकार से मेरे प्रेम की परीक्षा

विशेष

1. अत्यंत सूक्ष्मता से प्रेम का वर्णन किया गया है।
2. 'प्रणय' से प्रश्न द्वारा उसका मानवीकरण किया गया है।

जीवन के पहले प्रभात में आंख खुली जब मेरी,
हरी भूमि के पात पात में मैंने हृद्गति हेरी।
खींच रही थी दृष्टि-सृष्टि यह स्वर्णरश्मियां लेकर,
पाल रही ब्रह्माण्ड प्रकृति थी, सदय हृदय में सेकर।
तृण-तृण को नभ सींच रहा था बूंद बूंद रस देकर,
बढ़ा रहा था सुख की नौका समय समीरण खेकर।
बजा रहे थे द्विज दल-बल से शुभ भावों की भेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आंख खुली जब मेरी।

प्रसंग– इस गीत में उर्मिला का अपने प्रिय लक्ष्मण से मिलन का वर्णन है।

व्याख्या– इस गीत में प्रिय के सानिध्य से मिलने वाले सुख का वर्णन है कि प्रिय के साथ होने पर आनंद था जीवन हरे पत्तों के समान कोमल व सुंदर था। सूरज की किरणों से युक्त यह धरती मुझे आकृष्ट कर रही थी जैसे कि सारे ब्रह्मांड का पालन कर रही हो। आकाश भी ओस की बूंदों से धरती को सींच रहा था। सुख का समय हवा की गति से बढ़ रहा था, पक्षी भी चहचहा रहे थे मानों सब सुखी हों। पूरा परिवेश जैसे संगीतमय प्रतीत होता था।

विशेष

1. प्रकृति का सुंदर चित्रण है।
2. अनुप्रास, रूपक व मानवीकरण अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

वह जीवन-मध्याह्न सखी, अब श्रान्ति-क्लान्ति जो लाया,
खेद और प्रस्वेद-पूर्ण यह तीव्र ताप है छाया?
पाया था सो खोया हमने, क्या खोकर क्या पाया?
रहे न हममें राम हमारे, मिली न हमको माया।
यह विषाद! वह हर्ष कहां अब देता था जो फेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आंख खुली जब मेरी।

प्रसंग– इन पंक्तियों में उर्मिला अपने जीवन के कठिन समय का बखान करती हैं जिस प्रकार दोपहर में तेज धूप के कारण तपन होती है उसी प्रकार उर्मिला के जीवन में तपन है।

व्याख्या– जैसे दिन के दूसरे पहर में सूर्य का ताप बढ़ता है, गर्मी बढ़ती है व शरीर थक जाता है, पसीना आता है, उसी प्रकार मेरे जीवन में भी वियोग का दूसरा पहर आ गया है। प्रिय से जो प्रेम पाया था वह गुम गया है किंतु सोचने की बात यह है कि यह सब खोकर हमने क्या पाया। न तो राम ही यहां हैं न ही उस राज्य का कोई भोग कर रहा है। जीवन में अब वियोग व दुख है, प्रसन्नता जो कि राम, सीता व प्रिय के होने पर मिलती थी वह अब नहीं है।

विशेष

1. भाषा भावपूर्ण है।
2. प्रभावशाली चित्रण है।
3. 'दुविधा में दोउ गए, माया मिली न राम'-इस लोकोक्ति का चमत्कारी प्रयोग है।

वह कोइल, जो कूक रही थी, आज हूक भरती है,
पूर्व और पश्चिम की लाली रोष-वृष्टि करती है।
लेता है निःश्वास समीकरण, सुरभि धूलि चरती है,
उबल सूखती है जलधारा, यह धरती मरती है।
पत्र-पुष्प सब बिखर रहे हैं, कुशल न मेरी-तेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आंख खुली जब मेरी।

प्रसंग– वियोग का हृदयस्पर्शी चित्रण है।

व्याख्या– वह कोयल जब कूकती थी तब मन खुशी से भर जाता था, अब वही स्वर हूक के समान लगता है। सुबह की लाली व शाम की लाली पहले आंखों को भाती थी, अब वह क्रोध की वर्षा लगती है। मन की स्थिति के अनुसार प्रकृति भी अच्छी व बुरी लगने लगती है व सुगंध भी धूल समान, जल की धारा सींचने की बजाय उबलती लगती है। धारा भी सूख गयी है। तात्पर्य यह है कि दोपहरी यानी वियोग के कारण कुछ भी अच्छा नहीं है। व्यक्ति को अपनी मनोदशा के अनुरूप अपना वातावरण सुंदर व दुखद प्रतीत होता है।

विशेष

1. प्रकृति का उद्दीपन रूप है।
2. प्रिय अभाव में सुख भी दुख दे रहा है।
3. मानवीकरण का सुंदर उदाहरण है।
4. सरल भाषा में अलंकारों का अति सुंदर रूप है।

आगे जीवन की सन्ध्या है, देखें क्या हो आली,
तू कहती है-'चन्द्रोदय ही, काली में उजियाली'?
सिर-आंखों पर क्यों न कुमुदिनी लेगी वह पदलाली?
किंतु करेंगे कोक-शोक की तारे जो रखवाली?
'फिर प्रभात होगा' क्या सचमुच? तो कृतार्थ यह चेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आंख खुली जब मेरी।

प्रसंग– उर्मिला जीवन की संध्या के विषय में सखी से चर्चा कर रही है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है कि जीवन का बीच का हिस्सा तो कष्टकारी था ही अब संध्या होने को है। अब प्रिय से मिलना होगा और मेरे दुख सुख में बदल जाएंगे। जैसे चांद को देख कर कुमुदिनी खिलती है वैसे ही मैं प्रिय चरणों को देख कर आनंदित हो जाऊंगी। चकवा जो कि रात भर अपने प्रिय से दूर रहता है व सुबह की प्रतीक्षा करता है। वैसे ही उर्मिला भी

प्रिय मिलन की प्रतीक्षा कर रही है और ऐसा होने पर वह अपने को धन्य मानेगी। वह स्वयं असमंजस में है कि क्या यह संभव हो पाएगा?

विशेष

1. उर्मिला के विरहाकुल मन की अभिव्यक्ति है।
2. कविता में गेयता है।

सखि, विहग उड़ा दे, हों सभी मुक्तिमानी,
सुन शठ शुक-वाणी 'हाय! रूठो न रानी।'
खग, जनकपुरी की ब्याह दूं सारिका मैं!
तदपि यह वहीं की त्यक्त हूं दारिका मैं?
कह विहग, कहां हैं आज आचार्य तेरे?
विकच वदन वाले वे कृती कान्त मेरे?
सचमुच 'मृगया में?' तो अहेरी नये वे,
यह हत हरिणी क्यों छोड़ यों ही गये वे?

प्रसंग– व्यथित उर्मिला अपनी सखि से सभी पशु व पक्षियों को स्वतंत्र करने को कहती है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है कि सभी पक्षियों व पशुओं को स्वतंत्र कर दो। यह सुन कर उर्मिला का पालतू तोता उर्मिला से न रूठने को कहता है। इस पर उर्मिला उसे जनकपुरी में ब्याहने को कहती है। वह पूछती है कि सुंदर शरीर वाले मेरे लक्ष्मण कहां हैं? वे नए शिकारी के समान व्यवहार कर गए हैं वे मुझ हिरणी को यहीं छोड़ गए हैं। शिकारी अपने शिकार को छोड़कर कहीं नहीं जाता है उसे साथ ले जाता है।

विशेष

1. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
2. विरह वर्णन है।
3. उर्मिला में हिरणी का रूपक अलंकार है।
4. 'शुक' को शठ (धूर्त) केवल अनुप्रास अलंकार के लोभ से कहा गया है, अन्यथा प्रसंगानुकूल 'दीन' विशेषण का प्रयोग होना चाहिए था।

निहार सखि सारिका कुछ कहे बिना शान्त सी,
दिये श्रवण है यहीं, इधर मैं हुई भ्रान्त-सी।
इसे पिशुन जान तू सुन सुभाषिणी है बनी-
'धरो!, सखि, किसे धरूं' धृति लिये गये हैं धनी।

प्रसंग– मैना को इंगित करते हुए सखी से उर्मिला कह रही है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है कि यह मैना दिखने में शांत है किंतु कान इधर ही लगाए है। मुझे इसे देखकर भ्रम की स्थिति हो रही है। मेरे प्रिय तो मेरे धैर्य को भी साथ ले गए हैं। मैं तो इस मैना पर भी विश्वास नहीं कर सकती हूं जो बड़े मीठे बोल बोल रही है।

विशेष

1. पति का अर्थ धनी है।
2. भाषा अलंकारिक है।
3. राजपूताने में धनी का अर्थ 'पति' होता है।

तुझपर मुझपर हाथ फेरते साथ यहां,
शशक, विदित है तुझे आज वे नाथ कहां?
तेरी ही प्रिय जन्मभूमि में, दूर नहीं,
जा तू भी कहना कि ऊर्मिला क्रूर वहीं!

प्रसंग– शशक को उर्मिला संबोधित कर रही है।

व्याख्या– उर्मिला, शशक से कहती है कि, लक्ष्मण जो कि तुम पर भी प्रेम से हाथ फेरा क थे, वे अब कहां चले गए हैं, वह वन में ही गए हैं जो तेरी जन्म की जगह है। तू भी व जा और कह दे कि उर्मिला क्रूर है। और वहीं रह रही है।

विशेष

1. मानव के मन का वर्णन है।
2. प्रियतम के स्पर्श के लिए 'हाथ फेरना' मुहावरे का प्रयोग प्रभाव डालने में असम है। इसमें भाषा की शिथिलता व प्रसंग की अपूर्णता झलकती है।

लेते गये क्यों न तुम्हें कपोत, वे,
गाते सदा जो गुण थे तुम्हारे?
लाते तुम्हीं हा! प्रिय-पत्र-पोत वे,
दुःखाब्धि में जो बनते सहारे।

प्रसंग– यहां कपोत को संबोधित किया गया है।

व्याख्या– कपोत से उर्मिला कहती है कि तुमको भी लक्ष्मण अपने साथ नहीं ले गए जबकि तुम तो उन्हें अति प्यारे थे। तुम ही प्रिय के पत्र भी लाया करते थे, जो हमारे दुख में ना रूपी सहारा बनते थे।

विशेष

1. मानवीकरण अलंकार है।
2. युग-विरुद्ध अशुद्ध प्रयोग। कबूतर पालने की मुगलकालीन परंपरा का कवि पर यहां प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। संस्कृत काव्य परंपरा में इसके समकक्ष शुक-सारिका पालने की परंपरा रही है। वाल्मीकि की रामायण में भी संदेशवाहक घुड़सवार बताए गए हैं, न कि कबूतर।

विहग उड़ना भी ये हो बद्ध भूल गये, अये,
यदि अब इन्हें छोड़ूं तो और निर्दयता, दये!

परिजन इन्हें भूले, ये भी उन्हें, सब हैं बहे,
बस अब हमीं साथी-संगी, सभी इनके रहे।

प्रसंग– उर्मिला समस्त पक्षियों को मुक्त करने के लिये सोचती है और कहती है-

व्याख्या– उर्मिला कहती हैं कि लंबे समय तक पक्षियों को बंद करके रखा है वे अब उड़ना भी भूल गए होंगे यदि मैं उन्हें मुक्त करती भी हू तो, वे यह भी भूल गए होंगे कि कौन इनके परिजन हैं। अब यह क्रूरता होगी। अब ये कहां जाएंगे। अब हम ही इनके साथी हैं क्योंकि इनके साथी न मालूम कहां होंगे।

विशेष

1. करुणामय वर्णन है।
2. आत्मीयता का उल्लेख है।
3. भाषा परिष्कृत व प्रांजल है।

आ, अभाव की एक आत्मजे, और अदृष्टि-जनी!
तेरी ही छाती है सचमुच उपमोचितस्तनी!
अरी वियोग-समाधि, अनोखी, तू क्या ठीक ठनी,
अपने को प्रिय को, जगती को देखूं खिंची-तनी।
मन-सा मानिक मुझे मिला है तुझमें उपल-खनी,
तुझे तभी छोड़ूं जब सजनी, पाऊं प्राण-धनी।

प्रसंग– उर्मिला यहां अपनी वेदना को संबोधित कर रही है।

व्याख्या– अभाव से उत्पन्न वेदना के होने से प्रिय का ध्यान बना रहता है। वेदना ने ही जीवन में नयी किरण दी है जैसे कोई नुकीली वस्तु चुभती है तो पीड़ा होती है वैसे ही वेदना से मैं सजग रहती हूं। मेरी देह भी अश्रुओं के कारण तपती रहती है। इसी से प्रियतम का न होना पता चलता है। अभाव से ही वेदना उत्पन्न होती है। तू मेरे मन के अनुकूल है किंतु प्रिय से मिलने के साथ तू भी समाप्त हो जाएगी।

विशेष

1. वेदना का मर्मस्पर्शी वर्णन है।
2. वेदना के कारण प्रिय सदा याद आते रहते हैं।
3. अभाव की पुत्री का देवता रूप में चित्रण, मानवीकरण अलंकार है।

लिखकर लोहित लेख, डूब गया है, दिन अहा!
व्योम-सिन्धु सखि, देख, तारक-बुद्बुद दे रहा!

प्रसंग– सूर्यास्त की लालिमा व विलाप को एक-सा मानकर उर्मिला विचार व्यक्त कर रही है।

व्याख्या– वियोग करते करते सूर्य भी अस्त हो गया है व आकाश को लाल रंग दे गया है और उसके साथ बुद बुदाते हुए तारे आकाश पर उत्पन्न हो रहे हैं अर्थात हल्के-हल्के चमक रहे है।

विशेष

1. नवीन कल्पना।

दीपक-संग शलभ भी
जला न सखि, जीत सत्व से तम को,
क्या देखना-दिखाना
क्या करना है प्रकाश का हमको?

प्रसंग– वियोगवश उर्मिला, दीपक जलाने के लिए भी मना कर देती है।

व्याख्या– वियोग में उर्मिला किसी को भी कष्ट नहीं देना चाहती, दीपक जलेगा तो पतंगे आ व वह भी जल जाएंगे। वैसे भी प्रकाश निरर्थक है इस समय, क्योंकि प्रिय तो है नहीं फिर दिख किसको है। प्रिय को अपना सुंदर रूप दिखाने के लिये प्रकाश होना आवश्यक है।

विशेष

1. भाषा सरल है।
2. विरोधाभास अलंकार है।
3. सच्चे प्रेमी ही बलिदान देते हैं जैसे उर्मिला ने लक्ष्मण के प्रेम में बलिदान कर दि

जगती वणिग्वृत्ति है रखती,
उसे चाहती जिससे चखती,
काम नहीं, परिणाम निरखती।
मुझे यही खलता है।
दोनों ओर प्रेम पलता है।

प्रसंग– प्रेम में समर्पण का महत्व बताया है।

व्याख्या– संसार में लोग अपना लाभ देखते हैं, स्वार्थ को आगे रख कर ही प्रेम करते ह ऐसे लोग कर्म में नहीं फल में विश्वास रखते हैं, लेकिन प्रेम तो दोनों तरफ से होता है।

विशेष

1. प्रेम निश्छल होता है।
2. प्रेम में स्वार्थ नहीं आना चाहिए।

अरी, सुरभि, जा, लौट जा, अपने अंग सहेज,
तू है फूलों में पली, यह कांटों की सेज।
यथार्थ था सो सपना हुआ है,
अलीक था जो अपना हुआ है।
रही यहां केवल है कहानी,
सुन वही एक नई-पुरानी।

प्रसंग– उर्मिला यहां सुगंध से लौट जाने को कहती है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है, हे सुगंध तू जा, यहां से लौट जा व पुष्पों में वास कर, यहां तो कांटों की सेज है। मिलन के पल जो भी जीवन में थे वे सब स्वप्न समान लगते हैं। अब वियोग आ गया जो कभी सोचा ही न था। हे सखी कोई बीती सुख की गाथा सुना जिससे मैं सब भूल जाऊं।

विशेष

1. सुगंध का मानवीकरण है।
2. अंतिम पंक्तियों में विरोधाभास है।

आ आ, मेरी निंदिया गूंगी!
आ, मैं सिर आंखों पर लेकर चन्द्रखिलौना दूंगी!
प्रिय के आने पर आवेगी,
अर्द्धचन्द्र ही तो पावेगी।
पर यदि आज उन्हें लावेगी,
तो तुझसे ही लूंगी।
आ जा, मेरी निंदिया गूंगी।
पलक-पांवड़ों पर पद रख तू,
तनिक सलोना रस भी चख तू
आ, दुखिया की ओर निरख तू,
मैं न्योछावर हूंगी।
आ जा, मेरी निंदिया गूंगी!

प्रसंग– अधिक रात बीत जाने पर उर्मिला नींद को बुला रही है क्योंकि वह सो भी नहीं पाती है।

व्याख्या– हे निद्रा तू आ जा, तुझे मैं पलकों पर बैठा कर चांद खिलौना दूंगी। यदि तू प्रिय के रहते आयी तो अनादर ही मिलेगा। यदि तू इस समय आती है तो मैं तेरा स्वागत करूंगी, सपने में ही मैं उनको देख लूंगी व प्रसन्न हो जाऊंगी तथा न बता सकने वाला आनंद पा जाऊंगी। मैं तेरा हृदय से स्वागत करूंगी।

विशेष

1. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग है।
2. यहां निद्रा का आह्वान सुख से रात्रि व्यतीत करने के लिए और दूसरे निद्रा आने पर स्वप्न में प्रिय से मिलने के लिए किया गया है।

स्नेह जलाता है यह बत्ती!
फिर भी वह प्रतिमा है इसमें, दीखे जिसमें राई-रत्ती।
रखती है इस अन्धकार में सखि, तू अपनी साख,
मिल जाती है रवि-चरणों में कर अपने को राख।

खिल जाती है पत्ती-पत्ती,
स्नेह जलाता है यह बत्ती।
होने दे निज शिखा न चंचल, ले अंचल की ओट,
ईंट ईंट लेकर चुनते हैं हम कोसों का कोट।
ठंडी न पड़ बनी रह तत्ती,
स्नेह लाता है यह बत्ती!

प्रसंग- प्रेम के वश में होने पर सुख दुख, चतुराई का कोई महत्व नहीं रहा जाता है यह बंधन जो दिन ब दिन प्रगाढ़ होता जाता है।

व्याख्या– दीपक की बाती को तेल जलाता है किंतु उसकी रोशनी से छोटी से छोटी वस्तु भी दिखाई दे जाती है। दीपक व तेल मिलकर बाती को जला देते हैं वैसे ही प्रिय के प्रेम में शरीर जल रहा है जिसका प्रकाश मुख पर दिख रहा है। सूर्य उदय होने पर बाती राख हो जाती है वैसे ही प्रिय के मिलने पर मैं हो जाऊंगी। अरे बाती तू अपनी शिखा को स्थिर रख, व तप्त बनी रह जिससे करोड़ो किलों का निर्माण करने की शक्ति का वास होता है। तू अपनी शिखा में हलचल मत होने दे मैं तेरे लिए आंचल की ओट करती हूं।

विशेष

1. भाषा बोधगम्य है।
2. श्लेष अलंकार है।

ओ हो! मरा वह वराक वसंत कैसा?
ऊंचा गला रुंध गया अब अन्त जैसा।
देखो, बढ़ा ज्वर, जरा-जड़ता जगी है,
लो, ऊर्ध्व सांस उसकी चलने लगी है!

प्रसंग– ऋतु का वर्णन है- कैसे वसंत के बाद ग्रीष्म ऋतु आने को है।

व्याख्या– वसंत ऋतु के मरने से तात्पर्य है कि उस ऋतु का अंत हो गया है व कोयल भी अब गाना छोड़ देंगी क्योंकि ग्रीष्म ऋतु आने को है जिसके कारण ठंडी हवा अब गर्म सांस के समान लगने लगी है। वसंत की मधुरता समाप्त होने पर कोयल की कूक भी सुनाई देती है ठंडी बयार में उष्णता आने लगती है।

विशेष

1. वसंत का मानवीकरण किया गया है।
2. भाषा सरल व सुंदर है।
3. विरह की ग्रीष्म ऋतु से तुलना यानि विरह उष्णता और तपन देने जैसा है।

आकाश-जाल सब ओर तना,
रवि तन्तुवाय है आज बना,
करता है पद-प्रहार वही,

मक्खी-सी भिन्न रही मही।
लपट से झट रूख जले, चले,
नद-नदी घट सूख चले, चले।
विकल वे मृग-मीन मरे, मरे,
किल में दृग दीन भरे, भरे।

प्रसंग– ग्रीष्म ऋतु की तीव्रता का वर्णन उर्मिला कर रही है।

व्याख्या– सूर्य को एक मकड़ा मान लिया है व आकाश को उसका जाल। जैसे जाल में मक्खी फंस जाती है तो मकड़ा उस पर प्रहार करता है वैसे ही सूर्य अपनी किरणों से प्रताड़ित कर रहा है। भीषण गर्मी से वन जल गए, नदी का जल सूख गया व मछली मरने लगी क्योंकि इन्हें प्रिय दर्शन नहीं हुए। विरह की अग्नि में जलकर विरहणी भी जल रही है।

विशेष

1. ग्रीष्मकाल का मानवीकरण किया गया है।
2. भाषा सरल व सहज है।

मेरी ही पृथिवी का पानी,
ले लेकर यह अन्तरिक्ष सखि,
आज बना है दानी!
मेरी ही धरती का धूम,
बना आज आली, घन घूम।
गरज रहा गज-सा झुक झूम,
ढाल रहा मद मानी,
मेरी ही पृथिवी का पानी।
अब विश्राम करें, रवि-चन्द्र;
उठें नये अंकुर निस्तन्द्र;
वीर सुनाओ निज मृदुमन्द्र,
कोई नयी कहानी,
मेरी ही पृथिवी का पानी।
बरस घटा बरसूं मैं संग,
सरसें अवनी के सब अंग;
मिले मुझे भी कभी उमंग,
सब के साथ सयानी।
मेरी ही पृथिवी का पानी।

प्रसंग– वर्षा ऋतु का वर्णन किया गया है उर्मिला इस ऋतु पर काम उद्दीपन का आरोप लगा रही है।

व्याख्या– उर्मिला सखी से कहती है अंतरिक्ष जो दानी बन रहा है वर्षा दे कर उसने यह जल पृथ्वी से ही लिया है जो कि भाप बनकर उपर गया है। वह बादल में परिवर्तित होकर मतवाले हाथी के समान जल वर्षा कर रहा है। चांद व सूर्य दोनों को अब आराम करना चाहिए। भूमि भी नम हो गयी है अब इसमें नये अंकुर उगने चाहिए। तुम सखी मुझे कोई कथा सुनाओ। फिर घटा से उर्मिला कहती है कि मैं भी बरसूंगी तेरे साथ यानि की आंसू रूपी जल मैं भी बहा दूंगी। जैसे वर्षा से पृथ्वी को उमंग मिलती है वैसे ही मुझे भी सभी के साथ उमंग प्राप्त हो।

विशेष

1. उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

न जा उधर हे सखी, वह शिखी सुखी हो, नचे,
न संकुचित हो कहीं, मुदित लास्य-लीला रचे।
बनूं न पर-विघ्न में बस मुझे अबाध यही,
विराग-अनुराग में अहह! इष्ट-एकान्त ही।

शब्दार्थ– मुदित-खुश, लास्य-नृत्य, शिखी-मोर

प्रसंग– उर्मिला अपनी सखी से कहती है कि मोर की तरु न जाएं।

व्याख्या– उर्मिला सखियों को मोर की तरफ जाने से रोकती है ताकि मोर नृत्य करना बंद न कर दें अर्थात उनके आनंद में बाधा न आ जाए। सुख तो इसमें है कि किसी के आनंद में विघ्न न आए। चाहे वियोग हो या प्रेम उसके लिए एकाकीपन चाहिए न कि कोई व्यवधान।

विशेष

1. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
2. सहज, सरल भाषा में प्रकृति का मनोरम वर्णन।

अवसर न खो निठल्ली,
बढ़ जा, बढ़ जा, विटपि-निकट वल्ली,
अब छोड़ना न लल्ली,
कदम्ब - अवलंब तू मल्ली!

प्रसंग– वृक्ष व बेल के माध्यम से प्रेम का चित्रण है।

व्याख्या– उर्मिला वियोगिनी है, वह प्रिय से अलग होने का अर्थ जानती है इसलिए वह बेल से कहती है कि वृक्ष से तुम लिपट जाओ व इसका साथ न छोड़ना। यह अवसर न जाने दो, तुम वृक्ष का सहारा ले लो। हे मल्लिका लता तू भी कदम्ब के पेड़ का सहारा कभी न छोड़ना तुम अपने प्रिय का साथ न छोड़ना।

विशेष

1. अलंकारों का सुंदर प्रयोग है जैसे-पुनरुक्ति प्रकाश व छेकानुप्रास अलंकार।
2. नारी के लिये अपने प्रिय का सहारा बहुत महत्वपूर्ण होता है।

कुलिष किसी पर कड़क रहे हैं,
आली, तोयद तड़क रहे हैं,
कुछ कहने के लिए लता के,
अरुण अधर वे फड़क रहे हैं।
मैं कहती हूं-रहें किसी के,
हृदय वही जो धड़क रहे हैं।
अटक अटककर, भटक भटककर,
भाव वही जो भड़क रहे हैं।

प्रसंग– वर्षा काल में मेघों के गरजने से प्राणियों की दशा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– आकाश में बिजली के कड़कने से मानों बादल आपस में ही टकरा रहे हैं। लता के पत्ते भी कंपित हो रहे हैं मानों होंठों के समान थरथराते हुए कुछ कहना चाह रहे हैं। किंतु इस गर्जना को सुनकर कितनी अबला कुमारियों के हृदय धड़क रहे होंगे। वे भी डर के मारे कांप रही होंगी।

विशेष

1. उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण किया गया है।
2. भाषा में प्रवाह है।

तम में तू भी कम नहीं, जी, जुगनू बड़भाग,
भवन भवन में दीप हैं, जा, वन वन में जाग।
हा! वह सहृदयता भी क्रीड़ा में है कठोरता जड़िता,
तड़प- तड़प उठती है स्वजनि, घनालिंगिता तड़िता।
गाढ़ तिमिर की बाढ़ में डूब रही सब सृष्टि,
मानों चक्कर में पड़ी चकराती है दृष्टि।

प्रसंग– विरहावस्था में जुगनू का वर्णन है।

व्याख्या– जुगनू की रोशनी भले ही कम हो किंतु महत्वपूर्ण होती है, उर्मिला जुगनू को दीर्घायु होने का आशीर्वाद देती है। उर्मिला कहती है घरों में तो दीपक का प्रकाश है तुम जाकर वन में प्रकाश करो जिससे लक्ष्मण को लाभ हो। संयोग की क्रीड़ा भी कष्ट देती है जैसे बिजली बादल के आलिंगन में रह रह कर चमकती है। वर्षा के कारण घना अंधेरा छाया है व अंधेरे ने एक बाढ़ का रूप ले लिया है, और इस घने अंधेरे की बाढ़ में सारा संसार डूब गया है।

विशेष

1. अलंकारों का सहज प्रयोग है।
2. उर्मिला का लक्ष्मण के प्रति प्रेम-जुगनू को भी वन प्रदेश में प्रकाश फैलाने का आदेश देता है जहां लक्ष्मण वन प्रवास कर रहे थे।

रह चिरदिन तू हरी-भरी,
बढ़, सुख से बढ़ सृष्टि-सुन्दरी,
सुख प्रियतम की मिले मुझे,
फल/जन-जीवन-दान तुझे।
हँसो, हँसो हे शशि, फूल, फूलो,
हँसो, हिंडोरे बैठ झूलो।
यथेष्ट मैं रोदन के लिए हूं,
झड़ी लगा दूं, इतना पिये हूं।
प्रकृति, तू प्रिय की स्मृति-मूर्ति है,
जड़ित चेतन की त्रुटि-पूर्ति है।
रख सजीव मुझे मन की व्यथा,
कह सखी, कह तू उनकी कथा।

प्रसंग– इस पद्यांश में उर्मिला का प्रकृति के प्रति सहानुभूति का चित्रण है।

व्याख्या– वर्षा ऋतु से उर्मिला कहती है कि तुम सदा रहो क्योंकि तुम्हें देखकर प्रिय स्मृति की स्मृति बनी रहती है व सभी जीवों को जल के कारण जीवनदान करने का फल मिलता रहे। चांद भी चांदनी प्रदान करता रहे, फूल भी खिलते रहें। लता के झूले में सब झूलें। मेरे तरह बुरे दिन किसी के न आएं। रोने हेतु मैं ही बहुत हूं। मेरे हृदय में इतनी व्यथा है कि आंसू की लहर आ सकती है। सखी से वह कहती है कि वह उनके प्रियतम की कहानी व अतीत में बिताये हुए सुख के क्षण उन्हें सुनाती रहे ताकि उनका मन लगा रहे।

विशेष

1. उर्मिला सब के सुख की कामना करती है।
2. रूपक और विरोधाभास अलंकारों का प्रयोग है।
3. उर्मिला को प्रकृति से द्वेष नहीं है।
4. वर्षा को ऋतुओं की रानी कहा गया है, उसी के कारण सर्वत्र हरियाली छा जाती है और धरती तृप्त हो जाती है।

निरख सखी, ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये!
फैला उनके तन का आतप, मन ने सर सरसाये,
घूमें वे इस ओर वहां, ये हंस यहां उड़ छाये!
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाये,
फूल उठे हैं कमल, इधर-से ये बन्धूक सुहाये!
स्वागत, स्वागत, शरद् भाग्य से मैंने दर्शन पाये,
नभ ने मोती वारे, ये अश्रु अर्घ्य भर लाये!

प्रसंग– वर्षा ऋतु की समाप्ति पर शरद व ऋतु के आगमन पर प्रकृति का चित्रण है।

व्याख्या– खंजन पक्षी की उपमा नेत्र से दी जाती है शरद ऋतु आरंभ होने पर खंजन पक्षी आए हैं तो लगता है लक्ष्मण जी ने अपने नेत्र इस ओर घुमाए हैं। यह जो धूप है वह भी प्रिय के शरीर का तेज है। तालाब में सुंदर कमल खिले हैं मानों प्रिय का हृदय सरस हो उठा है। प्रिय ने मुझे याद किया होगा तभी ये हंस भी उड़कर यहां आ गये हैं।

आज अवश्य लक्ष्मण मेरा ध्यान कर मुस्काए हैं तभी कमल भी खिल उठे हैं व लाल होंठ के सामान बंधूक भी खिले हैं। मेरे नेत्रों के आंसू मैं तुम्हे श्रद्धा से अर्पण करती हूं। अरे शरद ऋतु तुम इसे स्वीकार करो क्योंकि तुम्हारे रूप में मैंने प्रिय के दर्शन कर लिए हैं। शरद ऋतु के आगमन से फूलों-पत्तियों पर ओस की बूंदें चमकने लगती हैं।

विशेष

1. प्रकृति का सुंदर चित्रण किया गया है।
2. प्रकृति का मानवीकरण किया गया है।
3. मनोदशा का प्रकृति पर प्रभाव प्रकट किया गया है।

कोक शोक मत कर हे तात,
कोकि, कष्ट में हूं मैं भी तो, सुन तू मेरी बात।
धीरज धर, अवसर आने दे, सह ले यह उत्पात,
मेरा सुप्रभाव वह तेरी सुख-सुहाग की रात!

प्रसंग– विरह के क्षणों में उर्मिला के विरह का वर्णन है।

व्याख्या– उर्मिला चकवा व चकवी से कहती है कि विरह के क्षणों को सहनशीलता से सहन करो संसार में बहुत लोग इस कष्ट को सह रहे हैं। तुम ही अकेले नहीं हो। मैं भी प्रिय वियोग के कारण बहुत कष्ट में हूं। किंतु इस वियोग के बाद संयोग भी आएगा व मंगल समय आएगा जब सुख सुहाग से पूर्ण रात्रि होगी। तुम्हारा मिलन अवश्य होगा।

विशेष

1. उर्मिला के चरित्र का आदर्श दर्शाया गया है।

किसने मेरी स्मृति को
बना दिया है निशीथ में मतवाला!
नीलम के प्याले में
बुद्बुद देकर ऊन रही वह हाला!

प्रसंग– सखी से उर्मिला कह रही है–

व्याख्या– आकाश रूपी प्याले में तारे रूपी शराब हैं। जिस प्रकार शराब का सेवन करने वाला मतवाला हो जाता है उसी तरह तारों भरी रात ने वियोग वेदना को उद्दीप्त कर दिया है। आकाश के तारे मदिरा के बुलबुलों के समान लग रहे हैं।

विशेष

1. सरल, सरस भाषा का प्रयोग है।

लोल लहरियां डोल रही हैं,
भ्रू-विलास-रस घोल रही हैं,
इंगित ही में बोल रही हूं।
मुखरित कूल-किनारा।
सखि, निरख नदी की धारा।
पाया, अब पाया-वह सागर,
चली जा रही आप उजागर।
कब तक आवेंगे निज नागर,
अवधि-दूतिका-द्वारा?
सखि, निरख नदी की धारा।
मेरी छाती दलक रही है,
मानस-शफरी ललक रही है,
लोचन-सीमा छलक रही है,
आगे नहीं सहारा!
सखि, निरख नदी की धारा।

प्रसंग– उर्मिला के वियोग का वर्णन है। वह नदी किनारे खड़ी हुई अपनी मनोव्यथा का रही हैं।

व्याख्या– लहरें किनारे पर आकर टकराती हैं व इशारे से अपनी बात कह रही हैं। उनके टकरा से किनारा भी बोलने लगता है। नदी भी खुशी-खुशी बहती रहती है कि अब सागर रूपी प्रि से मिल ही जाएगी। यह मिलने की इच्छा देख उर्मिला का भी प्रिय से मिलने की अवधि का भान होता है। वह इतनी व्याकुल है कि उसे लगता है जैसे छाती ही फटने को है। हृदय की तुल मछली की व्याकुलता से की गयी है। उसका मछली रूपी हृदय अपने प्रियतम से मिलने के लि व्यग्र हो रहा है अभी बहुत समय बाकी है व कोई सहायक भी नहीं है।

विशेष

1. नदी की लहरों का सुंदर वर्णन है।
2. रूपकातिशयोक्ति व विरोधाभास अलंकारों का सरल प्रयोग है।
3. प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण हुआ है।

मेरी दुर्बलता क्या
दिखा रही तू अरी, मुझे दर्पण में?
देख, निरख मुख मेरा

वह तो धुंधला हुआ स्वयं ही क्षण में।
एक अनोखी मैं ही
क्या दुबली हो गई सखी, घर में?
देख, पद्मिनी भी तो
आज हुई नालशेष निज सर में।

प्रसंग– उर्मिला की सखी उसे दर्पण दिखा कर बताती है कि वह कितनी दुर्बल हो गयी है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है मुझे मेरी दुर्बलता न दिखाओ मेरे मुख पर सच्चे प्रेम का जो तेज है उसके समक्ष दर्पण भी धुंधला हो जाएगा। मेरे सांस छोड़ने से दर्पण पर भी कुहासा छा जाएगा। घर में सभी कमजोर हुए हैं। सभी राम-सीता व लक्ष्मण की याद कर रहे हैं जल में रहने वाली कमलिनी भी सूख गई है व उसकी मात्र नाल बची है। वह जल में रहते हुए भी मुरझा गई है।

विशेष

1. उर्मिला को विरह ग्रस्त होने पर भी स्वाभिमान है।
2. प्रकृति पर भी उर्मिला के विरह की छाया है।

हम राज्य के लिए मरते हैं?
सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं।
जिनके खेतों में है अन्न,
कौन अधिक उनसे सम्पन्न,
पत्नी सहित विचरते हैं ये, भव-वैभव भरते हैं,
हम राज्य लिए मरते हैं।
वे गो-धन के धानी उदार,
उनको सुलभ सुधा की धार,
सहनशीलता के आगर वे श्रम-सागर तरते हैं,
हम राज्य के लिये मरते हैं।
यदि वे करें, उचित है गर्व,
बात बात में उत्सव-पर्व
हम-से प्रहरी रक्षक जिनके, वे किससे डरते हैं?
हम राज्य लिए मरते हैं।

प्रसंग– इस प्रसंग में उर्मिला किसानों को ही राज्य का अधिकारी समझती है। उसके अनुसार उन कर्मठ किसानों के समक्ष उसका राज्य भी तुच्छ है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है कि क्षत्रिय राज्य के लिए लड़ते हैं व घमंड करते हैं जबकि सच्चा अधिकारी किसान होता है। किसान अनाज उपजाता है। वे अपनी पत्नी के साथ विचरण करते हैं व संसार को वैभव और संपन्नता देते हैं। वे धनी हैं गाय से, गौरस से। अमृत जैसा दूध उनको सुलभ है। वे सब सहन करते हैं। हम बेकार ही गर्व करते हैं। हम उनके पहरेदार हैं तो उनको डर कैसा। वे अपनी छोटी छोटी खुशियों में ही आनंद से रहते हैं। हम झूठ मूठ के राजा बनते हैं।

विशेष

1. किसानों के सरल जीवन का चित्रण है।
2. उर्मिला की उदारता का वर्णन है।
3. रूपक-उपमा आदि अलंकारों का समावेश है।

प्रभु को निष्कासन मिला, मुझको कारागार,
मृत्यु दण्ड उन तात को, राज्य, तुझे धिक्कार!
चौदह चक्कर खायेगी, जब यह भूमि अभंग,
घूमेंगे इस ओर तब प्रियतम प्रभु के संग,
प्रियतम प्रभु के संग आएंगे तब हे सजनी,
अब दिन पर दिन गिनो और रजनी पर रजनी!
पर पल पल ले रहा यहां प्राणों से टक्कर,
कलह - मूल यह भूमि लगावे चौदह चक्कर!
सिकुड़ा सिकुड़ा दिन था, सभीत-सा शीत के कसाले से,
सजनी, यह रजनी तो जम बैठी विषम पाले से!

प्रसंग– यहां उर्मिला अपने एकाकी जीवन के संबंध में कह रही है।

व्याख्या– वह राज्य को धिक्कारते हुए कहती है कि इसके कारण ही राम व लक्ष्मण को वन जाना पड़ा व राजा दशरथ को मृत्यु प्राप्त हुई। वह कहती है जब हर ऋतु चौदह बार आकर जाएगी अर्थात चौदह वर्ष तक यह क्रम चलता रहेगा तब उसके स्वामी आएंगे और राम-सीता भी आएंगे। तब तक रात दिन एक-एक कर काटना है। शीत काल में रात बड़ी हो जाएगी व दिन छोटा, तब भी मुश्किल हो जाएगी। किंतु विरह रूपी शीत रात्रि तो काटने से भी नहीं कट रही है। मेरे हृदय की अधीरता बढ़ती जा रही है।

विशेष

1. सरल, सुंदर भाषा है।
2. उर्मिला को प्रतीक्षा के क्षण अत्यंत लंबे प्रतीत होते हैं।

शिशिर, न फिर गिरि-वन में,
जितना मांगे, पतझड़ दूंगी मैं इस निज नन्दन में,
कितना कम्पन तुझे चाहिए, ले मेरे इस तन में।
सखि कह रही, पाण्डुरता का क्या अभाव आनन में?
वीर, जमा दे नयन-नीर यदि तू मानस-भाजन में,
तो मोती-सा मैं अकिंचन रखूं उसको मन में।
हंसी गई, रो भी न सकूं मैं, मैं अपने इस जीवन में,
तो उत्कंठा है, देखूं फिर क्या हो भाव-भुवन में।

प्रसंग– इस प्रसंग में शिशिर ऋतु का वर्णन किया गया है। वह स्वयं को शिशिर ऋतु के समान कहती है।

व्याख्या– उर्मिला ऋतु से वन व पर्वतों में न घूमने को कहती है। शिशिर ऋतु में वृक्षों के सब पत्ते गिर जाते हैं व पीले पड़ जाते हैं शीतलता के कारण सभी ठिठुरते हैं। उर्मिला कहती है कि पतझड़ योग्य कंपन व पीलापन सब मुझ में ही मिल जाएगा। विरह में मेरा मुख पीला पड़ गया है। वह कहती है कि मेरे आसुंओं को भी जमा दे ताकि मैं उसे मोती के समान सहेज कर रख सकूं। मैं विवशतावश रो भी नहीं सकती हूं। यह भी जानना चाहती हूं कि अब मेरे जीवन में क्या रह गया है। मैं तो हंसना भी भूल गई हूं और भावनाएं भी मुझमें शेष नहीं है।

विशेष

1. रूपक, उपमा व नवीनकरण अलंकार का सुंदर चित्रण किया गया है।।
2. छायावादी शैली में शिशिर ऋतु का वर्णन किया गया है।
3. उर्मिला की विरह-वेदना जिसमें कुछ कर भी नहीं पा रही है।

काली काली कोइल बोली-
होली - होली - होली-
हंसकर लाल लाल होठों पर हरियाली हिल डोली,
फूटा यौवन, फाड़ प्रकृति की पीली पीली चोली!
होली - होली - होली!
अलस कमलिनी ने कलरव सुन उन्मद अँखियां खोली,
मल दी ऊषा ने अम्बर में दिन के मुख पर रोली!
होली - होली - होली!
रागी फूलों ने पराग से भर ली अपनी झोली,
और ओस ने केसर उनके स्फुट-सम्पुट में घोली!
होली - होली - होली!
ऋतु ने रवि-शशि के पलड़ों पर तुल्य प्रकृति निज तोली,
सिहर उठी सहसा क्यों मेरी भुवन-भावना भोली?
होली - होली - होली!
गूंज उठी खिलती कलियों पर उड़ अलियों की टोली,
प्रिय की श्वास-सुरभि दक्षिण से आती है अनमोली।
होली - होली - होली!

प्रसंग– होली के पर्व के आगमन का वर्णन किया गया है कि तब क्या होता है। कोयलें कूकने लगती हैं शिशिर के जाने के बाद प्रकृति फिर से हरित हो उठती है।

व्याख्या– सखि कोयल भी कूकने लगी है, होली का त्यौहार आने को है। किसलय के लाल फूल भी खिल गए हैं। तलाब में कमलिनी पुष्पित हो रही है जैसे की आलस्य में सूर्य उग उनके टकराने के समय मानो कोई आंख खोलता है। ऊषा रूपी नायिका ने मानो लाल रोली मल दी हो क्योंकि होली है। फूलों में पराग है और ओस पड़ने पर ऐसा लगता है उनके खुले संपुट में केसर घोल दी हो। इस मौसम में न सर्दी है न ज्यादा गर्मी। आज प्रकृति का तराजू

समान रूप से है। सब तरु आनंद है। नव युवक व युवतियां भी आनंद ले रहे हैं, मेरे प्रिय की अमूल्य श्वास वायु भी दक्षिण दिशा की ओर से आ रही है।

विशेष

1. होली आगमन के साथ मौसम में परिवर्तन होता है।
2. रूपक, श्लेष, अनुप्रास, अलंकारों का प्रयोग है।
3. वसन्त ऋतु में सर्वत्र आनन्द दिखाई देता है, प्रकृति भी पुनः जीवंत हो उठती है, पलाश-सरसों सभी खिल जाते हैं।

जा, मलयानिल, लौट जा, यहां अवधि का शाप,
लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप!
भ्रमर, इधर मत भटकना, ये खट्टे अंगूर,
लेना चम्पक-गंध तुम, किंतु दूर ही दूर।
सहज मातृगण गन्ध था कर्णिकार का भाग;
विगुण रूप-दृष्टांत के अर्थ न हो यह त्याग।

प्रसंग– वसंत ऋतु के कारण उर्मिला व्यथित है किंतु वह स्वयं को ही दोषी ठहराकर वसंत के उपकरणों को वापस भेजना चाहती है।

व्याख्या– उर्मिला मलय पवन को लौट जाने को कहती है क्योंकि विरह के कारण वह तप्त है व उनके संपर्क में आने से शीतल पवन भी लू की भांति हो जाएगी। वह भंवरे से कहती है कि मुझसे दूर रहो क्योंकि प्रिय विरह में पीली पड़ गयी हूं न मुझ में गंध है न ही रूप। कनेर के फूल के समान हूं जिसमें गंध व गुण नहीं होता है किंतु फिर भी उसकी विशेषता है कि गुणहीन होता हुआ भी रूपवान होता है। सुंदरता बताने के लिये उसने इस गुण को भी छोड़ दिया है।

विशेष

1. अतिशयोक्ति अलंकार है।
2. भाषा सरल है।
3. विरह के कारण उर्मिला जल रही है। जो भी उसके संपर्क में आएगा ध्वस्त हो जाएगा।

मुझे फूल मत मारो।
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो।
होकर मधु के मीत मदन, पटु, तुम कटु, गरल न गारो,
मुझे विकलता, तुम्हें किलता, ठहरो, श्रम परिहारो।
नहीं भोगिनी यह मैं कोई, जो तुम जाल पसारो,
बल हो तो सिन्दूर-बिन्दु यह-यह हरनेत्र निहारो!
रूप-दर्प-कन्दर्प, तुम्हें तो मेरे पति पर वारों,
लो, यह मेरी चरण-धूलि उस रति के सिर पर धारो

प्रसंग– फूलों को देखकर उर्मिला दुखी हो जाती है व वसंत ऋतु को अपने प्रतिकूल मानती है। वह उसे कष्टकर प्रतीत होती है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है, हे कामदेव मुझे पुष्प मारकर कष्ट न दो मैं बलहीन हूं, वियोगिनी हूं, मेरा प्रिय मेरे साथ नहीं है मुझ पर दया करो। तुम वसंत के मित्र हो तो तुम्हें मधुर होना चाहिए न कि विष वर्षा करनी चाहिए। तुम श्रम न करो मुझ पर यह सब व्यर्थ जाएगा। मैं संयमशील हूं तुम्हारे जाल में नहीं आउंगी। मैं मोह वश अपना सतीत्व नहीं छोड़ूंगी।

क्रोधित होकर उर्मिला कहती है कि मेरे माथे पर यह सिंदूर सतीत्व का प्रतीक है जो तुम्हें भस्म कर देगा जो कि शिव के तीसरे नेत्र के समान है, और कामदेव अपने रूप पर घमंड न करो मेरा प्रिय तुमसे भी अधिक रूपवान है। तुम मेरी चरण धूलि ले जाकर अपनी पत्नी पर डाल दो। मेरे सतीत्व में अपार क्षमता है जो अपनी रक्षा कर सकता है।

विशेष

1. व्यंग्यात्मक काव्य है।
2. रूपक उत्प्रेक्षा, व्यंग्योक्ति अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
3. पुष्प न मारो में-काम रूपी फूल की ओर संकेत है।
4. मधु और रति में श्लेष अलंकार है।

अरी, गूंजती मधुमक्खी,
किसके लिए बता तूने वह रस की मटकी रक्खी?
किसका संचय दैव सहेगा?
काल घात में लगा रहेगा,
व्याधा बात भी नहीं कहेगा,
लूटेगा घर लक्खी;
अरी, गूंजती मधुमक्खी।
इसे त्याग का रंग न दीजो,
अपने श्रम का फल है, लीजो,
जयजयकार कुसुम का कीजो,
जहां सुधा-सी चक्खी।
अरी, गूंजती मधुमक्खी।

प्रसंग– मधुमक्खी को काल की क्रूरता के प्रति सचेत किया है।

व्याख्या– उर्मिला मधुमक्खी से कहती है, कि त्याग भावना में आकर जो उसने परिश्रम रूपी रस (शहद) बनाया है उसे छोड़ना नहीं। यह तो तुम्हारे त्याग व मेहनत का रूप है। इस पुष्प को नमन करना जिससे यह रस तुम्हें प्राप्त हुआ है। तूने तो अमृत रस चख लिया है।

विशेष

1. प्रसाद व माधुर्य गुण से परिपूर्ण है।
2. दीजो, कीजो में नितांत सरल ग्रामीण भाषा का प्रयोग किया गया है।

छोड़, छोड़ फूल मत तोड़, आली, देख मेरा
हाथ लगते ही यह कैसे कुम्हलाये हैं?
कितना विनाश निज क्षणिक विनोद में है,
दुःखिनी लता के लाल आंसुओं में छाये हैं।
किंतु नहीं, चुन ले सहर्ष खिले फूल सब,
रूप, गुण, गंध से जो तेरे मनभाये हैं।
जाये नहीं लाल लतिका ने झड़ने के लिए
गौरव के संग चढ़ने के लिए जाये हैं।

प्रसंग– उर्मिला वाटिका में बैठ अपने प्रिय के कपट पूर्ण कार्य का बखान कर रही थी तभी इसकी एक सखी पुष्प तोड़ रही थी तो उर्मिला ने उसे ऐसा करने से रोक दिया।

व्याख्या– उर्मिला कहती है कि थोड़े से सुख के लिये पुष्प न तोड़ो जो उसकी मां है उसे दुख होगा व उनसे आंसू रूपी रस निकलेगा। अगले ही क्षण वह बदल जाती है कहती है कि सभी खिले फूलों को तोड़ लो व उनके रूप, गुण का प्रयोग करो। लता ने उन्हें खाली सूखकर गिर जाने को नहीं पैदा किया है किंतु किसी पर न्यौछावर होने को बनाया है।

विशेष

1. लता का मानवीकरण किया गया है।
2. अतिशयोक्ति अलंकार है।

सखि, बिखर गई हैं कलियां?
कहां गया प्रिय झुकामुकी में करके वे रंग-रलियां?
भुला सकेंगी पुनः पवन को अब क्या इनकी गलियां?
यही बहुत, ये पचें उन्हीं में जो थी रंगस्थलियां!

प्रसंग– कलियां बिखरी हुई हैं व उर्मिला को देखकर सखी से बात करती हैं।

व्याख्या– बिखरी कलियां देखकर उर्मिला कहती है कि यह प्रियतम, प्रेम लीला करके कहां चला गया है। वह विकसित होने पर पुनः आएगा। क्या पवन भूल पाएगा इस मार्ग को। अब रंगस्थलियां इसमें समा जाएं तो यही ठीक होगा।

विशेष

1. उर्मिला अपनी दशा का बखान कर रही है।
2. अलंकार का सुंदर प्रयोग है।
3. अन्योक्ति अलंकार है।

कह कथा अपनी इस घ्राण से,
उड़ गये मधु-सौरभ प्राण-से।
फल मिलें हमको-तुमको सखी,
तदपि बीज रहें सब त्रण से।

उठती है उर में हाय! हूक,
ओ कोइल, कह, यह कौन कूक?
क्या ही सकरुण, दारुण, गंभीर,
निकली है नभ का चित चीर,
होते हैं दो दो दृग सनीर,
लगती है लय की एक लूक!
ओ कोइल, कह, यह कौन कूक?
तेरे क्रन्दन तक में सु-गान,
सुनते हैं जग के कुटिल कान,
लेने में ऐसा रस महान!
हम चतुर करें किस भाँति चूक!
ओ कोइल, कह, यह कौन कूक?
री, आवेगा फिर भी वसन्त,
जैसे मेरे प्रिय प्रेमवन्त।
दु:खों का भी है एक अन्त,
हो रहिए दुर्दिन देख मूक।
ओ कोइल, कह, कौन कूक?
अरे एक मन, रोक थाम तुझे मैंने लिया,
दो नयनों ने, शोक, भरम खो दिया, रो दिया।

प्रसंग- उर्मिला के विरह का करुण वर्णन है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है पुष्प में व उसमें दोनों ही में मधु व सुगंध समाप्त हो गयी है लेकिन बीज रूप में गुण विद्यमान रहेंगे।

कोयल की कूक से आंख भर आई है। हृदय में टीस सी जाग रही है। कटु शब्द सुनने वाला मनुष्य भी इसमें मधुरता प्राप्त कर लेता है तो हम क्यों नहीं। चाहे अभी वसंत चला गया हो किंतु फिर आएगा। मेरे प्रिय भी एक दिन आएंगे। क्योंकि यह नियम है कि दुख का भी अंत होता है व दुख के दिन चुप रह कर काटने चाहिए।

कोयल की कूक से हृदय में हूक सी उठती है उसकी चुभन से आकाश रूपी मेरा हृदय विदीर्ण हो गया है और उस पीड़ा से मेरे नेत्रों से अश्रु धारा बह निकली है। अगले वसंत की प्रतीक्षा करनी चाहिए।

विशेष

1. उर्मिला के विरह का वेदना पूर्ण चित्रण है।
2. कविता में गीतात्मकता है।
3. हर रूप में प्रकृति विरहिणी को दुख दे रही है।

न जा अधीर धूल में,
दृगम्बु, आ, दुकूल में।

रहे एक ही पानी चाहे हम दोनों के मूल में,
मेरे भाव आंसुओं में हैं, और लता के फूल में।
दृगम्बु, आ, दुकूल में।
फूल और आंसू दोनों ही उठे हृदय की हूल में,
मिलन-सूत्र-सूची से कम क्या अनी विरह के शूल में।
दृगम्बु, आ, दुकूल में।
मधु हंसने में, लवण रुदन में, रहे न कोई भूल में,
मौज किंतु मझधार बीच है किंवा है वह कूल में?
दृगम्बु, आ, दुकूल में।

प्रसंग– उर्मिला अपने आंसुओं को धूल में गिरा नहीं देख सकती। वह उन्हें अपने आंचल से ही पोंछ लेती है।

व्याख्या– वह कहती है कि आंसू तुम मेरे आंचल में आ जाओ धूल में न गिरो। जैसे लता में फूल खिलते हैं वैसे ही मेरे मन के भाव आंसू रूप में निकलते हैं। ये दोनों ही अस्थिर की उपज हैं। खुशी के आंसू मीठे व दुख के आंसू खारे होते हैं। जैसे फूलों को सुई द्वारा धा में पिरोने पर कष्ट होता है उसी तरह मेरे विरह के शूलों से अश्रु भी कष्ट उठा रहे हैं।

विशेष

1. आंसुओं के माध्यम से दुख का वर्णन किया गया है।
2. मानवीकरण का आकर्षक चित्रण है।

सखे, जाओ तुम हंसकर भूल, रहूं मैं सुध करके रोती,
तुम्हारे हंसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती।
मानती हूं तुम मेरे साध्य,
अहर्निशि एक मात्र आराध्य,
साधिका मैं भी किंतु अबाध्य,
जागती होऊं या सोती।
तुम्हारे हंसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती।
सफल हो सहज तुम्हारा त्याग,
नहीं निष्फल मेरा अनुराग,
सिद्धि है स्वयं साधना-भाग,
सुधा क्या, क्षुधा जो न होती।
तुम्हारे हंसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती।
काल की रुके न चाहे चाल,
मिलन से बड़ा विरह का काल;
वहां लय, यहां प्रलय सुविशाल।
दृष्टि में दर्शनार्थ होती,
तुम्हारे हंसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती।

प्रसंग– उर्मिला अपने रोने को आवश्यक अंग मानती है और प्रिय लक्ष्मण को संबोधित करती हुए कहती हैं–

व्याख्या– उर्मिला कहती है प्रिय तुम हंसते हो तो फूलों की वर्षा होती है व मेरे रोने में मोती दिखते हैं। यह मान लो मैं तुम्हारी साधिका हूं और तुम आराध्य हो। मैं सोते जागते तुम्हें याद करती हूं। तुम्हारा त्याग सफल हो व मेरा यह प्रेम कभी कम न हो। साधना का अंश सिद्धि होती है। समय चक्र नहीं रुकता है मिलने की घड़ी लंबी लगती है। तुम्हारे दर्शन के लिए मैं रोती हूं ताकि विरह के प्रलय से उबर कर तुम्हें देख सकूं।

विशेष

1. गहरा प्रेम चित्रण किया गया है।
2. मार्मिकता से परिपूर्ण वर्णन है।

अब जो प्रियतम को पाऊं,
तो इच्छा है, उन चरणों की रज मैं आप रमाऊं,
आप अवधि बन सकूं कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊं,
मैं अपने को आप मिटाकर, जाकर उनको लाऊं?
ऊषा-सी आई थी जग में, संध्या-सी क्या जाऊं?
श्रान्त पवन-से वे आवें, मैं सुरभि-समान समाऊं।
मेरा रोदन मचल रहा है, कहता है, कुछ गाऊं,
उधर गान कहता है, रोना आये तो मैं आऊं!
इधर अनल है और उधर जल, हाय! किधर मैं जाऊं?
प्रबल वाष्प, फट जाय न यह घट, कह तो हाहा खाऊं?

प्रसंग– अब उर्मिला प्रिय दर्शन को आतुर है वह कहती है–

व्याख्या– उनकी चरणों की धूल को अपने शरीर पर मलना चाहती हूं। वह स्वयं को मिटाकर भी उन्हें प्राप्त करने को आतुर है। जीवन का आरंभ खुशी से हुआ है, विदा उदासी से नहीं होनी चाहिए। इतना रो चुकी हूं कि अब और अधिक कष्ट सहने की क्षमता नहीं है। अत्यंत कठिन परिस्थितियां हैं। हृदय में आग है व आंखों में आंसू। कहीं इस तपन से जो भाप बने उससे मेरा हृदय ही न फट जाए।

विशेष

1. रोने का मार्मिक वर्णन है।
2. अप्रतिम प्रेम का चित्रण है।
3. लाक्षणिक प्रयोग है।

मेर चपल यौवन-बाल!
अंचल अंचल में पड़ा सो, मचल कर मत साल।
बीतने दे रात, होगा सुप्रभात विशाल,

खेलना भी खेल मन के पहन के मणि-माल।
पर रहे हैं भाग्य-फल तेरे सुरम्य रसाल,
डर न, अवसर आ रहा है, जा रहा है काल।
मन पुजारी और तन इस दुःखिनी का थाल,
भेंट प्रिय के हेतु उसमें एक तू ही लाल।

प्रसंग– यहां उर्मिला अपने यौवन को संबोधित कर रही है।

व्याख्या– वह यौवन से कहती है कि तू बच्चे की तरह न मचल मुझे कष्ट होता है। रात्रि है तू सो जा। अब अपने प्रिय के आने पर ही सुबह होगी तब तुम अपने मन के अनुसार खेलना। दुख का समय अब जा रहा है। मेरे प्रिय ही मेरे देवता हैं व मन उनका पुजारी, तन पूजा थाल है और मेरा यौवन उनके लिए उपहार है जो मैं सजाये रहूंगी।

विशेष

1. बाल यौवन की चंचलता का वर्णन है।
2. लाल शब्द में श्लेष अलंकार है।

रस प्रिया सखी, नित्य जहां नया,
अब अलभ्य वहां विष हो गया!
मरण-जीवन की यह संगिनी,
बन सकी वन की न विहंगिनी!
सखि यहां सब ओर निहार तू,
फिर विचार अतीत-विहार तू।
उदित से सब हास-विलास हैं,
रुदित-से सब किंतु उदास हैं।
स्वजनि, पागल भी यदि हो सकूं,
कुशल तो अपनापन खो सकूं।
शपथ है उपचार न कीजियो,
अवधि की सुख ही तुम लीजियो।
बस इसी प्रिय-कानन-कुंज में,
मिलन-भाषण के स्मृति-पुंज में,
अभय छोड़ मुझे तुम दीजियो,
हसन-रोदन से न पसीजियो।
सखि, न मृत्यु न आधि,न व्याधि ही,
समझियो तुम स्वप्न-समाधि ही।
हहह! पागल हो यदि ऊर्मिला,
विरह-सर्प स्वयं फिर तो किला!
प्रिय यहां वन से जब आएंगे,
सब विकार स्वयं मिट जाएंगे।
न सपने सपने रह पाएंगे,
प्रकटता अपनी दिखलाएंगे।

अब भी समझ वह नाच खड़े,
बढ़ किंतु रिक्त यह हाथ पड़े।
न वियोग है न यह योग सखी,
कह, कौन भाग्य-मय भोग सखी?

प्रसंग– विरह के मनोभावों का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– जो प्रिय के साथ सुख था वह विष बन गया है। वैसे मैंने जीवन-मरण साथ बिताने की कसम खायी थी जिसे मैं पूरा न कर सकी, प्रिय के होने से सुखी थी अब उदासी है। मैं पागल हो जाऊं तो अच्छा है, व जब वियोग की अवधि समाप्त हो जाए तो ठीक हो जाऊं। मैं प्रिय मिलन की स्मृतियों में खो जाना चाहती हूं। मैं हंसू या रोऊं तो विचलित न होना, स्वामी के आने से सब दुख दूर हो जाएंगे।

विशेष

1. उर्मिला इतनी व्यथित है कि वह पागल होकर अपनी चेतना खो देना चाहती है।

विजय नाथ की हो सभी कहीं,
तदपि क्यों खड़े हो गये वहीं?
प्रिय, प्रविष्ट हो, द्वार मुक्त है,
मिलन-योग तो, नित्य युक्त है।
तुम महान हो और हीन मैं,
तदपि, धूल-सी अंघ्रि-लीन मैं,
दयित, देखते देव भक्ति को,
निरखते नहीं नाथ, व्यक्ति को।
तुम बड़े, बने और भी बड़े,
तदपि ऊर्मिला-भाग में पड़े।
अब नहीं रही दीन मैं कभी,
तुम मुझे मिले तो मिला सभी।
प्रभु कहां, कहां किंतु अग्रजा,
कि जिनके लिए था मुझे तजा?
वह नहीं फिरे? क्या तुम्हीं फिरे?
हम गिरे अहो! तो गिरे, गिरे।
दयित, क्या मुझे आर्त्त जानके,
अधिप ने अनुक्रोश मानके,
घर दिया तुम्हें भेज आप ही।
यह हुआ मुझे और ताप ही!
प्रिय, फिरो, फिरो हा! फिरो, फिरो!
न इस मोह की धूम से घिरो!
विकल मैं यहां, किंतु गर्विणी,
न कर दो मुझे नष्टपर्विणी।
घर फिरे तुम्हीं मोह से कहीं,

तब हुए तपोभ्रष्ट क्या नहीं?
च्युत हुए अहो नाथ, जो यथा,
धिक! वृथा हुई ऊर्मिला-व्यथा।
समय है अभी, हा! फिरो, फिरो,
तुम न यों, यशः स्वर्ग से गिरो।
प्रभु दयालु हैं, लौट के मिलो।
न उनके कुटी-द्वार से हिलो।

प्रसंग– उर्मिला की उन्माद अवस्था का वर्णन है।

व्याख्या– उर्मिला कहती है कि प्रिय तुम महान हो व बने रहे, तुम हो तो सब सुलभ है क्य तुम अकेले ही आए हो तो श्रीराम व बहिन सीता कहां हैं? कहीं उन्होंने मेरा वियोग सुन क तो आप को यहां नहीं भेज दिया है। यदि ऐसा है तो आप जाएं क्योंकि हमें पतित नहीं होना है मोह में आप न आओ, मुझे गर्व से जीना है मेरी साधना व्यर्थ न जाए। तुम जाओ और यश व वापस आना। यदि तुम कर्म से विमुख होकर मेरे पास आ जाओगे तो मुझे अत्यंत क्षोभ होगा

विशेष

1. उर्मिला को अपने कर्तव्य का आभास है।
2. भावावेग का प्रबल रूप है।

बिसरता नहीं न्याय भी दया,
बस रहो प्रिये, जान मैं गया।
तुम अधीर हो तुच्छ ताप में,
रह सकी नहीं आप, आप में
न उस धूप में और मेह में,
तुम रहीं यहां राजगेह में!
विदित क्या तुम्हें, देवि, क्या हुआ,
रुधिर स्वेद के रूप में चुआ।
विपिन में कभी सो सका न मैं,
अधिक क्या कहूं, रो सका न मैं,
वचन ये पुरस्कार में मिले,
अहह ऊर्मिले! हाय ऊर्मिले!
गिन सको, गिनो शूल, जो चुभे,
सहज है समालोचना शुभे।
कठिन साधना किंतु तत्त्व की,
प्रथम चाहिए सिद्धि सत्व की।
कठिन कर्म का क्षेत्र था वहां,
पर यहां? कहो देवि, क्या यहां?
उलहना कभी दैव को दिया,
बहुत जो किया, नेक रो लिया!
सतत पुण्य या पाप-संगिनी,

समझता रहा आत्मअंगिनी।
स्वपति-पुण्य ही इष्ट था तुम्हें,
कटु मुझे, तथा मिष्ट था तुम्हें?
प्रियतम, तपोभ्रष्ट मैं? भला।
मत छुओ मुझे, लौट मैं चला।
तुम सुखी रहो हे विरागिनी,
बस विदा मुझे पुण्यभागिनी।
हट सुलक्षणे रोक तू न यों,
पतित मैं, मुझे टोक तू न यों।
विवश लक्-नहीं, उर्मिला हहा
किधर ऊर्मिला? आलि, क्या कहा?

प्रसंग– प्रिय के कटु शब्द कहने पर उर्मिला को ग्लानि हो रही है।

व्याख्या– उन्माद की अवस्था में स्वप्न देख रही उर्मिला जिसमें लक्ष्मण उनसे रूठकर कहते हैं तुम इस कष्ट से व्याकुल हो गयी हो जबकि तुम राज भवन में रह रही हो व मैं वन में कष्ट भोग रहा हूं। वहां अत्यंत कष्ट था तब भी तुम मुझे कटुवचन कह रही हो। यह कहना सरल है किंतु जानना कठिन है। यहां तो तुम किसी को कुछ भी कह सकती थी व रो भी सकती थी। मैं तुम्हें हर रूप में अपना साथी समझता रहा। यदि मैं तपोभ्रष्ट हूं तो तुम मुझे विदा देकर सुख से रहो। तभी उर्मिला के मुख से स्वामी का नाम निकलने वाला होता है तो सखी रोक देती है। तब उर्मिला पूछती है कि उर्मिला किधर है?

विशेष

1. नाटकीय सौंदर्य है।
2. विवश लक्-में लक्ष्मण के नाम का अधूरा व भ्रामक प्रयोग है, लक्ष्मण अथवा व्यंजना की शिथिलता।
3. यहां स्वप्न में उर्मिला लक्ष्मण के माध्यम से अपनी ही भर्त्सना करती है।

सिर-माथे तेरा वह दान,
हे मेरे प्रेरक भगवान!
अब क्या मांगूं भला और मैं फैलाकर ये हाथ?
मुझे भूलकर ही विभु-वन में विचरें मेरे नाथ।
मुझे न भूले उनका ध्यान,
हे मेरे प्रेरक भगवान!
डूबी बची लक्ष्मी पानी में, सती आग में पैठ,
जिये ऊर्मिला, करे प्रतीक्षा, सहे सभी घर बैठ।
विधि से चलता रहे विधान,
हे मेरे प्रेरक भगवान!
दहन दिया तो भला सहन क्या होगा मुझे अदेय?
प्रभु की हो इच्छा पूरी हो, जिसमें सबका श्रेय।
यही रुदन है मेरा गान,
हे मेरे प्रेरक भगवान!''

प्रसंग– उर्मिला भगवान से यह मांगती है कि वे दोनों पति-पत्नी अपने अपने कर्तव्य का पालन करें और वह अपने प्रिय की प्रतीक्षा करती रहे।

व्याख्या– वह कहती है कि यह विरह एक दान के समान है जो ईश्वर से मुझे मिला है अब और कुछ नहीं चाहिए बस लक्ष्मण मुझे भुलाकर अपने कर्म का पालन करें और मैं कभी भी उनको न भूलूं। जैसे लक्ष्मी जी व पार्वती जी ने क्रमशः जल व अग्नि में जाकर अपनी-अपनी रक्षा की थी, वैसे ही मैं जीवित रहकर अपने प्रिय की प्रतीक्षा करूं। विरह-अग्नि को सहन कर सकूं यह रोना ही मेरा गाना है। मेरे प्रिय की इच्छा पूर्ण हो इसी में सबका हित है कल्याण है।

विशेष

1. ईश्वर पर पूर्ण आस्था का चित्रण है।
2. दुख में भी सुख और विश्व कल्याण की भावना का वर्णन किया गया है।
3. भाव में गीतात्मकता और लय है।

गतिविधि

भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविता 'प्रबोधिनी' व मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'भारत-भारती' का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इनके काव्य की समानताओं व विभिन्नताओं पर एक निबंध लिखिए।

क्या आप जानते हैं?

मध्यप्रदेश में राज्य शासन द्वारा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की जयंती प्रतिवर्ष तीन अगस्त को कलि दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया है।

3.6 सारांश

'साकेत' महाकाव्य द्वादश सर्गों में बांटा गया है। नवम् एकादश तथा द्वादश सर्ग बाकी सर्गों से बड़े हैं। प्रत्येक सर्ग का जब अंत लिखा गया है तब उसमें आने वाले सर्ग के कथानक का संकेत दिया गया है। जिस प्रकार पहले सर्ग के अंत में कवि ने लिखा है 'विदा विशेष हुए दंपती फिर अनिमेष', जिसका अर्थ है कि सुख की रात्रि बीतने पर उन दोनों को अलग होना है। 'साकेत' का नवम् सर्ग कुछ अलग सा है यदि इस सर्ग को निकाल भी दिया जाए तो कथा के अर्थ, प्रबंध में कोई बाधा नहीं आएगी।

साकेत की परम महत्वपूर्ण घटना उर्मिला का वियोग है। उर्मिला ही एक मात्र पात्र है जो कि सबसे निरीह है। उर्मिला के दुख से पाठक गण भी अछूते नहीं रह पाते हैं वे भी आंसुओं से भीग जाते हैं। गुप्त जी ने इस काव्य में जिस राम का चित्रण किया है वह अवतार होते हुए भी लौकिक है। गुप्त जी ने दो प्रकार के पात्र बताएं हैं- आदर्श तथा साधारण। गुप्त जी के राम धरती को ही स्वर्ग बनाने आए हैं। गुप्त जी की शैली विलक्षण है। चरित्र चित्रण के लिए कवि ने कथनोपकथन, गीत आदि का प्रयोग किया है। दो पात्रों को वे सामने लाते हैं जैसे प्रथम सर्ग में लक्ष्मण उर्मिला, दूसरे सर्ग में कैकेयी मंथरा व तीसरे सर्ग में राम लक्ष्मण आदि। सभी पात्र सजीव व पुष्ट हैं।

साकेत के नवम् सर्ग में उर्मिला की विरह गाथा कही गई है। किस प्रकार लक्ष्मण के वन जाने पर उर्मिला एक वियोगिनी की भाँति रहती है कभी वह उन्मादी हो जाती है व कभी सबको दुख सहने को कहती है। कभी अपना ज्ञान खो बैठती है व कभी सबको कर्तव्य बोध कराती है। वह अपनी निद्रा से भी विनती करती है कि उसके पास वह आ जाए क्योंकि उर्मिला तो अपने प्रिय के विरह में सो भी नहीं पाती है। विभिन्न ऋतुएं भी उसे चिढ़ाती हैं, उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।

भाषा, शब्द से भरपूर सुंदर काव्य की रचना गुप्त जी ने की है। लक्षण, अलंकार, छंद आदि का सटीक, भावपूर्ण प्रयोग मैथिलीशरण गुप्त जी ने किया है। मुहावरों व लोकोक्तियों के प्रयोग से काव्य में मार्मिकता आ गई है। तुकबंदी का भी सफल प्रयोग किया है। गुप्त जी की शब्द व्यंजना शक्तिशाली है। रीति व गुण की दृष्टि से भी गुप्त जी का काव्य शक्तिशाली है। काव्य भाषा की दृष्टि से साकेत अपनी हर कसौटी पर खरा उतरा है।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **आत्मज्ञान** : आत्मा का ज्ञान
- **रुदन्ती** : रोती हुई स्त्री, एक प्रकार की वनस्पति
- **अलोना-सलोना** : बिना नमक व नमक वाला भोजन
- **साल रही** : दुखी कर रही
- **प्रोषितपतिका** : वह नायिका जिसका पति विदेश गया हो
- **वणिग्वृत्ति** : व्यापारी जैसी वृत्ति

3.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. भारत भारती।
2. बीसवीं शती और द्विवेदी युग का।
3. महावीर प्रसाद द्विवेदी का।
4. 'विष्णु प्रिया' में।
5. द्वादश सर्गों में।
6. खड़ी बोली।
7. मम्मटाचार्य जी ने।
8. वृत्तियों से काव्य में रस, लालित्य आ जाता है।
9. कोमल वृत्ति के।
10. तीन प्रकार की-वैदर्भी, पांचाली व गौड़ी।
11. तीन प्रकार के-ओज, माधुर्य व प्रसाद।
12. तिरंग रूपक अलंकार।

13. रूपकातिशयोक्ति का।
14. 'सुमेरु' छंद का।
15. 'एकादश सर्ग' में।
16. उर्मिला का वियोग।
17. 'चित्रकूट' में।
18. 'रामचरितमानस' व वाल्मीकि रामायण।
19. प्रिय की याद को।
20. उर्मिला के द्वारा।

3.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. गुप्त जी के काव्य 'भारत-भारती' का क्या उद्देश्य था?
2. गुप्त जी के काव्य में लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक प्रयोगों को स्पष्ट कीजिए।
3. रीतियां और गुण किसे कहते हैं? बताइए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. गुप्त जी की स्त्री चेतना का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. साकेत के नवम् सर्ग के आधार पर गुप्त जी की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. उर्मिला ने अपने विरह के चौदह वर्ष किस प्रकार व्यतीत किए?
4. उर्मिला के चरित्र से क्या प्रेरणा मिलती है?
5. सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

(क) "स्वामी-सहित सीता ने.....
अश्रु-सलिल से समस्त धो डाला।"

(ख) "मानस-मंदिर में सती.....
छूट गया पीछे स्वयं उससे आत्मज्ञान।"

(ग) "प्रिय ने सहज गुणों से.....
आज प्रतीक्षा-द्वारा लेते हैं वे यहां परीक्षा में

3.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. नंदकिशोर नवल *मैथिलीशरण*, हिंदी बुक सैंटर
2. सुभद्रा *साकेत का शैली विषयक अध्ययन*, हिंदी बुक सैंटर
3. ऋचा मिश्र *साकेत समीक्षा*, हिंदी बुक सैंटर

जयशंकर प्रसाद हिंदी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। इनका ज 30 जनवरी सन् 1889 को वाराणसी में हुआ। आधुनिक हिंदी साहित्य में इनके कृतित्व व गौरव अक्षुण्ण है। प्रसाद जी एक युग प्रवर्तक लेखक थे। इन्होंने कविता के साथ-साथ नाटक कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिंदी को गौरव प्रदान करने वाली अनेक कृतिया दीं। कवि के रूप में वे निराला, पंत व महादेवी के साथ छायावाद के प्रवर्तक रहे वहीं नाट्य लेख में उन्होंने भारतेंदु के बाद एक अलग धारा प्रवाहित की। इनकी रचना 'कामायनी' पर इन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ था। प्रसाद जी ने अपने जीवन में साहित्य को कभी भी अर्जन का माध्यम नहीं बनाया, अपितु एक साधना के रूप में साहित्य की रचना करते रहे।

प्रसाद की काव्य रचनाएं दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं– 1. काव्यपथ अनुसंधान की रचनाएं, और 2. रससिद्ध रचनाएं। 'आंसू', 'लहर' तथा कामायनी दूसरे वर्ग की रचनाएं हैं। काव्य के क्षेत्र में प्रसाद जी की कीर्ति का मूल आधार उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'कामायनी' है। खड़ी बोली का यह महाकाव्य मनु और श्रद्धा को आधार बनाकर रचित मानवता को विजयिनी बनाने का संदेश देता है। यह रचना छायावाद और खड़ी बोली की काव्यगरिमा का एक ज्वलंत उदाहरण है।

प्रसाद जी ने तीन उपन्यास लिखे–'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती'। नाटक के क्षेत्र में प्रसाद जी ने कुल तेरह नाटकों की सर्जना की जिनमें आठ ऐतिहासिक, तीन पौराणिक और दो भावात्मक नाटक हैं। 14 जनवरी सन् 1937 को प्रसाद जी का निधन हो गया।

प्रसाद ने कामायनी के श्रद्धा सर्ग में महाजलप्लावन के पश्चात का वर्णन किया है। इस महाप्रलय के उपरांत मनु व्यथित होकर सृष्टि के विनाश को देखकर चिंतामग्न हो गए

और एक पर्वतशिला पर निराश होकर बैठे थे कि अचानक श्रद्धा उनके एकाकी जीवन में एक नवचेतना बनकर प्रविष्ट होती है और मनु के हृदय में जीवन के प्रति नवचेतना लाने का सुंदर प्रयास करती है। वह वस्तुतः महाप्रलय के पश्चात पुनः मानव जीवन का विकास प्रस्तुत करती है। श्रद्धा मनु के निराश जीवन में आशा की किरण जगाती है और प्रेरणा देती है कि जीवन निरंतर चलने का नाम है रुकने का नहीं। प्रस्तुत इकाई में हम जयशंकर प्रसाद व उनके काव्य का अध्ययन करेंगे।

4.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- छायावादी काव्य मूल्य और जयशंकर प्रसाद के काव्य का अध्ययन कर पाएंगे;
- प्रसाद के काव्य में प्रस्तुत राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना का तुलनात्मक वर्णन कर पाएंगे;
- कामायनी के महाकाव्यत्व का विस्तारपूर्वक विश्लेषण कर पाएंगे;
- कामायनी की प्रतीक योजना की विवेचना कर पाएंगे;
- कामायनी के 'श्रद्धा सर्ग' की भावाभिव्यंजना से अवगत हो पाएंगे।

4.2 छायावादी काव्य मूल्य और जयशंकर प्रसाद

छायावाद अपने युग की अत्यंत व्यापक प्रवृत्ति रही है। द्विवेदी युग के पश्चात हिंदी साहित्य में जो काव्य-धारा प्रवाहित हुई वह छायावादी काव्य के नाम से जानी जाती है। सन् 1917 से 1936 तक की समयावधि को छायावाद की कालावधि माना गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल छायावाद को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि– "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहां उसका संबंध काव्य वस्तु से होता है अर्थात जहां कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है। ....छायावाद एक शैली विशेष है, जो लाक्षणिक प्रयोगों, अप्रस्तुत विधानों और अमूर्त उपमानों को लेकर चलती है।" दूसरे अर्थों में उन्होंने छायावाद को चित्र-भाषा-शैली कहा है। महादेवी वर्मा ने छायावाद का मूल सर्वात्मवाद दर्शन में माना है। जयशंकर प्रसाद छायावाद को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि–"कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुंदरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।

हिंदी की कल्पनाशील स्वच्छंदतावादी काव्यधारा को छायावाद के नाम से जाना जाता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार रीतिकाल की रूढ़ियों को तोड़कर सर्वप्रथम स्वच्छंदता का आभास श्रीधर पाठक ने किया था। हिंदी में 'रोमैंटिसिज्म' के लिए 'स्वच्छंदतावाद' शब्द आ जाने के बाद छायावादी कविता को आरंभिक स्वच्छंद काव्यधारा से ही नहीं, बल्कि उसकी परवर्ती परंपरा से भी अलग करके दिखाने की रीति चल पड़ी। छायावाद का आरंभ किस

कवि की रचना से माना जाए। यह एक विवादास्पद प्रश्न है। परंतु सुमित्रानंदन पंत ने अपनी पुस्तक 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन' में इस विषय पर विस्तारपूर्वक विचार किया। उन्होंने प्रसाद को आदर भाव के साथ छायावाद का प्रवर्तक माना। वस्तुतः अगर विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि छायावाद और जयशंकर प्रसाद एक ही तथ्य (सिक्के) के दो पहलू हैं क्योंकि छायावादी काव्य मूल्य जयशंकर प्रसाद के काव्य में पूर्ण रूप से प्रस्तुत होते हैं। प्रसाद का काव्य छायावाद के प्रत्येक मूल्य को अपने अंतस में समाहित करता है। छायावादी काव्य मूल्य के आधार पर जयशंकर प्रसाद के काव्य को निम्न प्रकार (मूल्यों) से समझा जा सकता है–

• छायावादी काव्य का केंद्रीय मूल्य 'स्वातंत्र्य'

छायावादी काव्य का केंद्रीय मूल्य 'स्वातंत्र्य' ही है। छायावादी काव्य में आत्ममुक्ति की धारणा निम्न होकर भाव-मुक्ति तथा लोक-मुक्ति की संभावना अनेक मूल्यों, विचारों तथा भावनाओं का रूप धारण कर उनकी वाणी के माध्यम से स्वप्न मूर्त होने का प्रयत्न कर रही थी। प्रसाद के काव्य में वैयक्तिकता का यह आग्रह प्रसाद के काव्य में आत्म संकोच और आत्म-केंद्रीकरण की प्रवृत्ति को पैदा नहीं करता अपितु आत्मप्रसार की प्रेरणा देता है–

इस पथ का उद्देश्य नहीं है, श्रान्त भवन में टिक रहना।
किंतु पहुंचना उसके आगे जिसके आगे राह नहीं है।।

कामायनी के मनु का कथन–

'वन गुहा-कुंज, मरु अंचल में हूं खोज रहा अपना विकास'

आत्मप्रसार की इच्छा की अभिव्यक्ति करता है। प्रसाद और छायावाद के काव्य मूल्य व्यक्ति स्वातंत्र्य के मूल्य पर केंद्रित एक नई वैयक्तिकता के उदय की सूचना प्रदान करते हैं।

विषयनिष्ठता की प्रधानता

छायावादी काव्य में वैयक्तिकता की प्रधानता के कारण विषय के स्थान पर 'विषय की प्रधानता' बनी हुई है। इसी कारण छायावाद को स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह कहा जाता है। छायावादी काव्य में विषय निष्ठता को केंद्रित करते हुए सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने पुष्करिणी की भूमिका में लिखा है कि– "विषयी प्रधान दृष्टि ही छायावादी काव्य की प्राणशक्ति है।" छायावादी काव्य की यही व्याकुलता प्रसाद के काव्य में विविध रूपों को प्रस्तुत हुई। प्रसाद के प्रकृति चित्रण में इसी विषयनिष्ठता के प्रतिफलन को पूर्णरूप से देखा जा सकता है जिसमें जड़ प्रकृति पर चेतना के आरोप को ही नहीं अपितु मानकीकरण की व्यापक प्रवृत्ति को भी देखा जा सकता है। प्रसाद के काव्य में प्रकृति के ही नहीं बल्कि प्रत्येक वस्तु के गहरे भाव संकलित रूप में चित्रित हुए हैं। प्रसाद के पात्रों मनु, श्रद्धा, इड़ा जैसे पौराणिक व्यक्तियों के चरित्रों में मनोविकारों के रूप चित्रित किए गए हैं–

"आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम बीच
जब घिरते हो घनश्याम।
अरुण रवि मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम।।"

काव्य-सृजन में प्रसार ने पीड़ा के तत्व को सर्वत्र प्रस्तुत किया है। यथा–

"इस करुणा कलित हृदय में अब विकल रागिनी है बजती।
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती।।"

कल्पनाशीलता की अनुभूति

वैयक्तिकता का एक पहलू यदि अनुभूति की प्रधानता है तो दूसरा कल्पानाशील। प्रसाद के काव्य में कल्पना की उड़ान अभूतपूर्व है। उनका काव्य कामायनी पूर्ण रूप से कल्पना को आधार बनाकर लिखा गया है।

उदाहरणतः

"नखत की आशा किरण समान
हृदय के कोमल कवि की कांत।
कल्पना की लघु लहरी दिव्स
कर रही मानस हलचल शांत।।"

वेदना की परिणति

छायावादी काव्य का मुख्य केंद्रीय मूल्य वैयक्तिकता है और वैयक्तिकता की पूर्ण परिणति वेदना में ही होती है। प्रसाद का काव्य 'आंसू' उनके काव्य का शीर्षक ही नहीं अपितु उनके काव्य की आत्मा भी है। वेदना की पराकाष्ठा को 'आंसू' के माध्यम से निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

"जो घनीभूत पीड़ा थी,
मस्तक में स्मृति सी छायी।
दुर्दिन में आंसू बनकर,
वह आज बरसने आई।।"

अपने काव्य में चारों तरफ वेदना के तत्व को बिखेरने के बाद काव्य में वे (प्रसाद) आनंदवाद की प्रतिष्ठा भी करते हैं–

"सृष्टि हंसने लगी, आंखों में खिला अनुराग।
राग रंजित चंद्रिका थी, जड़ा सुमन पराग।।
और हंसता था अतिथि, मनु का पकड़ हाथ।
चले दोनों, स्वप्न पथ में, स्नेह संबल साथ।।"

प्रेम तत्व की अनुभूति

आधुनिक काल की सबसे सशक्त प्रेम कविता छायावाद को कहा जाता है। प्रसाद ने अपने काव्य में जीवन के सभी क्रिया-कलापों व समस्याओं का वर्णन करते हुए 'प्रेम तत्व' को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। अपने काव्य में प्रसाद ने वैयक्तिगत प्रेम के सभी मनोभावों का सूक्ष्म रूप से चित्रण तो किया साथ ही प्रेम तत्व को उदात्त रूप प्रदान करते हुए उसे स्वतंत्र रूप से काव्य का विषय बना दिया। प्रसाद के काव्य में प्रेम तत्व गंभीर जीवन दर्शन के रूप में प्रकट हुआ है–

समर्पण लो सेवा का सार,
सजल संस्कृति का यह पतवार।
आज से यह जीवन उत्सर्ग,
इसी पद तल में विगत विकार।।

सौंदर्य बोध

सौंदर्य बोध को कविता की सामान्य विशेषता माना जाता है। छायावादी काव्य का सौंदर्य अपनी सामान्यता के कारण नहीं अपितु अपनी विशिष्टता के कारण पाठक वर्ग का ध्यान आकर्षित करता है। प्रसाद ने अपने काव्य में प्रकृति सौंदर्य के साथ मानवीय सौंदर्य का भी वर्णन किया। प्रसाद का सौंदर्य जहां एक ओर स्वप्नलोक के कुहासे से घिरा है वहीं दूसरी ओर उसमें चेतना की उज्ज्वलता प्रकट होती है। प्रसाद के काव्य में सौंदर्य का बोध रहस्यमय रूप में प्रकट होता है–

"नील परिधान बीच सुकुमार,
खिल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ बन बीच गुलाबी रंग।।"

रहस्यवाद

छायावादी काव्य में रहस्यवाद का संप्रेषण अत्यधिक मात्रा में हुआ। प्रसाद के काव्य में रहस्यवाद का प्रयोग इतनी सुंदरता के साथ हुआ है कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानो वह एक रहस्यवादी कवि हो। यथा–

"शशि मुख पर घूंघट डाले,
अंचल में ज्यों दीप छिपाए।
जीवन की गोधूलि में,
कौतूहल से तुम आये।।"

विश्वमानवतावाद, राष्ट्रीय चेतना तथा लोक मंगल और मानव करुणा

छायावादी काव्य के अंतर्गत राष्ट्रीय चेतना का रूप तो पाया जाता है परंतु उसमें 'अंध राष्ट्रवाद' नहीं है। प्रसाद के काव्य में भी राष्ट्रीयता का तत्व पुष्ट हुआ है। प्रसाद ने 'कामायनी' का सृजन विश्व मानवता की भावना के साथ किया। यथा–

"शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय।
समन्वय उसका करें समस्त
विजयिनी मानवता हो जाए।।"

छायावादी काव्य में राष्ट्रवाद के स्वर मुखर होते हैं। प्रसाद के काव्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर गूंजते नजर आते हैं–

"हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयं प्रभा समुज्जवला स्वतंत्रता पुकारती।।"

सांस्कृतिक गरिमा

छायावादी कविता प्राचीन रूढ़ियों के विरुद्ध एक प्रखर व बुलंद आवाज है। परंतु इन सबके बावजूद समकालीन नवजागरण की चेतना के अनुरूप छायावाद ने अपनी सांस्कृतिक परंपरा के पुनरुत्थान की ओर भी पूर्ण ध्यान दिया। प्रसाद ने अपनी विरासत को ग्रहण किया और उनकी पौराणिक कथाओं में समकालीन आशय और पौराणिक अर्थव्यंजनाओं में 'श्रद्धा' और 'मनु' जैसे पौराणिक पात्र वर्तमान समय की समस्याओं, इच्छाओं और समाधानों से युक्त है।

प्रसाद जी के काव्य में कहीं भी भाव-स्थूलता का वर्णन नहीं है। इनका काव्य अनुभूति का सूक्ष्म वर्णन है। वे स्वच्छंदतावादी भी थे। जब प्रसाद जी ने "ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-धीरे" लिखा तब उनके ऊपर पलायनवादी होने का आरोप लगाया गया। प्रसाद जी की राष्ट्रीय गरीमा का स्वर प्रच्छन्न है, कोमल है, सौम्य है, सूक्ष्म है। इनके काव्य में प्रयुक्त राष्ट्रीय जागरण ने सांस्कृतिक गरिमा का रूप धारण कर लिया। इनकी सांस्कृतिक गरीमा की अभिव्यक्ति 'प्रथम प्रभात', 'अब जागो जीवन के प्रभात', 'बीती विभावरी जाग री' आदि रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। प्रसाद की राष्ट्रीय गरिमा की अभिव्यक्ति शैली अभिधात्मक नहीं है बल्कि यह व्यंजना शब्दशक्ति पर आधारित है। यह स्वच्छंदतावाद की मूल चेतना से अभिन्न है–

"अब जागो जीवन के प्रभात।
वसुधा पर ओस बने बिखरे
हिमकन आंसु जो क्षोभ भरे
ऊषा बटोरती अरुण गात।"

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्रसाद का काव्य सृजन एक नवीन जीवन मूल्यों की खोज में था। उनका संपूर्ण काव्य छायावादी मूल्यों 'काव्य उदात्त कल्पना वैभव', 'मौलिक सौंदर्य-बोध', 'प्रकृति चित्रण तथा लाक्षणिक प्रयोग द्वारा शब्द शक्ति की संप्रेषणीयता, 'नवीन छंदों की उन्मुक्त स्वर-लय-झंकृति' आदि मूल्यों को अपने काव्य में प्रस्तुत कर अभूतपूर्व काव्य ऐश्वर्य का प्रतीक बन गया। यहां तक कि छायावाद और जयशंकर प्रसाद दोनों एकाकार हो गए।

4.3 प्रसाद के काव्य में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना

जयशंकर प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक कहा जाता है। छायावाद को नवजागरण की अभिव्यक्ति कहा जाता है। इस नवजागरण के पीछे, जो चेतना सक्रिय थी वह थी– 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना'। भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में छायावाद का मूल उत्स समाहित है। जब लोगों के मन-मस्तिष्क में दासता के खिलाफ संघर्ष के भाव मुखरित हुए तब उनमें स्वाधीनता की चेतना जगी। इसी चेतना का परिणाम रहा-कल्पना पर अधिक बल। दृष्टव्य है कि हिंदी कविता में छायावाद और भारतीय राजीनीतिक मंच पर महात्मा गांधी जी का आगमन लगभग

एक साथ हुआ। इसी संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र कहते हैं कि–"जिन परिस्थितियों ने हमारे दर्शन और कर्म को हिंसा की ओर प्रेरित किया, उन्होंने ही भाव-वृत्ति को छायावाद की ओर।"

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने 'हिंदुस्तान की कहानी' में कहा था– "राष्ट्रीयता एक गहरा और मजबूत आदर्श है।" मैजिनी ने राष्ट्रीयता के तीन प्रधान स्तंभ माने हैं–'शिक्षा, स्वदेशी और स्वराज्य'। जो राष्ट्र का हित होता है वही व्यक्ति का भी हित होता है। स्वदेशी, स्वराज्य और राष्ट्रहित की भावना ही राष्ट्रीयता कहलाती है। ई.एस. रॉय ने "प्रिंसिपल्स ऑफ सोशियोलॉजी" में कहा है कि– "किसी भी राष्ट्र के चरित्र में अधः पतन के सबसे प्रबल कारणों में से एक कारण उस राष्ट्र का किसी विदेशी शासन के अधीन हो जाना है।"

विभिन्न विद्वानों व चिंतकों ने समय-समय पर राष्ट्रीयता की चेतना को जगाने में अपना अमूल्य योगदान दिया। जयशंकर प्रसाद जी ने भी अपनी रचनाओं में राष्ट्रीयता की भावना को चित्रित किया है। इनके काव्य में नवीन भावबोध के साथ स्वाधीनता की चेतना, लाक्षणिकता, सूक्ष्म कल्पना, नया सौंदर्य बोध, नए प्रकार का सादृश्य-विधान आदि के दर्शन होते हैं। छायावादी काव्य में राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक जागरण के रूप में प्रस्तुत होता है। नंददुलारे वाजपेयी जी ने आधुनिक साहित्य में कहा है कि– "केवल राष्ट्रीयता की भावना देश और समाज के सांस्कृतिक जीवन के बहुमुखी पहलुओं का स्पर्श नहीं करती और एक बड़ी सीमा तक एकांगी बनी रहती है। ... नवयुग के कवियों ने इस तथ्य को समझ लिया था और इसीलिए उनकी रचनाएं 'राष्ट्रीय' न रहकर अधिक राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भूमियों पर पहुंची थीं।"

प्रसाद जी ने अपने काव्य के माध्यम से परतंत्र देशवासियों में नवजागरण का शंख फूंका। 'लहर' में संकलित लंबी कविता– 'अशोक की चिंता', 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि', तथा 'प्रलय की छाया' में नवजागरण के संकेत प्राप्त होते हैं। आलोचक नामवर सिंह का कथन है कि– "यह 1930 के भारत में राजनैतिक पराभव या पराजन की भावना की अभिव्यक्ति है।" 'प्रलय की छाया' कविता का राजनीतिक अर्थ स्वाधीनता संग्राम के एक विशेष दौर की मनोदशा से संबद्ध है। 'अशोक की चिंता' और 'अरी ओ करुणा की शांत कछार' में भी कवि प्रसाद ने राष्ट्र के प्रति गर्व व गौरव की भावना को अंकित किया है। नरसंहार के बाद हुए अशोक के हृदय परिवर्तन और बौद्ध-धर्म ग्रहण करने के माध्यम से कवि बताना चाहता है कि राजा का धर्म है प्रजा की सेवा करना। शांति का संदेश देते हुए कवि कहता है कि– 'विजय लोहे की नहीं होती, विजय आत्मा की होती है।' और वह प्रेम, शांति और मानवता से ही संभव है।' इस कविता के माध्यम से कवि राष्ट्रीय एकता का संदेश भी देता है।

प्रसाद जी की राष्ट्रीयता संकुचित नहीं है। यह देश की सीमा से बंधी नहीं है अपितु यह विश्व राष्ट्रीयता है। इसमें विश्व के कल्याण की कामना की गई है। यथा–

"बीती विभावरी जाग री।
....
तू अब तक सोई है आली
आंखों में भरे विहाग री।।"

उपरोक्त पंक्तियों के माध्यम से कवि प्रसाद राष्ट्र को जाग्रत करने का संदेश देते हैं। नन्ददुलारे वाजपेयी का कहना है, "बीती विभावरी जाग री" शीर्षक जागरण गीत प्रसाद के संपूर्ण काव्य-प्रयास के साथ उनकी युवा-चेतना का परिचायक प्रतिनिधि गीत कहा जा सकता है।" इन नाटकों के गीतों, 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' और हिमाद्रि तुंग शृंग से' में भी राष्ट्रीय चेतना अपने स्थूल रूप में प्राप्त होती है। अपने नाटकों के द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय चेतना का प्रसार किया। प्रसाद जी कामायनी में एक स्थान पर कहते हैं कि–

"इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना,
किंतु पहुंचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।"

प्रसाद जी की रचना कामायनी संकुचित राष्ट्रवाद की भावना से ऊपर उठकर विश्वमंगल वाली रचना है। यह रचना संपूर्ण मानवजाति की समरूपता का सिद्धांत अपनाकर आनंद लोक की यात्रा का संदेश देती है–

"समरस थे जड़ और चेतन
सुंदर आकार बना था
चेतना एक विलसती
आनंद अखंड घना था।"

या

"विश्व भर सौरभ से भर जाए
सुमन के खेलो सुंदर खेल।"

प्रसाद की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का विश्वमंगल की भावना से विरोध नहीं था। वे तो सिर्फ उत्पीड़न के विरोधी थे, द्वंद्वों से क्षुब्ध थे, विषमता रहित समाज की स्थापना करना उनका मुख्य उद्देश्य था। अपनी कविता 'चित्राधार' में तो कवि प्रसाद यहां तक कहने का साहस कर गए कि– 'उस ब्रह्म को लेकर मैं क्या करूंगा जो साधारण जन की पीड़ा नहीं हरता।' कवि की रचना 'आंसू' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकन-सा
आंसू इस विश्व-सदन में।"

वैसे तो 'आंसू' कविता में अत्यंत पीड़ा अभिव्यक्ति पाती है लेकिन वही अभिव्यक्ति अपनी व्यक्तिगत पीड़ा से व्यापक कल्याण की भावना में बदलने लगती है। यथा–

"चिरदग्ध दुखी यह वसुधा
आलोक मांगती तब भी।"

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि प्रसाद जी का काव्य राष्ट्रीय व सांस्कृतिक चेतना का काव्य है। ये स्वाधीन चेतना के बल पर नई मानव परिकल्पना को स्थापित करने में सक्षम हैं। यह नई संबंध भावना का संकेत है। इनके काव्य में राष्ट्रीयता का भाव संकुचित नहीं है, बल्कि विश्वमंगल की कामना से परिपूर्ण है।

"शक्तिशाली हो, विजयी बनो
विश्व में गूंज रहा यह गान।"

4.4 कामायनी का महाकाव्यत्व

जीवन के प्रति अनुराग, यौवन का मस्ती भरा अहसास तथा अतीत के प्रेम की न मिटने वाली छवि ने ही महाकवि जयशंकर प्रसाद से 'कामायनी' कालजयी कृति की रचना करवाई। जब हम इस महाकाव्य का गहराई से मंथन करते हैं तो इसमें आशा-निराशा, सुख-दुख संध्या प्रातः और प्रकृति तथा प्रेम के बहुत मनोहारी रोमांचकारी चित्रण देखने को मिलते हैं। यह महाकाव्य प्रसाद की अंतिम और उत्कृष्ट रचना है। इसमें दो विपरीत स्थितियों को बहुत ही सुंदर ढंग से दिखाने का प्रयास किया गया है, एक ओर तो प्रलय लाने वाले सागर की गर्जना है तो दूसरी ओर ऊषा की अरुणिमा का मनोहारी हृदय।

डॉ. शिव कुमार का कथन है-

> "'कामायनी' आज के युग के लिए उस अमर वरदान की भांति है जिसे पाने के लिए भक्त अपने भगवान के चरणों में सदा के लिए तिरोहित हो जाता है। "

प्राचीन काल में जो प्रलय आई थी, पूरी सृष्टि ही उस प्रलय में समाप्त हो गयी। 'कामायनी' उसी वैदिक कालीन प्रलय गाथा पर आधारित है। यह काव्य केवल हिंदी साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में एक जगमगाता नक्षत्र है। कामायनी आधुनिक युग का महाकाव्य है इसमें प्रसाद ने अतीत को आधार बनाकर वर्तमान के संदर्भों को सुलझाने का प्रयास किया है। कामायनी पर विचार करते हुए डॉ. कन्हैया लाल सहल ने लिखा है-

> "कामायनी के पहले हिंदी साहित्य में 'प्रिय प्रवास' और 'साकेत' नामक महाकाव्यों की सृष्टि हो चुकी थी, किंतु साकेत एवं प्रिय प्रवास में नवीनता होते हुए भी नवीन युग का वास्तविक रूप से पूर्ण स्फुरण नहीं है। केवल कामायनी ही एक ऐसा महाकाव्य है जिसे नूतन युग का प्रतिनिधि माना जा सकता है।"
>
> "प्रसाद जी की सर्वश्रेष्ठ रचना 'कामायनी' मानी जाती है। यह एक प्रबंध-काव्य है, जिसमें आदि पुरुष मनु की जीवन-गाथा वर्णित है। इसका कथानक अत्यंत संक्षिप्त सा है, उसमें बहुत थोड़ी घटनाओं का समावेश है, मनु और श्रद्धा के मिलन और वियोग, पुनर्मिलन जैसी वृत्त साधारण सी घटनाओं में कामायनी का सारा इतिवृत सिमटा हुआ है।"

कामायनी विचारों की दृष्टि से महान है। शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार अधिकांश लक्षण कामायनी में मिलते हैं और शेष लक्षण जो कामायनी में नहीं मिलते उसका एक यही कारण है कि कामायनी महाकाव्य के लक्षणों पर नहीं लिखा गया है। परंपरागत महाकाव्य का लक्षण लिखने वालों में भामह ने सर्गबद्ध रचना को महाकाव्य कहा है, (काव्यालंकार) दंडी - सर्गबद्धता, चतुर्वर्ग प्राप्ति, चतुर उदात्त नायक, नगर, समुद्र-पर्वत, चंद्रोदय आदि का प्राकृतिक वर्णन को महाकाव्य में आवश्य मानते हैं। विश्वनाथ ने सहित्य दर्पण में महाकाव्य का विस्तार से विवेचन किया है।

सर्गबद्धं महाकाव्य तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रिया वापि धीरोदात्त गुणन्वितः।।
एक वंशभवा भूपाः कुलजा बहवो पि वा।

शृंगारवीरशान्तानामेकोऽगीरस इष्यते।।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।।

अर्थात, महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए। इसमें एक नायक हो जो देवतावंश, क्षत्रिय वंश धीरोदात्त गुणों से परिपूर्ण हो। अनेक नायक जो एक वंशीय राज्यकुल में उत्पन्न हुए हों भी हो सकते हैं। वीर हो या शृंगार या फिर शांत इनमें से किसी एक रस का अंगीरस हो। अन्य सभी रसों का वर्णन अंगरूप में होना चाहिए। सारी नाटक संधियां हों। कथा ऐसी हो जो इतिहास में प्रसिद्ध हो तथा अन्य सज्जन के आश्रित हों। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों में किसी एक वर्ग पर आधारित हो। शुरुआत मंगलाचरण से हो व अंत में आशीर्वाद हो। कहीं पर खल निंदा हो कहीं अच्छे पुरुषों की प्रशंसा हो, एक सर्ग में एक ही छंद हो तथा सर्ग की समाप्ति पर छंद परिवर्तन होना आवश्यक है। सर्ग न बहुत छोटे होने चाहिए न बहुत लंबे होने चाहिए। किसी सर्ग में अनेक कथा वस्तुएं हो और सर्ग के अंत में अगले सर्ग की कथा की सूचना होना आवश्यक है। संध्या, सूर्योदय, चंद्रोदय, प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल, शिकार, पर्वत वन, सागर, संयोग, वियोग, स्वर्ग, मृत्यु, जन्म, रणयात्रा, पुत्र प्राप्ति आदि का वर्णन होना चाहिए। कवि, कथा वस्तु या नायक के नाम पर महाकाव्य का नामकरण होना चाहिए।

कामायनी के कथानक का निर्माण मनु को केंद्र में रखकर किया गया है जो इतिहास में प्रसिद्ध राजर्षि है। कामायनी का कथानक निश्चित रूप से ऐतिहासिक ही माना जाता है। प्रसाद ने स्वयं लिखा है–

> "आर्य साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराणों और इतिहासों में बिखरा हुआ मिलता है। श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की कथा को रूपक के आवरण में, चाहे पिछले काल में मान लेने का वैसा ही प्रयत्न हुआ हो, जैसा कि सभी वैदिक इतिहास के साथ निरुक्त के द्वारा किया गया, किंतु मन्वन्तर के अर्थात मानवता के नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गयी है: इसलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष ही मानना उचित है।"

मनु और श्रद्धा की छान्दोग्य उपनिषद् में भावमूलक व्याख्या इस प्रकार मिलती है-

"यदा वै श्रद्दधाति अथ मनुते ना श्रद्दधन् मनुते।"

जलप्लावन की घटना सिर्फ भारतीय इतिहास में ही नहीं मिलती अपितु यहूदी-यवनों के प्राचीन साहित्य में भी इस घटना का वर्णन मिलता है। इस घटना के आधार पर मनु-श्रद्धा का मिलन हुआ और उस मिलन के कारण मनु देवताओं से भी सुंदर और विलक्षण सृष्टि का निर्माण कर सके। 'मनवे वै प्रातः' शतपथ ब्राह्मण की पंक्ति सृष्टि रचना को प्रमाणित करती है।

श्रद्धा वाले सूक्त में सायण ने श्रद्धा का परिचय देते हुए लिखा है– **'कामगोत्रजा श्रद्धा नामार्षिका'**। अर्थात श्रद्धा कामगोत्र की बालिका थी इसीलिए उसे कामायनी भी कहा गया है। ऋग्वेद में 'इड़ा' का भी उल्लेख मिलता है जोकि मार्गदर्शिका तथा मनुष्यों पर शासन करने वाली कही गयी है। इड़ा का विवरण शतपथ ब्राह्मण में भी मिलता है।

इस विवेचना से कामायनी की कथावस्तु एवं पात्रों की ऐतिहासिकता असंदिग्ध हो जाती है। कामायनी का कथानक देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि संपूर्ण घटनाएं हिमालय एवं सारस्वत प्रदेश में ही घटी हैं।

हिमालय के सबसे ऊंचे शिखर पर बैठकर एकाकी मनु का मन चिंताओं से व्याकुल होने लगता है। बीती हुई स्मृतियां रह रह कर उनके हृदय को संवेदनाओं से भर रही थी। मनु को अब सिर्फ सहानुभूति की चाह बची है। जब प्रलय की आंधी कुछ शांत होती है तब ऐसा लगता है जैसे सिंधु की सेज पर पृथ्वी वधू बनी सकुची सी खड़ी है क्योंकि पृथ्वी में तो सब कुछ नष्ट हो चुका है और पृथ्वी में जीवन का अस्तित्व समाप्त होने के कारण वह सिमटी सी लगती है। मनु पृथ्वी पर उतरकर यज्ञ करते हैं तथा यज्ञशेष जो बचता है वो किसी बचे जीवित प्राणी के पोषण की आशा में दूर छोड़ आते हैं। अंत में श्रद्धा जो काम की पुत्री है मनु के जीवन में काम व वासना के माध्यम से शांति का प्रसार व संचार करती है। लज्जामयी श्रद्धा खुद को मनु को समर्पित कर देती है। मनु संतान के लिए उत्सुक नहीं रहते क्योंकि इससे उन्हें श्रद्धा के प्रेम विभाजन की आशंका रहती है। इसी आशंका और ईर्ष्या वश मनु श्रद्धा को छोड़कर सारस्वत नगर वासिनी इड़ा से बंध जाते हैं। वहां के शासक वन में इड़ा के साथ बलात्कार करना चाहते हैं। जिसके लिए देव उन्हे दंडित करते हैं। श्रद्धा स्वप्न में यह सब कुछ देखती है और अपने पुत्र मानव को लेकर मनु को खोजती है और जब वह मनु को घायलावस्था में देखती है तो व्यथित हो जाती है। मनु श्रद्धा को देखकर भागते हैं। श्रद्धा मानव को इड़ा के पास छोड़कर मनु का पीछा करती है। अंत में मनु से मिलने के बाद वह उन्हें शिव का दर्शन कराती है। मनु जब जीवन के इस रहस्य के बारे में जानते हैं तो उन्हें आनंद की अनुभूति होती है। इसी बीच इड़ा भी मानव को लेकर मनु के पास जा पहुंचती है।

कथा मनोवैज्ञानिक है और मानवीय संवेदनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण है। नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है– "मानस का ऐसा वास्तविक विश्लेषण और काव्यमय निरूपण शायद शताब्दियों बाद हुआ है।"

कामायनी का नायक मनु है। यह स्पष्ट है कि कामायनी की कथावस्तु ऐतिहासिक एवं व्यापक है। स्वयं प्रसाद ने लिखा है–

"चेतना का सुंदर इतिहास अखिल मानव भावों का सत्य।
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य अक्षरों में अंकित हो नित्य।"

कामायनी का नायक यद्यपि वैदिक और पौराणिक कथाओं से लिया गया है पर वह किसी देश और काल तक सीमित नहीं है। मनु को विश्व महाकाव्य के नायक के रूप में प्रसाद ने सामने रखा। जो विद्रोह, विस्फोट और ज्वाला मनु के हृदय में धधक रही थी वही तूफानी तरंगें पाश्चात्य कवि शैली के प्रामेथियस अनबाउण्ड, मिल्टन के 'पैराडाइज लॉस्ट' और गेटे के 'फाउस्ट' के अंदर भी उठ रही थी। इस तरह की भूकंपी हलचल किसी भी दूसरे भारतीय काव्य के नायक में देखने को नहीं मिलती।

मनु के साथ हमारा भावनात्मक संबंध पहले से ही है। जब हम उसे पृथ्वी पर फंसा व अकेला प्राणी पाते हैं जो जल प्रलय के कारण अपनी देवविभूति खो बैठा है तब उसके

साथ हमारी भावनाएं और बढ़ जाती हैं। मनु में एक नायक होने के सभी गुण हैं सबसे पहले तो वह अमर संतान है इसके साथ ही वह धीर, बलशाली, दयावान और कोमल हृदय वाला है। वह वीर्यवान, स्वस्थ और सृष्टि का तेजस्वी आदि पुरुष है।

कामायनी का मुख्य रस शांत होकर भी शृंगार है। कामायनी की कथावस्तु की केंद्रीय भावना को ध्यान में रखते हुए यह कहना सही होगा कि इसमें विप्रलंभ शृंगार की प्रधानता है और अन्य रस जैसे वीर, करुण, आदि को सुंदर ढंग से अलंकृत कर काव्य पट को मनोहर तथा अभिराम बनाने का प्रयास किया गया है।

कामायनी को भारतीय काव्य शास्त्रीय परंपरा से कुछ अलग हट कर लिखा गया है इसमें पाश्चात्य महाकाव्यों की विशेषताओं को भी जोड़ा गया है, इसलिए कामायनी में पूर्ण रूप से हर जगह रस दिखाई नहीं देते और जो मिलते भी हैं उनमें वह अंगीरस 'भरा आनंद है' शृंगार, वीर, शांत एवं करुण रस के अंग हैं।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का कहना है- "वीर रस संभूत जो गरिमा रामायण में है कामायनी में नहीं।"

डॉ. प्रेम शंकर ने लिखा है–

> "आनंद और सुख का प्रतिपादन करते हुए भी काव्य छोटी सी सीमा में कार्य करता है। सुंदर उपमाएं, सरस अभिव्यंजना के होते हुए विस्तृत विवेचना में असमर्थ है। उसमें महाकाव्य का केवल उद्देश्य मात्र है, संपूर्ण स्वरूप नहीं।"

महाकाव्यों जैसा युद्ध का सजीव वर्णन नहीं है इसमें पर नायक मनु के मन में चलने वाले आंतरिक द्वंद्व के युद्ध के वर्णन की दृष्टि से कामायनी महाकाव्य है।

शृंगार का उदय पहले मनु व श्रद्धा के मन में होता है और फिर काम के आगमन से उन दोनों के जीवन में यौवन के वसंत में शृंगार का पदार्पण हो जाता है। काम जब छिपकर रात के अंतिम क्षणों में संपूर्ण रहस्य को खोलकर सामने रख देता है तो श्रद्धा के हृदय में लज्जा के अनेको भावों को लिए कामायनी शृंगारमयी बन जाती है।

"झुक चली सव्रीड वह सुकुमारता के भार
लद गई पाकर पुरुष का मर्ममय उपचार।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कपोल,
खिला पुलक कदंब सा था भरा गद्‌गद बोल।"

गर्भिणी श्रद्धा में जब काम के आकर्षण का अभाव मनु को व्याकुल करता है तो वह श्रद्धा से रिश्ता तोड़ कर इड़ा के पास चले जाते हैं। यहीं से विप्रलंभ शृंगार का श्रीगणेश होता है। यहीं से श्रद्धा में वात्सल्य के भाव भी दिखायी पड़ते हैं। विप्रलंभ में श्रद्धा शंका, स्मृति एवं चिंता से व्यथित दिखाई देती है।

'कामायनी' में विरह के वर्णन को एक अनूठी शैली में चित्रित किया गया है। शृंगार के सभी पक्ष व हाव-भाव अपनी-अपनी जगह में सही स्थिति पर हैं।

कामायनी की कथा प्रकृति से शुरू होती है और उसी की गोद में विलीन भी होती है। प्रथम सर्ग चिंता में मनु को उत्तुंग शिलाखंड पर बैठा दिखाया गया है, समुद्र की लहरें, सूर्य

की लालिमा, वर्षा, गगन चूमती पर्वत श्रृंखलाओं, बर्फ की माला पहनें पर्वत मालाओं आदि का वर्णन पढ़-सुनकर किसका मन इन मनोरम दृश्यों को देखने के लिए उत्सुक नहीं हो जाता।

कामायनी हिंदी महाकाव्य का आधुनिक रूप है। गीतात्मक शैली में महाकाव्य का निर्माण कवि का अनूठा प्रयास है। वर्णनात्मकता की कुछ कमी सी है कामायनी में लेकिन उसके बाद भी कलात्मक सौंदर्य बहुत उच्च स्थिति में है। अरस्तु ने काव्य शास्त्र में महाकाव्य के जिस परिष्कृत रूप की चर्चा की है वह 'कामायनी' में है।

कामायनी में शब्दों का चयन सौंदर्यपूर्ण है। सौंदर्य का वर्णन करते समय भाषा मानो जीवित हो उठती है-

"घिर रहे थे घुंघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास
नील घन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।"

प्रतीकात्मकता के प्रयोग के साथ प्रसाद ने एक सफल शब्द शिल्पी की भांति 'कामायनी' में चित्रों की प्रस्तुति की है। नाट्य संधियां तो नहीं है किंतु कामायनी में नाटक की संवाद शैली का भरपूर उपयोग हुआ है। कामायनी ने महाकाव्य की सीमा को छू लिया है।

कामायनी आधुनिक युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है। समाज में सुख हो, शांति हो और सर्वत्र आनंद व्याप्त हो यही इसका लक्ष्य है। कामायनी में शुरू से अंत तक आनंद की प्राप्ति का उद्देश्य ही दृष्टिगोचर होता है। इसलिए अगर हम मनु और श्रद्धा की आनंदोपलब्धि को कामायनी महाकाव्य का उद्देश्य स्वीकारते हैं तो यह सर्वथा वैधानिक और औचित्य पूर्ण है। श्रद्धा मनु को वहां तक पहुंचा देती है-

"स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद में श्रद्धा युत मनु बस तन्मय थे।"

डॉ. शिव कुमार मिश्र का कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है- "अपनी मर्म ग्राहिणी प्रतिभा के द्वारा मानव प्रकृति का विश्लेषण कर प्रसाद जी ने इस सुंदर महाकाव्य की रचना की है।"

कामायनी की काव्य गरिमा को लक्षित करते हुए डॉ. कन्हैया लाल साहब ने लिखा है-

"यह कहने की किसी को हिचकिचाहट नहीं है कि 'कामायनी' का कवि अपनी व्यक्तिगत सीमाओं से बहुत कुछ ऊपर उठा है और उसने मानवता के एक ऐसे महाकाव्य की रचना की है जिसका दिव्य संदेश कभी पुराना नहीं पड़ेगा।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कामायनी सफल, सार्वभौमिक कालजयी मानवता का संदेश देने वाला अपूर्व महाकाव्य है।

अंत में डॉ. प्रेम शंकर के शब्दों में, कामायनी के महाकाव्य का प्रतिपादन करते हुए कह सकते हैं- 'कामायनी' का आनंदवाद मोक्ष अथवा वैराग्य की भांति नहीं है। वह कर्म, काम से प्राप्त जीवन के उपभोग का आनंद है। जीवन से भागकर मनु कहां सुखी रहते हैं। संपूर्ण जीवन की सुंदर अभिव्यक्ति पक्ष की प्रौढ़ता, स्वस्थ जीवन दर्शन, मानवीय भावनाओं

का विश्लेषण 'कामायनी' को महाकाव्य का रूप देने के लिए पर्याप्त है। युग की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार महाकाव्य की रूपरेखा भी नवीन रूप धारण करती रही है। सभ्यता के विकास के साथ ही वर्णनात्मकता के स्थान पर कलात्मकता को प्राधान्य मिला। कालिदास के महाकाव्यों का काव्य सौंदर्य स्वर्णिम युग से अनुप्राणित है। आज की संघर्षकालीन परिस्थिति में जीवन की समस्याओं का समावेश आवश्यक हो गया। 'कामायनी' प्रसाद के व्यक्तित्व की संपूर्ण अभिव्यक्ति है। उसमें कलाकार अपनी समस्त साधना को लेकर प्रस्तुत हुआ। वह उसके जीवन मंथन का परिणाम है। लक्षण ग्रंथों का अनुसरण न करती हुई भी कामायनी अपने जीवन-दर्शन, काव्य सौष्ठव, मानवीय व्यापार के आधार पर महाकाव्य का पद प्राप्त करती है। 'कामायनी' महाकाव्य की सर्वोत्तम कृति के रूप में हिंदी में आई और एक निधि बनकर रहेगी।

डॉ. नंददुलारे वाजपेयी का महाकाव्य विषयक कथन दृष्टव्य है-

"परंपरागत महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी कामायनी को नए युग का प्रतिनिधि महाकाव्य कहने में हमें कोई हिचक नहीं होती।"

4.5 कामायनी की प्रतीक योजना

रूपक शब्द का शाब्दिक अर्थ है रूपक का दृश्य उपस्थित हो जाए।

"रूपकं दृश्यतयोच्यते"

अर्थात जिससे रूप का दृश्य उपस्थित होता है उसे रूपक कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार 'रूपक काव्य' के स्वरूप का निर्धारण करते हुए लिखा गया है-

"रूपक काव्य से तात्पर्य ऐसे काव्य से है, जिसमें प्रस्तुत पात्रों या प्रस्तुत कथा पर किन्हीं अप्रस्तुत बातों का निषेध रहित आरोप किया गया हो और एक अभिनेता की भांति वे पात्र या कथा अंत तक उसका निर्वाह करते हों।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रूपक काव्य को 'अन्योक्ति काव्य' से अभिहित किया है।

डॉ. नगेंद्र ने रूपक को परिभाषित करते हुए लिखा है-

"रूपक से ऐसी द्वयर्थक कथा से अभिप्राय है जिससे उससे ध्वनित किसी सैद्धांतिक अप्रस्तुतार्थ अथवा अन्वयार्थ का प्रस्तुत पर अभेद आरोप रहता है।"

रूपक के अंग्रेजी पर्याय 'मेटाफर' तथा 'एलिगरी (allegory)' हैं।

एबरक्रोबी ने रूपक की परिभाषा इस प्रकार की है- "महाकाव्यत्व के अभाव में रूपक काव्य की प्रमुख विशेषताएं होती हैं। वे हमारा परिचय ऐसे क्षेत्र से करवाती हैं जहां घटनाओं का अभाव होता है जिसका गहन महत्व हो। सांकेतिकता का निर्वाह अंत तक होता है। उसका कथानक रूपकत्व के परिणामस्वरूप पूर्णरूपेण कवि कल्पित होता है। जीवन के कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों पर बल दिया जाता है। उस तथ्य को समझाने हेतु आकर्षक वर्ण किया जाता है।"

का विश्लेषण 'कामायनी' को महाकाव्य का रूप देने के लिए पर्याप्त है। युग की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार महाकाव्य की रूपरेखा भी नवीन रूप धारण करती रही है। सभ्यता के विकास के साथ ही वर्णनात्मकता के स्थान पर कलात्मकता को प्राधान्य मिला। कालिदास के महाकाव्यों का काव्य सौंदर्य स्वर्णिम युग से अनुप्राणित है। आज की संघर्षकालीन परिस्थिति में जीवन की समस्याओं का समावेश आवश्यक हो गया। 'कामायनी' प्रसाद के व्यक्तित्व की संपूर्ण अभिव्यक्ति है। उसमें कलाकार अपनी समस्त साधना को लेकर प्रस्तुत हुआ। वह उसके जीवन मंथन का परिणाम है। लक्षण ग्रंथों का अनुसरण न करती हुई भी कामायनी अपने जीवन-दर्शन, काव्य सौष्ठव, मानवीय व्यापार के आधार पर महाकाव्य का पद प्राप्त करती है। 'कामायनी' महाकाव्य की सर्वोत्तम कृति के रूप में हिंदी में आई और एक निधि बनकर रहेगी।

डॉ. नंददुलारे वाजपेयी का महाकाव्य विषयक कथन दृष्टव्य है-

"परंपरागत महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी कामायनी को नए युग का प्रतिनिधि महाकाव्य कहने में हमें कोई हिचक नहीं होती।"

4.5 कामायनी की प्रतीक योजना

रूपक शब्द का शाब्दिक अर्थ है रूपक का दृश्य उपस्थित हो जाए।

"रूपकं दृश्यतयोच्यते"

अर्थात जिससे रूप का दृश्य उपस्थित होता है उसे रूपक कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार 'रूपक काव्य' के स्वरूप का निर्धारण करते हुए लिखा गया है-

"रूपक काव्य से तात्पर्य ऐसे काव्य से है, जिसमें प्रस्तुत पात्रों या प्रस्तुत कथा पर किन्हीं अप्रस्तुत बातों का निषेध रहित आरोप किया गया हो और एक अभिनेता की भांति वे पात्र या कथा अंत तक उसका निर्वाह करते हों।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रूपक काव्य को 'अन्योक्ति काव्य' से अभिहित किया है।

डॉ. नगेंद्र ने रूपक को परिभाषित करते हुए लिखा है-

"रूपक से ऐसी द्वयर्थक कथा से अभिप्राय है जिससे उससे ध्वनित किसी सैद्धांतिक अप्रस्तुतार्थ अथवा अन्वयार्थ का प्रस्तुत पर अभेद आरोप रहता है।"

रूपक के अंग्रेजी पर्याय 'मेटाफर' तथा 'एलिगरी (allegory)' हैं।

एबरक्रोबी ने रूपक की परिभाषा इस प्रकार की है– "महाकाव्यत्व के अभाव में रूपक काव्य की प्रमुख विशेषताएं होती हैं। वे हमारा परिचय ऐसे क्षेत्र से करवाती हैं जहां घटनाओं का अभाव होता है जिसका गहन महत्व हो। सांकेतिकता का निर्वाह अंत तक होता है। उसका कथानक रूपकत्व के परिणामस्वरूप पूर्णरूपेण कवि कल्पित होता है। जीवन के कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों पर बल दिया जाता है। उस तथ्य को समझाने हेतु आकर्षक वर्णन किया जाता है।"

जो काव्य कथात्मक प्रबंध काव्य होता है और जिसकी कथा में प्रस्तुत व सांकेतिक कथा सदा विद्यमान रहती है उसे ही प्रस्तुत करने वाला महाकाव्य रूपक महाकाव्य है।

प्रसाद के ही अनुसार आर्य साहित्य में आदि अर्थात प्रथम पुरुष का इतिहास वेदों, पुराणों और इतिहास में बिखरा हुआ मिलता है किंतु मानवता के नव प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गई है। स्वयं प्रसाद ने कामायनी के रूपक महाकाव्य होने के संदर्भ में लिखा है-

> "यदि श्रद्धा और मनु अर्थात 'मनन के सहयोग से मानवता का विकास' रूपक है, तो भी बड़ा भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है। आज हम सत्य का अर्थ घटना मान लेते हैं। तब भी उसके तिथिक्रम मात्र से संतुष्ट न होकर, मनोवैज्ञानिक अन्वेषण के द्वारा इतिहास की घटना के भीतर कुछ देखना चाहते हैं। उसके मूल के क्या रहस्य हैं? आत्मा की अनुभूति! हां, उसी भाव के रूप-ग्रहण की चेष्टा सत्य या घटना बनकर प्रत्यक्ष होती है। फिर वे सत्य घटनाएं स्थूल और क्षणिक होकर मिथ्या और अभाव में परिणत हो जाती हैं।"

प्रसाद के अनुसार कामायनी की कथा में रूपक का भी अदभुत मिश्रण हो गया है। मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का संबंध श्रद्धा और इड़ा के चरित्र से स्पष्ट हो जाता है। जयशंकर प्रसाद के कथन के अनुसार कामायनी महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक है, जिसमें सांकेतिक अर्थों की अभिव्यक्ति भी की गई है। इससे यह प्रमाणित होता है कि कामायनी रूपक महाकाव्य है। डॉ. नगेंद्र ने कामायनी को रूपक महाकाव्य स्वीकार करते हुए कहा है-

> "कामायनी के पात्रों के प्रतीकमय सांकेतिक व्यक्तित्व तथा उसकी घटनाओं का श्लेष गर्भित गूढ़ अर्थ दोनों ही इस मत की पुष्टि करते हैं। अतएव 'कामायनी' में रूपक तत्व की स्थिति के विषय में संदेह नहीं किया जा सकता है। वह निश्चय ही है और काफी स्पष्ट भी है।"

डॉ. फतह सिंह का मानना है कि कामायनी में लौकिकता, मौलिकता, आध्यात्मिकता एवं बौद्धिकता, का अपूर्व समन्वय है। बुद्धि पक्ष के साथ हृदय पक्ष भी उतना ही महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं-

> "कामायनी में भौतिकता और आध्यात्मिकता, लौकिकता तथा अलौकिकता का सहज सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐतिहासिक कथानक में रूपक का सम्मिश्रण कर लिया गया है।"

आशा के बाद 'काम' की इच्छा प्रबल हो जाती है। 'काम' सांसारिक प्राणियों के प्रति वासना का द्योतक है। वासना काम का संघर्षमय रूप है। प्रसाद की दृष्टि में वासना में लज्जा अनिवार्य है, क्योंकि वासना में लज्जा नारी को शालीनता प्रदान करती है। कवि के शब्दों में लज्जा कहती है-

> *"मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूं, मैं शालीनता सिखाती हूं,*
> *मतवाली सुंदरता पग में, नूपुर-सी लिपट मनाती हूं।"*

कर्म के बाद श्रद्धा के गर्भवती होने पर मनु में 'ईर्ष्या' उत्पन्न होती है। यह ईर्ष्या करने की स्वाभाविक भावना होती है।

इड़ा बौद्धिकता का प्रतीक है। स्वप्न कल्पना का प्रतीक है। वियोग की अवस्था में श्रद्धा स्वप्न में मनु को दुखी अवस्था में देखती है। बुद्धि से संसर्ग प्राप्त कर मनु में वैज्ञानिकता आ जाती है। यह वैज्ञानिकता संघर्ष को जन्म देती है।

अत्यधिक संघर्ष के कारण मानव के मन में विरोध उत्पन्न हो जाता है। निर्वेद उसी का प्रतीक है। निराशा से वे आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित होते हैं जिससे दर्शन की भावना उदित होती है।

आत्मा, परमात्मा, जीवन, जगत माया, का ज्ञान होने पर विश्व का 'रहस्य' सामने आता है। रहस्य को जानने के बाद आनंद की प्राप्ति होती है। इस प्रकार चिंता सर्ग से लेकर आनंद सर्ग तक सारी कथा वस्तुतः मानव विकास का रूपक प्रस्तुत करती है। कामायनी के प्रतीक के विषय में डॉ. शिवदान सिंह चौहान का कथन है–

> "कामायनी की कथा एक पौराणिक वृत्त पर आधारित है किंतु यह वृत्त तो एक रूपक है जिसके माध्यम से प्रसाद जी ने मनुष्य के बौद्धिक और भावनात्मक विकास और आधुनिक जीवन के आंतरिक वैषम्य की वास्तविकता को ही चित्रमयी भाषा में प्रतिबिंबित करने का विराट आयोजन किया गया है।

डॉ. शम्भू सिंह कामायनी को भारतीय एवं पाश्चात्य रूपक शैली का समन्वित रूप मानते हुए कहते हैं–

> "कामायनी की रूपक योजना 'प्रबोध-चंद्रोदय' वाली रूपक-कथा की शैली से भिन्न है। इसमें अंग्रेजी साहित्य की बीसवीं शताब्दी में रूपक शैली का जो विकास हुआ तथा वैदिक और पौराणिक साहित्य में जो रूपक पद्धति अपनाई गई है, का समन्वय हुआ है।"

कामायनी में कथा तथा पात्रों के साथ घटनाएं तथा घटना स्थल भी प्रतीक हैं। जो अपनी रूपकात्मकता प्रमाणित करते हैं। प्रसाद ने कैलाश पर्वत का वर्णन करते हुए कहा है–

> *"शापित न यहां है कोई, तापित पापी न यहां है,*
> *जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि यहां है।"*

जलप्लावन का सांकेतिक तथा प्रतीकात्मक यही अर्थ है। कामायनी रूपक महाकाव्य है क्योंकि इसमें कथानक में ऐतिहासिक कथा के साथ-साथ प्रतीकात्मक कथा भी चलती रहती है। पात्र सभी ऐतिहासिक है, और इन्हीं के चरित्र चित्रण द्वारा मन, हृदय और बुद्धि को प्रतिपादित किया गया है।

हिंदी महाकाव्य की विवेचना करते हुए डॉ. गोविंदराम ने लिखा है–

> "कामायनी में ऐतिहासिक कथानक के साथ मानव-मन के क्रमिक विकास के रूपक की योजना भी सुंदर ढंग से की गई है।"

कामायनी की रूपकात्मकता के समर्थकों में डॉ. नामवर सिंह का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उनका मत है– "कामायनी के प्रतीक एक हद तक छायावादी आवरण से ढके हुए हैं, लेकिन दूसरी ओर उनमें अपने युग की जीवंत समस्याओं का स्पंदन भी है। प्रसाद ने अपने जीवन की वास्तविकता को इतने व्यापक सामाजिक परिवेश में तथा भावना के गहरे स्तरों के साथ चित्रित किया है कि इन प्रतीकों में युग-युग को रसमग्न और प्रेरित करने की क्षमता आ गई है।"

अत: इन सब वक्तव्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कथावस्तु, पात्र के चरित्र चित्रण, घटना स्थल, मानव जीवन का विकास एवं घटनाओं की प्रतीकात्मकता ने कामायनी को एक सफल रूपक महाकाव्य बना दिया है।

4.6 पाठांश

कामायनी के इस सर्ग में महाजलप्लावन के पश्चात का वर्णन है। इस महाप्रलय के उपरांत मनु व्यथित होकर सृष्टि के विनाश को देखकर चिंतामग्न हो गए और एक पर्वतशिला पर निराश होकर बैठे थे कि अचानक श्रद्धा उनके एकाकी जीवन में एक नवचेतना बनकर प्रविष्ट होती है और मनु के हृदय में जीवन के प्रति नवचेतना लाने का सुंदर प्रयास करती है। वह वस्तुत: महाप्रलय के पश्चात पुन: मानव जीवन का विकास प्रस्तुत करती है। श्रद्धा मनु के निराश जीवन में आशा की किरण जगाती है और प्रेरणा देती है कि जीवन निरंतर चलने का नाम है रुकने का नहीं।

4.6.1 पूर्वपीठिका

मनु अपने एकाकी जीवन से दुखी हैं। महाप्रलय के पश्चात वे अकेले एक पर्वत शिखर पर बैठे प्रकृति का तांडव देखकर अत्यंत निराश व चिंतित हो उठते हैं उसी समय गंधर्व देश की कन्या भ्रमण करती हुई प्रकृति का अवलोकन कर रही थी, उसे भी जल प्रलय की भीषण वेदना सहनी पड़ी। भटकती हुई वह मनु के पास जा पहुंचती है। वह मनु के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित होती है और उसके मन में मनु के जीवन के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है। मनु अपने विरक्त जीवन से उसका परिचय कराते हैं। मनु क्योंकि बहुत थके हुए थे अत: उनकी वाणी से आलस्य और जीवन के प्रति निराशा ही प्रकट होती है।

श्रद्धा मनु को जीवन के लिए उत्साहित करने को प्रयत्न करती है उसके प्रेरणादायक वचनों में जीवन को पुन: जीने की लालसा है। वह कहती है जब प्रकृति इतनी सुंदर और निरंतर परिवर्तनशील है तो उससे प्रेरणा लेनी चाहिए। वह कहती है कि जीवन मूल्यवान है अपने अंदर की शक्ति को पहचानो, निराशा को भूल जाओ और जीवन-पथ पर पुन: अग्रसर हो जाओ।

श्रद्धा के ओजपूर्ण वचनों से मनु के हृदय में स्फूर्ति का संचार तो होता है पर वह स्फूर्ति क्षणिक ही होती है मनु अपनी निराशा से बाहर नहीं आ पाते क्योंकि उन्होंने प्रलय का साक्षात दर्शन किया है। वे अत्यंत भयभीत और क्षीण हो चुके हैं। वे श्रद्धा के वचन सुनकर भी स्वयं

कामायनी की रूपकात्मकता के समर्थकों में डॉ. नामवर सिंह का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उनका मत है– "कामायनी के प्रतीक एक हद तक छायावादी आवरण से ढके हुए हैं, लेकिन दूसरी ओर उनमें अपने युग की जीवंत समस्याओं का स्पंदन भी है। प्रसाद ने अपने जीवन की वास्तविकता को इतने व्यापक सामाजिक परिवेश में तथा भावना के गहरे स्तरों के साथ चित्रित किया है कि इन प्रतीकों में युग-युग को रसमग्न और प्रेरित करने की क्षमता आ गई है।"

अतः इन सब वक्तव्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कथावस्तु, पात्र के चरित्र चित्रण, घटना स्थल, मानव जीवन का विकास एवं घटनाओं की प्रतीकात्मकता ने कामायनी को एक सफल रूपक महाकाव्य बना दिया है।

4.6 पाठांश

कामायनी के इस सर्ग में महाजलप्लावन के पश्चात का वर्णन है। इस महाप्रलय के उपरांत मनु व्यथित होकर सृष्टि के विनाश को देखकर चिंतामग्न हो गए और एक पर्वतशिला पर निराश होकर बैठे थे कि अचानक श्रद्धा उनके एकाकी जीवन में एक नवचेतना बनकर प्रविष्ट होती है और मनु के हृदय में जीवन के प्रति नवचेतना लाने का सुंदर प्रयास करती है। वह वस्तुतः महाप्रलय के पश्चात पुनः मानव जीवन का विकास प्रस्तुत करती है। श्रद्धा मनु के निराश जीवन में आशा की किरण जगाती है और प्रेरणा देती है कि जीवन निरंतर चलने का नाम है रुकने का नहीं।

4.6.1 पूर्वपीठिका

मनु अपने एकाकी जीवन से दुखी हैं। महाप्रलय के पश्चात वे अकेले एक पर्वत शिखर पर बैठे प्रकृति का तांडव देखकर अत्यंत निराश व चिंतित हो उठते हैं उसी समय गंधर्व देश की कन्या भ्रमण करती हुई प्रकृति का अवलोकन कर रही थी, उसे भी जल प्रलय की भीषण वेदना सहनी पड़ी। भटकती हुई वह मनु के पास जा पहुंचती है। वह मनु के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित होती है और उसके मन में मनु के जीवन के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है। मनु अपने विरक्त जीवन से उसका परिचय कराते हैं। मनु क्योंकि बहुत थके हुए थे अतः उनकी वाणी से आलस्य और जीवन के प्रति निराशा ही प्रकट होती है।

श्रद्धा मनु को जीवन के लिए उत्साहित करने को प्रयत्न करती है उसके प्रेरणादायक वचनों में जीवन को पुनः जीने की लालसा है। वह कहती है जब प्रकृति इतनी सुंदर और निरंतर परिवर्तनशील है तो उससे प्रेरणा लेनी चाहिए। वह कहती है कि जीवन मूल्यवान है अपने अंदर की शक्ति को पहचानो, निराशा को भूल जाओ और जीवन-पथ पर पुनः अग्रसर हो जाओ।

श्रद्धा के ओजपूर्ण वचनों से मनु के हृदय में स्फूर्ति का संचार तो होता है पर वह स्फूर्ति क्षणिक ही होती है मनु अपनी निराशा से बाहर नहीं आ पाते क्योंकि उन्होंने प्रलय का साक्षात दर्शन किया है। वे अत्यंत भयभीत और क्षीण हो चुके हैं। वे श्रद्धा के वचन सुनकर भी स्वयं

को असहाय और असमर्थ पाते हैं। श्रद्धा जान लेती है कि इस समय मनु प्रलय की प्रतिच्छा के भय से ग्रस्त हैं इसलिए वह मनु को सुख-दुख के क्रमपूर्ण विकास से अवगत कराते और मनु की हर प्रकार से सहायता करने का प्रयास करती है।

प्रसाद ने श्रद्धा के बाह्य और आंतरिक सौंदर्य का परिचय प्राचीनता और आधुनिकता समन्वय से कराया है। श्रद्धा हृदय की भावनाओं की प्रतीक है उसकी वाणी कोमल है, है तथा वह विश्वास से ओतप्रोत है। संसार में सुख दुःख साथ चलते हैं। मनुष्य को सुख अतिप्रसन्न और दुख में दुःखी नहीं होना चाहिए। श्रद्धा का ही दूसरा नाम कामायनी है क्यों वह भावनाओं के साथ कर्म की ओर प्रेरित करती है।

मनु की सफलता का अधिकतम श्रेय श्रद्धा को ही जाता है। वह केवल कोमल वच से ही प्रेरित नहीं करती है अपितु अपने प्रबल तर्कों से मनु को पुनर्जीवन के लिए प्रेरणा देती है। श्रद्धा मानवता की कल्याण भावना से ओतप्रोत है, और उसकी उन्नति के लिए सत प्रयास भी करती है।

4.6.2 'कामायनी' का श्रद्धा सर्ग

"कौन तुम! संसृति-जलनिधि तीर
तरंगों से फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक?
मधुर विश्रांत और एकांत
जगत का सुलझा हुआ रहस्य
एक करुणामय सुंदर मौन
और चंचल मन का आलस्य!"

प्रसंग– यह पद्यांश हिंदी सहित्य के आधुनिक काल के छायावादी युग के मूर्धन्य महाकवि 'प्रसाद' की अमर कृति कामायनी से उद्धृत है। यह महाकाव्य पंद्रह सर्गों में विभाजित है और मानव-जीवन का समग्र विकास प्रस्तुत करता है। श्रद्धा कामायनी का तृतीय सर्ग है। जिसमें श्रद्धा विरक्त मनु से उसके विषय में जानना चाहती है। मनु के चिंता मग्न होने पर अपने आत्मविश्वास और प्रेरणादायक वचनों से उन्हें जीवन के प्रति आशावान होने के लिए प्रेरित करती है।

व्याख्या– श्रद्धा मनु से प्रश्न करती है कि हे अनजान मनुष्य तुम कौन हो? जिस प्रकार सागर की लहरों द्वारा फेंकी हुई मणि सुनसान तट को प्रकाशित करती है उसी प्रकार तुम भी संसार रूपी सागर तट पर बैठे हुए मणि समान चमक रहे हो और महाजलप्लावन के पश्चात हुए सूनेपन को आलोकित कर रहे हो। तुम क्लांत और थके हुए प्रतीत हो रहे हो। फिर भी तुम्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने संसार का कोई बड़ा रहस्य सुलझा लिया है। यह आंधी के बाद आई वर्षा की शांति है। जिस प्रकार चंचल मन सदैव चंचल ही रहता है और उसमें अत्यंत वेग होता है। उसी प्रकार तुम्हारी यह शांति क्षणिक है और तुममें अपार शांति समाहित है। थोड़ा विश्राम कर लोगे तो पुनः शक्तिवान एवं ऊर्जावान हो जाओगे। परिश्रम के पश्चात थोड़ा विश्राम कर लिया जाय तो शरीर व मन दोनों ही प्रफुल्लित हो जाते हैं।

विशेष

1. श्रद्धा का मनु के जीवन में आना एक आशा की किरण जैसा है।
2. भाषा सरल है।
3. रूपक व उपमा अलंकार हैं।
4. श्रद्धा का उदात्त चरित्र प्रस्तुत हुआ है।
5. श्रद्धा अपनी मधुर वाणी और साहस से मानव जीवन को मंगलमय बनाती है।
6. श्रद्धा में नवीन संस्कृति और सभ्यता का प्रवर्तन करने की अद्भुत क्षमता है।
7. श्रद्धा का व्यक्तित्व प्रेरणामय है।

सुना यह मनु ने मधु-गुंजार
मधुकरी का सा जब सानंद,
किये मुख नीचा कमल समान,
प्रथम कवि का ज्यों सुंदर छंद।

प्रसंग– श्रद्धा का मनु के समक्ष अचानक प्रश्न पूछना। मनु को श्रद्धा की वाणी भ्रमरी के मधुर गुंजन समान प्रतीत हुई। श्रद्धा केवल सुंदर ही नहीं है अपितु उसकी वाणी भी मधुर है। अचानक श्रद्धा का मधुर वचन सुनकर मनु ने मुग्ध दृष्टि से उसे देखा और फिर मुख नीचा कर लिया।

व्याख्या– जिस प्रकार कमल का फूल खिलकर नीचे झुक जाता है उसी प्रकार श्रद्धा की मधुर वाणी सुनकर मनु मुख नीचा किए सुनते रहे। एकांत में निराश अवस्था में किसी की मधुर वाणी सुनना अत्यंत आनंददायक होता है। मनु के लिए श्रद्धा के शब्द वाल्मीकि के प्रथम छंद के समान थे जिस प्रकार क्रौंच वध पर क्रौंची के विलाप को सुनकर कवि के हृदय में करुणा का भाव आया था और उसी करुणा के फलस्वरूप उन्होंने रामायण की रचना की थी वैसा ही भाव श्रद्धा की वाणी में भी है। रसों में वैसा रस करुण रस ही है। रसों में प्रथम रस करुण रस ही है उसी के द्वारा अन्य रसों का विकास हुआ। इन करुण शब्दों से ही मनु और श्रद्धा का प्रथम परिचय हुआ और यहीं से मानव सृष्टि का सूत्रपात हुआ।

विशेष

1. विशेषण विपर्यय।
2. भाषा सरल, सहज व भाव के अनुरूप है।
3. तत्सम प्रधान शब्दों का प्रयोग किया गया है।
4. उपमा अत्यंत कलात्मक रूप में प्रस्तुत की गई है।
5. मनु के लिए, श्रद्धा के शब्द, सुंदर छंद समान थे।
6. 'मधुकरी सा', 'मुख नीचा कमल', 'प्रथम कवि का ज्यों सुंदर छंद', में उपमा अलंकार है।

7. प्रथम कवि अर्थात वाल्मीकि के प्रथम छंद के उदाहरण से कविता का सौंदर्य बढ़ गया है।

और देखा वह सुंदर दृश्य
नयन का इंद्रजाल अभिराम;
कुसुम वैभव में लता समान
चंद्रिका से लिपटा घनश्याम।
हृदय की अनुकृति बाह्य उदार,
एक लम्बी काया उन्मुक्त;
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।

प्रसंग– श्रद्धा के सौंदर्य का वर्णन है उसकी मधुर वाणी सुनकर मनु ने जब अपना मुख उठाया तो उन्हें अत्यंत सुंदरता का अनुभव हुआ। श्रद्धा गौर वर्ण है और उसके नीले वस्त्रों की उपमा काले बादलों से की गई है। उसके बाहरी और भीतरी सौंदर्य में कोई अंतर नहीं है। उसके आंतरिक गुणों को उसके बाह्य सौंदर्य के अनुसार उसका प्रमाण माना गया है।

व्याख्या– मनु श्रद्धा के बाह्य सौंदर्य को देखकर उस पर मोहित हो गए। वह फूलों की लता के समान अत्यंत सुंदर थी क्योंकि सुगंधित पुष्पों वाली लताएं जैसे बेला, चमेली, जूही आदि लताएं सुंदर होने के साथ सुगंधित भी होती हैं। उनसे सारा वातावरण सुगंधमय हो जाता है। क्योंकि श्रद्धा ने मेषचर्मों की खाल के नील वर्ण का वस्त्र पहना हुआ था अतः वह वस्त्र चांदनी से घिरे हुए काले बादल के समान प्रतीत हो रहा था।

श्रद्धा के सुंदर रूप से ही उसका उदार हृदय दृष्टिगोचर हो रहा था। वह लंबे शरीर वाली नारी है। उसके अंग-प्रत्यंग का विकास स्वछंद रूप से हुआ है। उसको देखकर ऐसा लगता है जैसे छोटे सालवृक्ष को वसंत की वायु ने सौंदर्य व सुगंधा से युक्त बना दिया हो।

विशेष

1. सरल भाषा का प्रयोग किया गया है।
2. तत्सम शब्दों का सुंदर प्रयोग किया है।
3. नारी के अल्हड़ सौंदर्य का वर्णन है।
4. उत्प्रेक्षा अलंकार है।
5. हृदय के अनुसार बाह्य सौंदर्य का बोध किया गया है।
6. 'लता समान' व शिशु-साल में सुंदर उपमान है।

मसृण गांधार देश के, नील
रोम वाले मेषों के चर्म।
ढक रहे थे उसका वपु कांत
बन रहा था वह कोमल वर्म।

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।

प्रसंग– श्रद्धा के सौंदर्य वर्णन के साथ उसके वस्त्रों का उल्लेख है। ये वस्त्र उसके सौंदर्य में वृद्धि कर रहे हैं। मेषों की खाल का वस्त्र इस प्रकार धारण किया हुआ है कि उसके शरीर के उभार भी पूर्णतया नहीं ढक पाए हैं और वे अत्यंत आकर्षक लग रहे हैं।

व्याख्या– श्रद्धा ने गांधार देश के नीले रोयें वाली भेड़ों की खाल का वस्त्र पहना हुआ था किंतु वह पूर्णरूप से अपने सुंदर शरीर को ढक नहीं पा रही थी। उसके विकसित अंग दृष्टिगोचर हो रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे काले मेघों के वन के बीच गुलाबी आभा लिए बिजली का फूल खिला हो। वर्षा ऋतु में सायंकाल में सूर्य की किरणें अपनी स्वर्णिम आभा से इंद्रधनुष को जन्म देती है और हिमशिखरों पर सोना जैसा बिखेर देती है। नीला वस्त्र धारण करना 'अभिसारिका नायिका' का लक्षण है, इसलिए नीलवसना श्रद्धा को दिखाना सप्रयोजन है।

विशेष

1. सरल भाषा का प्रयोग किया गया है।
2. तत्सम शब्दावली है।
3. अनुप्रास, रूपक, उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।
4. नारी का मर्यादित एवं अति सुंदर वर्णन किया गया है।
5. बिजली को कोमल रूप देकर फूल की कल्पना की गई है।

घिर रहे थे घुंघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास;
नील घन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।
और मुख पर वह मुसक्यान!
रक्त किसलय पर लें विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम!

प्रसंग– यह सूर्यास्त का वर्णन है जिस प्रकार सूर्यास्त के समय आकाश में घिरे हुए बादलों के कारण सूर्य की आभा लाल हो जाती है और आकाश रक्तिम हो जाता है उसी प्रकार श्रद्धा का रूप भी अप्रतिम है और प्रकृति से उपमा देकर उसके सौंदर्य का वर्णन किया गया है उसके मुख की शोभा चंद्रमा के समान थी। श्रद्धा के मुख पर छाई हुई मुस्कान और उसके सुंदर काले केशों का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है–

व्याख्या– श्रद्धा के बाल लंबे, काले और लहराते हुए उसके कंधों पर बिखरे हुए थे। क कहता है कि ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे नन्हें बादलों के टुकड़े चंद्रमामुखी मुख से अ कलश भरने आए हैं।

श्रद्धा की मुस्कान अत्यंत सुंदर थी जो ऐसी प्रतीत होती थी जैसे सूर्य की स्वर्णिम कि नवीन पत्तियों पर अलसा कर विश्राम कर रही हैं। श्रद्धा के ओंठ लालिमा लिए हुए क कलियों के समान हैं और उसकी मुस्कराहट सूर्य की फैलती हुई एक किरण के समान परंतु वह अलसाई सी प्रतीत होती है।

विशेष

1. सरल भाषा का प्रयोग किया गया है।
2. तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है।
3. उत्प्रेक्षा अलंकार है।
4. किरण का कोंपल पर अलसाने में मानवीकरण अलंकार है।
5. मुस्कान शुद्ध शब्द है परंतु 'मुसक्यान' का प्रयोग कोमलता हेतु किया गया है।
6. नारी सौंदर्य का अति मर्यादापूर्ण वर्णन किया गया है।
7. छायावाद में प्रकृति को विशेष स्थान दिया गया है। उसका मानवीकरण किय गया है।
8. प्रकृति को नारी रूप में देखा गया है।
9. रीतिकालीन नारी सौंदर्य का वर्णन किया गया है।

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण कामना मूर्ति;
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।
ऊषा की पहिली लेखा कांत
माधुरी से भीगी भर मोद;
मद भरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद।

प्रसंग– नारी (श्रद्धा) के अनंत सौंदर्य का अति सुंदर वर्णन है जिसमें ऊषाकाल के निर्मल सूर्योदय का वर्णन है जो विश्वमैत्री और कल्याण का संदेश देता है। रात्रि के आलस्य को त्याग कर सभी उस आभा का स्पर्श करना चाहते हैं। श्रद्धा की सुंदरता प्रात: काल की कोमल आभा से परिपूर्ण है। उसमें रात के आलस्य और उनींदेपन की झलक है। भोर काल के तारों की छाया से वह अभी अभी उठकर आई है अत: अलसाई हुई है।

व्याख्या– श्रद्धा हृदय का प्रतीक है। उसकी सुंदरता में भी वही सहृदय भावना है, जिस प्रकार प्रात: काल की शोभा अतिसुंदर व कोमल होती है, उसी प्रकार वह भी अलसाई हुई निर्मल और विश्व कल्याण की भावना से ओतप्रोत है। उसे देखकर उसका स्पर्श करने की इच्छा होती

है। वह सभी चर-अचर को नव चेतना प्रदान करने वाली है। तारों की छाया से अलसाई सी उठकर आती हुई भोर की लालिमा से युक्त है और मानव मन के रात्रि रूपी अंधकार को समाप्त करने वाली है।

विशेष

1. अत्यंत सरल भाषा है।
2. तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है।
3. उपमा, उत्प्रेक्षा तथा मानवीकरण अलंकार हैं।
4. ऊषा के प्रथमकाल का मानवीकरण किया गया है।
5. छायावाद का अनुपम उदाहरण है।
6. आध्यात्मिक संकेत है।
7. श्रद्धा का सौंदर्य कोमल एवं करुणा से भरपूर है।
8. श्रद्धा पद्मिनी नायिका के समान है।

पहेली-सा जीवन है व्यस्त
उसे सुलझाने का अभिमान,
बताता है विस्मृति का मार्ग
चल रहा हूं बनकर अनजान।
भूलता ही जाता दिन रात
सजल अभिलाषा कलित अतीत;
बढ़ रहा तिमिर गर्भ में नित्य
दीन जीवन का यह संगीत

प्रसंग– मनु श्रद्धा को अपने विषय में बताते हुए कहते हैं कि वे पहेली के समान हैं। अनबूझे हैं, उनके जीवन की कोई राह नहीं है। श्रद्धा के मनु से यह पूछने पर कि वह कौन है। मनु कहते हैं कि वे जीवन के प्रति अति उदासीन व निराश हैं। उनका जीवन आकाश और पृथ्वी के बीच आधारहीन हो गया है। जिस प्रकार उल्कापिंड असीमित शून्य में विचरण करते हैं उसी प्रकार उनका भी जीवन अर्थहीन है। मनु के अनुसार वे न तो झरना बन सके न ही हिमकण जो गलकर तरल रूप में बहकर सागर में विलीन हो जाए।

व्याख्या–मनु कहते हैं कि उनका जीवन एक अनसुलझी पहेली है जिसे सुलझाने का जितना प्रयास करते हैं वह उतनी ही उलझी जा रही है। सुलझाने की आशा में असफलता ही मिलती है जिसका परिणाम यह होता है कि घोर निराशा होती है। उन्हें नहीं पता कि उन्हें कहां जाना है व उनके जीवन का क्या उद्देश्य है? वे अपने जीवन के अंधकारमय रास्तों पर चले जा रहे हैं कहां जा रहे हैं कुछ ज्ञात नहीं?

अपने मन की व्यथा सुनाते हुए वे कहते हैं कि उन्हें अपना सुंदर अतीत भी अब याद नहीं आ रहा है। उनके जीवन की स्फूर्ति भी समाप्त हो गई है। जब जीवन का संगीत ही सुनने वाला न हो तो वह संगीत भी अर्थहीन हो जाता है। वे बहुत एकाकी हैं।

विशेष

1. सरल भाषा प्रयुक्त हुई है।
2. गंभीर भाव हैं।
3. उपमा, रूपक, मानवीकरण अलंकार है।
4. अतीत की सुखद स्मृतियां बार-बार अपनी ओर खींचती हैं।
5. जीवन संगीत स्थायी नहीं होता है।
6. मानव जीवन में सुख-दुख दोनों का होना आवश्यक है।
7. दुख में मानव निराश हो ही जाता है।
8. सुख की किरणें अतीत के दुख को तिरोहित कर देती हैं।

"कौन हो तुम वसंत के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार!
घन तिमिर में चपला की रेख,
तपन में शीतल मन्द बयार।
नखत की आशा किरण समान,
हृदय के कोमल कवि की कांत
कल्पना की लघु लहरी दिव्य
कर रही मानस हलचल शांत!"

प्रसंग– श्रद्धा के प्रश्न के उत्तर में मनु अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए श्रद्धा के विषय में जानने के लिए प्रबल इच्छा रखते हैं। मनु कहते हैं कि मैं क्या कहूं? मैं तो आकाश और पृथ्वी के मध्य भटकता हुआ एक भूला हुआ व्यक्ति हूं, जो अपने जीवन के भविष्य के बारे में कुछ नहीं जानता अतः मैं तुम्हारे (श्रद्धा के) विषय में जानने के लिए उत्सुक हूं।

व्याख्या– मनु श्रद्धा से पूछते हैं कि नीरसता के इस उदासी के वातावरण में नवीन आशा की किरण बनकर आने वाली तुम कौन हो? जैसे ग्रीष्म ऋतु के पश्चात वर्षा की शीतल मंद पवन शीतलता प्रदान करती है उसी प्रकार मनु के जीवन की शुष्कता भी श्रद्धा के सुगंधमय आगमन से सरस हो जाती है, जैसे नवीन नक्षत्र के उदित होने से आशा की किरण जागती है उसी प्रकार मनु के हृदय में भी अभिलाषा और नवचेतना का संचार होता है, और श्रद्धा के साथ पुनः नवजीवन प्रारंभ करने की प्रबल इच्छा उनके मन में उठती है।

विशेष

1. मधुर गुणवत्तापूर्ण भाषा का प्रयोग किया गया है।
2. मानस, हलचल में उपमा अलंकार है।
3. डूबते को तिनके का भी सहारा होता है।
4. प्रतीकात्मकता।

भरा था मन में नव उत्साह
सीख लूं ललित कला का ज्ञान,
इधर रह गंधर्वों के देश
पिता की हूं प्यारी संतान।
घूमने का मेरा अभ्यास,
बढ़ा था मुक्त व्योम-तल नित्य;
कुतूहल खोज रहा था व्यस्त
हृदय सत्ता का सुंदर सत्य।

प्रसंग– जब मनु ने श्रद्धा से उसके विषय में जानना चाहा तो श्रद्धा ने स्वयं के विषय में बड़ी प्रसन्नता से परिचय दिया मानो आनंदातिरेक में कोयल पुष्प को वसंत का मधुर संदेश दे रही हो। श्रद्धा मनु को अपने विषय में बताते हुए कहती है कि वह गंधर्व पिता की लाडली संतान है और उसे ललित कलाएं सीखने का अत्यधिक उत्साह है। वह भ्रमण करने निकली है।

व्याख्या– मनु के प्रश्न करने पर श्रद्धा उनकी सारी जिज्ञासा शांत करते हुए कहती है कि वह गंधर्व देश की कन्या है जो बड़े लाड़ प्यार में पाली गई है। उसकी वाणी ऐसी प्रतीत होती थी जैसे वसंत का संदेश दे रही हो। वह कोयल के समान सुमधुर स्वर लिए हुए प्रतीत हो रही थी। मनु के मन में नवीन उत्साह भर देने वाली श्रद्धा की वाणी, फूल के समान कोमल और सुगंधित वायु का झोंका लेकर आई थी इसके आने से मनु का पुष्प-मन खिल उठा।

गंधर्व कला प्रेमी होते हैं वे प्रेम विवाह में पूर्ण विश्वास रखते हैं। श्रद्धा भी ललित कलाएं सीखना चाहती हैं और मनु से प्रेम विवाह करना चाहती है। वह अपने हृदय की सत्ता पर मनु को विराजमान करना चाहती है। वह भाव-प्रधान अर्थात भावनाओं से ओतप्रोत है। श्रद्धा भी हृदय-भावना की ओर संकेत करती है, बुद्धि-भावना को नहीं।

विशेष

1. हृदय सत्ता का सुंदर सत्य में भाव गंभीर है।
2. बुद्धि की अपेक्षा हृदय को प्रधानता दी गई है।
3. 'मुक्त व्योम तल' स्वछंदता का प्रतीक है।
4. ललित कलाएं सीखना-स्त्री सुलभ प्रकृति का प्रतीक है।

मधुरिमा में अपनी ही मौन,
एक सोया संदेश महान;
सजग हो करता था संकेत,
चेतना मचल उठी अनजान।
बढ़ा मन और चले ये पैर,
शैल मालाओं का शृंगार;
आंख की भूख मिटी यह देख,
आह कितना सुंदर सम्भार।

प्रसंग– श्रद्धा कहती है कि हिमालय को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे सर्वत्र जल ही जल है और पृथ्वी का कोई अंश शेष न हो। महाजल-प्लावन के कारण सर्वत्र जल ही जल दिखाई दे रहा था पृथ्वी तो कहीं दिखाई ही नहीं दे रही है मनु और श्रद्धा भी एक पर्वत के निकट मिले थे। महाजल प्रलय के पश्चात एक निःशब्द मौन छा जाता है किंतु पर्वत मालाएं सुंदर प्रतीत हो रही थीं और उन्हें देखकर श्रद्धा के मन को सांत्वना मिली।

व्याख्या– श्रद्धा कहती है कि नीरवता भरे वातावरण में सब कुछ शांत हो गया था कहीं कुछ शेष न था सब जलमग्न हो गया था फिर भी पर्वत मालाएं शेष थीं जो श्वेत धवल रूप में चमकती हुई जीवन का संदेश दे रही थीं और उन्हें देखकर श्रद्धा को अत्यंत प्रसन्नता मिली और वह नवीन उत्साह से भर गई। वह रमणीय दृश्य अत्यंत दिव्य और अलौकिक था उसका मन मयूर जैसे नाचने को उद्यत होने लगा।

विशेष

1. अत्यंत सरल भाषा है।
2. 'सोया संदेश महान' में गंभीरता और मानवीकरण अलंकार है।
3. अनुप्रास अलंकार है।
4. बड़ा मन, पांव चल दिये में विपर्यय है।
5. सम्भार शब्द का साज-सज्जा के लिए नवीन प्रयोग किया गया है।

एक दिन सहसा सिंधु अपार
लगा टकराने नग तल क्षुब्ध।
अकेला यह जीवन निरुपाय
आज तक घूम रहा विश्रब्ध।
यहां देखा कुछ बलि का अन्न
भूत-हित रत किसका यह दान!
इधर कोई है अभी सजीव
हुआ ऐसा मन में अनुमान।।

प्रसंग– जलप्लावन के वेग के कारण सर्वत्र जल ही जल दिखता था। जल की लहरें पर्वत की तलहटी से टकराने लगीं और उन्होंने पर्वत को हर ओर से घेर लिया। ऐसे में श्रद्धा को अकेले घूमते-घूमते को अपना जीवन निरुपाय, अकेला प्रतीत हो रहा था। जलप्लावन की भयंकरता से न डर कर श्रद्धा भी मानो किसी को खोज रही थी क्योंकि वह भी अकेली थी।

व्याख्या– श्रद्धा कहती है कि घूमते-घूमते उसने देखा सर्वत्र जल ही जल दिखता था ऐसे में वह भी अकेली बेसहारा घूम रही है किंतु वह भयभीत नहीं है। उसने देखा कि बलि वैश्वदेव-यज्ञ का बचा हुआ अन्न रखा हुआ है और उसी से उसे आश्चर्य भी हुआ कि ऐसे समय में यह अन्न वहां कैसे आया। उसके मन में भी यही विचार आया कि अवश्य किसी ने यहां पर यज्ञ किया है और केवल वही अकेली नहीं है, कोई अन्य भी है, जो जीवित बचा हुआ है तथा यह यज्ञ से बचा हुआ अन्न इसका प्रमाण है। स्नानादि के समान बलि वैश्वदेव

स्वाभाविक है।

विशेष

1. अत्यंत सरल भाषा में प्रलय के बाद के दृश्य का संकेत है।
2. प्राणियों के कल्याण निमित्त ही कोई व्यक्ति यज्ञ करता है।
3. स्वयं भोजन करने से पहले वह अन्न को जगत हित में दान करता है।
4. उसी अन्न को देखकर श्रद्धा ने किसी के जीवित होने का अनुमान लगाया।
5. अनुप्रास अलंकार है।

तपस्वी, क्यों इतने हो क्लांत!
वेदना का यह कैसा वेग?
आह! तुम कितने अधिक हताश!
बताओ यह कैसा उद्वेग!
हृदय में क्या है नहीं अधीर,
लालसा जीवन की निःशेष!
कर रहा वंचित कहीं न त्याग
तुम्हें, मन में धर सुंदर वेश!

प्रसंग– श्रद्धा मनु को तपस्वी कहकर संबोधित करती है और उनकी आकुलता-व्याकुलता का कारण पूछती है। मनु के मन की व्याकुलता देखकर वह उसकी तपस्या को उचित नहीं मानती है। क्योंकि विनाश का दृश्य देखने पर निराशा होती है। पुनःनिर्माण की आशा भी आवश्यक है।

व्याख्या– श्रद्धा मनु से पूछती है कि वे क्यों व्याकुल हैं। क्यों उनके मन में यह व्याकुलता है, वे किस कारण दुखी हैं? श्रद्धा के अनुसार जीवन तो आशामय है तो वहां निराशा का क्या काम। वह मनु से पूछती है कि क्या उनके मन में जीने की अभिलाषा ही नहीं रही है? दुःख के कारण जीवन का त्याग ही श्रेयस्कर लग रहा होगा, लेकिन ऐसी अवस्था में निराश होना या जीवन से विमुख होना स्वयं को धोखा देने जैसा है। वह मनु की वेदना का कारण जानना चाहती है। वह उन्हें जैसे समझ ही नहीं पा रही है। निराशा में वैराग्य की भावना आकर्षित करती है, 'त्याग के सुंदर वेष' से इसी ओर संकेत है। परंतु दुःख से जन्मी निराशा का वैराग्य अनुचित ही होता है, उसके द्वारा 'आनंद' रूप ब्रह्म या मोक्ष को तो पाया ही नहीं जा सकता।

विशेष

1. अति सरल रूप से श्रद्धा मनु की व्याकुलता का कारण जानना चाहती है।
2. संदेह अलंकार एवं अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया गया है।
3. स्नेह के मार्ग में सरलता आवश्यक है।

दुःख के डर से तुम अज्ञात
जटिलताओं का कर अनुमान,

काम से झिझक रहे हो आज,
भविष्यत् से बनकर अनजान।
कर रही लीलामय आनन्द,
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी से सब होते अनुरक्त।

प्रसंग– श्रद्धा मनु को जीवन के प्रति आसक्ति जगाने के लिए प्रेरित कर रही है। श्रद्धा के अनुसार जब विराट चेतना ही लीला में आनंद ले रही है तब अज्ञात कठिनाइयों से डर कर इच्छाओं से क्यों विमुख हो रहे हो।

व्याख्या– श्रद्धा मनु से कहती है कि भविष्य में आनेवाली कठिनाइयों के नाम से ही उन्हें डर क्यों लग रहा है? बिना सोचे समझे जीवन से विमुखता उचित नहीं है। जीवन तो आनंद का धाम है। जलप्लावन से हुए विनाश को देखकर जो क्षोभ हुआ है यह तो धोखा है। जब प्रकृति स्वयं विनाश के पश्चात पुनः निर्माण में व्यस्त हो जाती है तो मानव को उससे प्रेरणा लेकर नव जीवन आरंभ करना चाहिए। शाक्त दर्शन के अनुसार शक्ति ही सारी सृष्टि के मूल में है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश उसी के आधार पर रहते हैं। शक्ति के बिना उनका भी कोई अस्तित्व नहीं है। इस संसार में सभी परिवर्तनशील हैं और यही जीवन का आधार है। शक्ति का 'इ' हट जाने पर 'शिव' भी शव हो जाता है।

विशेष

1. नारी का शांति व प्रेरणा दायक रूप प्रस्तुत किया गया है।
2. शक्ति ही सृष्टि की सृजन कर्ता है।
3. दुःख से नहीं घबराना चाहिए वे तो क्षणिक होते हैं।

दुख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात;
एक परदा यह झीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात।
जिसे तुम समझे हो अभिशाप।
जगत की ज्वालाओं का मूल;
ईश का यह रहस्य वरदान
कभी मत जाओ इसको भूल।

प्रसंग– सुख दुःख एक दूसरे के पूरक हैं जैसे दिन के बाद और रात के पश्चात दिन का आगमन होता है उसी प्रकार दुःख के बाद सुख भी आता है। दुःख के पश्चात ही सुख की अनुभूति होती है। दुख अभिशाप नहीं वरन वरदान है। उसके बाद ही सुख का मूल्य ज्ञात होता है। उसी से सुख का अनुभव भी होता है।

व्याख्या– प्रलय के कारण मनु के जीवन में विरक्ति आ गई है और वे जीवन के प्रति उदासीन हो गए हैं। श्रद्धा उन्हें दर्शन व तर्क से समझाती है कि जैसे रात्रि के बाद प्रभात का

आना तय है उसी प्रकार दुख के बाद सुख का आना भी अनिवार्य है। दुख से ही सुख का जन्म होता है। यह तो प्रकृति का नियम है। आकाश के नीले व झीने आवरण के पीछे ऊषा की लालिमा छिपी होती है, जो अत्यंत शीतल व सुखदायी होती है। श्रद्धा ने रोयें वाला नीलवर्ण का मेढ़ों की खाल वाला वस्त्र पहना हुआ है जिसमें उसका सुंदर व निर्मल शरीर छिपा हुआ है। जो आशा का प्रतीक है।

दुख के पर्दे को नीला इसलिए कहा गया है क्योंकि वह अंधकार व कालिमा का प्रतीक है क्योंकि रात में नीला आकाश भी काला प्रतीत होता है। श्रद्धा कहती है कि तुमने जिस दुख को अपना अभिशाप समझ लिया है वह तो सुख का जन्मदाता है। बिना दुख के सुख का मूल्य समझ नहीं आता। अत्यंत महीन पर्दे के पीछे क्या छिपा है, यह सबको दिखाई देना चाहिए परंतु ईश्वर के आकाश रूपी सर्वाधिक पारदर्शी पर्दे के पीछे छिपा भविष्य बिल्कुल दिखाई नहीं देता, अतः यहां विरोधाभास है।

विशेष

1. सरल भाषा का प्रयोग है।
2. विरोधाभास अलंकार है।
3. गंभीर भाव है।
4. सुख दुख जीवन के अभिन्न अंग हैं।

विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पंदित विश्व महान;
यही सुख दुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।
नित्य समरसता का अधिकार,
उमड़ता कारण जलधि समान;
व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुख मणिगण द्युतिमान।

प्रसंग– समरसता के सिद्धांत का परिचय प्रसाद ने विषमता के माध्यम से कराया है। जब सुख दुःख का अनुभव होता है तो वह समय अत्यंत मधुर हो जाता है इसलिए इसे "भूमा वै सुखम्" कहा गया है विषमता से ही नव-सृजन होता है। जैसे सागर अंदर से शांत और ऊपर से अशांत अर्थात विषम होता है उसी प्रकार दुःख में ही सुख का जन्म और विकास संभव है। सृष्टि का भी यही नियम है।

व्याख्या– सुख और दुःख की विषमता का ही परिणाम है कि संसार में जीवन और जीवनक्रम चलता ही रहता है। यदि जीवन में सुख ही सुख होगा तो दुःख का अनुभव कैसा होगा यह जानना कठिन हो जाएगा, और उसी प्रकार केवल दुख ही दुख होगा तो सुख का मधुर अनुभव नहीं होगा। इसीलिए दोनों का जीवन में होना विकास का परिचय है। दुख में ही मानव सुख पाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहेगा। सृष्टि का विकास होगा तभी सभ्यता का विकास होगा। यही आदिकाल से होता आया है। इससे यही सिद्ध होता है कि सुख और दुःख दोनों ही वरदान

हैं। ऊपर से देखने पर लगता है कि यह जीवन की समरसता है लेकिन इसके मूल में गंभीरता और शांति है। जिस प्रकार नील सागर में लहरें उठती हैं लेकिन उसके बीच में चमकते हुए जल कण मणि समान लगते हैं। इसी प्रकार जीवन के आंदोलन में सुख भी छिपा रहता है। प्रकृति व विकृति के संयोग से उत्पन्न इस संसार के मूल में परमात्मा रूपी चित् तत्व सर्वदा शांत रहता है। जीव भी उसी का अंश है अतः उसे उसी से प्रेरणा लेनी चाहिए।

विशेष

1. विषमता और समरसता के सिद्धांत को प्रतिपादित किया गया है।
2. सुख दुख जीवन को मधुरिम बनाते हैं।
3. सागर ऊपर से अशांत होता है किंतु अंदर से बेहद शांत होता है।
4. सागर की लहरें नीली होते हुए मणियों की आभा बिखेरती है।
5. सुख दुःख सृष्टि के आधार हैं।
6. मनुष्य दुखों से घबराता है और सुखों के पीछे भागता है।

कबीर के अनुसार– सुख में सुमिरन सब करें, दुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय।।

लगे कहने मनु सहित विषाद
मधुर मारुत से ये उच्छ्वास
अधिक उत्साह तरंग अबाध
उठाते मानस में सविलास।
किंतु जीवन कितना निरुपाय
लिया है देख नहीं संदेह।
निराशा है जिसका परिणाम
सफलता का यह कल्पित गेह।

प्रसंग– श्रद्धा द्वारा नवजीवन की प्रेरणा देने पर मनु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे पुनः दुखी हो उठे। श्रद्धा के उपदेशात्मक वचन सुनकर मनु में आशा का तनिक भी संचार नहीं हुआ और वे उसी दुखी अवस्था में पहुंच गए।

व्याख्या– श्रद्धा के प्रेरक वचन सुनकर मनु के जीवन में उत्साह की उत्पत्ति तो हुई पर वह क्षणिक थी। मनु ने कहा कि श्रद्धा के मधुर वचनों से उनके हृदय में उत्साहवर्धक शक्तिशाली लहरों का प्रादुर्भाव तो हुआ परंतु वे पुनः कर्म करने के लिए स्वयं को असमर्थ पा रहे हैं। उनमें वह साहस नहीं है। उन्हें लगता है जीवन में कोई भी अपना नहीं है और न ही कोई सहायता करता है। सभी स्वार्थी हैं। उसमें कोई संदेह नहीं है कि मानव जीवन ही नहीं, संपूर्ण प्राणी जीवन असहाय है। केवल आशा की किरण की सभी प्रतीक्षा करते हैं अंत में निराशा ही हाथ आती है। जीवन की सफलता की तुलना कल्पना एवं घरौंदे से की गई है जिसे बच्चे अपने बचपन में मिट्टी के ढेर से बनाते हैं पर वे अधिक देर तक नहीं टिकते और धराशायी हो जाते हैं। किंतु वे साहस करके पुनः दूसरा घरौंदा बनाने लगते हैं। यही स्थिति मानो जीवन

की है जीवन की सफलता कल्पना का घर तो बनाती है परंतु वह कल्पना ही रहती है। यथार्थ रूप देने के लिए कर्म करना पड़ता है।

विशेष

1. भाषा सरल है यद्यपि तत्सम शब्दों का चयन किया गया है।
2. दार्शनिकता का पुट है।
3. जीवन की क्षणभंगुरता प्रकट की गई है।
4. निराशा ही आशा पर हावी होती है।
5. उपमा, श्लेष तथा सांगरूपक अलंकार है।
6. मनु की निराशा-आशा में मंथन करती है।

कहा आगंतुक ने सस्नेह
अरे तुम इतने हुए अधीर!
हार बैठे जीवन का दांव,
जीतते मर कर जिसको वीर।
तप नहीं केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद।
तरल आकांक्षा से हैं भरा।
सो रहा आशा का आह्लाद।

प्रसंग– श्रद्धा के उपदेशात्मक वचन सुनकर मनु निराश ही हुए। उनके अनुसार जीवन ही व्यर्थ है, परंतु श्रद्धा कब मानने वाली थी। उसने पुनः समझाया पुरुष एक बार साहस खो सकता है परंतु नारी बार-बार उत्साहवर्धन करके उसे कर्म पथ पर प्रेरित करती है। श्रद्धा आशावान है, निराशा नहीं अपनाती है। आर्य कन्या है जो कर्म तथा भोग के सिद्धांत को मानती हैं। वह पुनः मनु को कर्मयोगी बनने की ओर प्रेरित करती है।

व्याख्या– श्रद्धा ने अत्यधिक प्रेम पूर्ण शब्दों से मनु को समझाया कि वे इतने दुखी और निराश न हों। वह कहती है वीर मनुष्य तो अपना सब कुछ न्योछावर करके भी हार नहीं मानते वे फिर प्रयास करते हैं। सफलता पाने के लिए मनुष्य क्या नहीं करता। फिर मनु उस सफलता से कैसे मुंह मोड़ सकते हैं। आशा पूर्ण जीवन ही सच्चा जीवन है। विनाश लीला से दूर भागने से कुछ नहीं होता है। बैठकर तपस्या करने अथवा केवल ईश्वर से प्रार्थना करने से क्या लाभ? कर्म तो करना ही है। बिना कर्म किये ईश्वर भी सहायता नहीं करते। निराशा इस समय तुम पर बलवती हो रही है लेकिन इच्छा करने से ही नयी आशा का संचार होता है।

विशेष

1. प्रसाद के दर्शन का कविता रूप में सुंदर चित्रण किया गया है।
2. आशावादी भारतीय दर्शन प्रस्तुत किया है।
3. तप नहीं जीवन ही सत्य है।
4. कर्म ही जीवन है।

प्रकृति के यौवन का शृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल।
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र
आह उत्सुक है उनकी धूल।
पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक।
नित्य नूतनता का आनंद
किये हैं परिवर्तन में टेक।

प्रसंग– पतझड़ के पश्चात वसंत आता है पुराने पीले पत्ते गिर जाते हैं और नवीन कोंपल का जन्म होता है। रात के बाद दिन होता है, दुख के बाद सुख भी आता ही है। यह प्रकृति भी परिवर्तनशील है। मनु के उदास मन को सांत्वना देते हुए श्रद्धा प्रकृति के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करती है।

व्याख्या– श्रद्धा कहती है कि केवल स्वयं के विषय में न सोचो। उठो जरा प्रकृति को देखो कैसे पल पल रूप बदलती रहती है। उसकी परिवर्तनशीलता ही सुंदरता को जन्म देती है। जैसे फूल मुरझाकर गिर जाते हैं उनके स्थान पर नवीन कलियां प्रस्फुटित होती हैं और फूल खिलते हैं पुराने पत्ते झड़कर ही नये पत्तों के लिए स्थान बनाते हैं और पेड़ फिर से नवीन रूप धारण कर लेते हैं। जिस प्रकार सांप भी अपनी पुरानी केंचुली (खाल) को उतार फेंकता है इसी प्रकार प्रकृति भी नियत समय पर परिवर्तित होती है। शीत ऋतु के बाद ग्रीष्म ऋतु उसके बाद वर्षा ऋतु फिर शरद ऋतु और फिर वसंत ऋतु आती है। पुराने पौधे नवीन रूप धारण करते हैं। इनके विनाश को देखकर निराशा होती है किंतु पुनः आशावान होकर पुनर्निर्माण के लिए उद्यत होना ही जीवन है।

विशेष

1. सरल भाषा का प्रयोग किया है।
2. पुरातन को छोडकर नवीनता का संदेश है।
3. परिवर्तन ही जीवन है।
4. अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

दब रहे हो अपने ही बोझ
खोजते भी न कहीं अवलंब।
तुम्हारा सहचर बनकर क्या न
उऋण होऊं मैं बिना विलंब!
समर्पण लो सेवा का सार
सजल संसृति का यह पतवार।
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत विकार।

प्रसंग– मनु को प्रेरणादायक उपदेश देने से जब मनु पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा तब

श्रद्धा का निश्छल प्रेम जाग उठा और उसने मनु के समक्ष सहचर बनने का प्रस्ताव रखकर समर्पण कर दिया। प्रेम का वही रूप उत्कृष्ट माना गया है जिसमें प्रेम का प्रथम प्रस्ताव नायिका द्वारा हो, इसी के अनुरूप 'श्रद्धा' द्वारा समर्पण का यह प्रस्ताव है।

व्याख्या– श्रद्धा मनु से कहती है कि अकेलापन और जीवन में निराशा तुम पर हावी होते जा रहे हैं और तुम उसमें अपना अस्तित्व खोते जा रहे हो। तुम्हें एक साथी की आवश्यकता है जो तुम्हारे अकेलेपन को दूर कर सके। मैं तुम्हारी वह संगिनी बनने को प्रस्तुत हूं जो तुम्हारा यह रिक्त हृदय पल्लवित कर सकती है। मैं तुम्हारा जीवन-पर्यंत साथ दूंगी। मेरा भी यही कर्तव्य है कि मैं तुम्हें कर्म की ओर, जीवन की ओर, प्रेरित करूं। अब विलंब उचित नहीं है। मैं तुम्हारे प्रस्ताव की भी प्रतीक्षा किए बिना स्वयं-समर्पण करती हूं। समर्पण ही सेवा है और संसार रूपी सागर को पार करने के लिए समर्पण की पतवार आवश्यक है। यही समर्पण नारी का स्वभाव है और धर्म भी है। वह कहती है कि मैं तुम्हारी जीवन-संगिनी, सहचरी बनना चाहती हूं ताकि हम एक हो जाएं।

विशेष

1. सरल भाषा है।
2. अनुप्रास अलंकार है।
3. समर्पण की भावना है।
4. भारतीय नारी का सेवा भाव है।
5. भाषा और भाव में माधुर्य है।

दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास।
हमारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ।
तुम्हारे लिए खुला है पास।
बनो संसृति के मूल रहस्य
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल।
विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुंदर खेल।

प्रसंग– श्रद्धा नारी सुलभ स्वभाव का वर्णन करते हुए आत्म समर्पण करती है और मनु को सृष्टि क्रम चलाने का संदेश देती है। श्रद्धा का मनु के प्रति पूर्ण समर्पण, जो सृष्टि के विस्तार के लिए आवश्यक है, उसे दर्शाया गया है।

व्याख्या– श्रद्धा अपने हृदय में समाहित सारी संवेदनाएं जैसे दया, स्नेह, ममता आदि मनु को समर्पित करते हुए कहती है कि ये सभी नारी सुलभ गुण हैं और इन्हें प्राप्त करके पुरुष भी पूर्ण होता है और जीवन में सफलता को प्राप्त करता है, वह कहती है कि उसके हृदय में रत्नों (भावों) का भंडार है जो अब मनु के लिए न्योछावर है। वह स्वयं को समर्पित करते हुए कहती है वह एक आदर्श पत्नी के सभी कर्तव्यों का पालन करेगी। वह एक आदर्श पत्नी बनना चाहती है। जो अपने पति के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होती है और सभी कर्तव्यों व

धर्मों का निर्वाह करती है। वह मनु से कहती है कि उसके और मनु के सुंदर मिलन से सुंदर मानव-जाति का निर्माण होगा। मानवता की सुगंधित बेल से संसार भी सुगंधमय हो जाएगा। इस प्रकार सुंदर मानव का विकास होगा।

विशेष

1. सरल भाषा है।
2. भावों में गांभीर्य है।
3. श्लेष, उपमा, रूपक अलंकार है।
4. नारी सुलभ गुणों का वर्णन है।
5. एक सुंदर मानवता का संदेश है।

और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान
"शक्तिशाली हो, विजयी बनो"
विश्व में गूंज रहा जय गान।
डरो मत अरे अमृत संतान
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि;
पूर्ण आकर्षण जीवन केंद्र
खिंची आवेगी सकल समृद्धि।

प्रसंग– श्रद्धा द्वारा पूर्ण समर्पण के पश्चात भी मनु चुप रहते हैं किंतु श्रद्धा फिर भी निराश नहीं होती है और मनु का ध्यान विधाता (ईश्वर) के वरदान की ओर आकर्षित करती है। श्रद्धा के अनुसार मानो ईश्वर यही आकाशवाणी करते हैं कि शक्तिशाली हो और विजयी बनो। श्रद्धा मनु का ध्यान उसी ओर दिलाती है।

व्याख्या– श्रद्धा कहती है कि मनु को आकाशवाणी सुनाई नहीं दे रही है कि तुम शक्तिशाली हो और विजय पर चलो, समस्त विपत्तियों का सामना करो और आगे बढ़ो। वह कहती है कि तुम देव पुत्र हो। तुम किस कारण भयभीत हो, तुम्हारी उन्नति होगी। जीवन में आकर्षण होगा तो विश्व की सारी विभूतियां स्वयंमेव ही तुम्हारे पास आ जाएंगी। तुम अमृत की संतान हो और जो अमृत पथ के अनुयायी होते हैं उनके पास सभी सुविधाएं भी आ जाती हैं। सद्गुणों के आने पर समृद्धि का भी अभाव नहीं रहता। जैसे तालाब या झील को पानी एकत्र करने के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता है, वर्षा ऋतु में पानी स्वयं एकत्र हो जाता है और झील तालाब भर जाते हैं, उसी प्रकार शान्ति संपन्न व्यक्ति न केवल विजय का भागी होता है अपितु सभी विभूतियां उसे प्राप्त हो जाती हैं।

विशेष

1. सरल व सुगम भाषा का प्रयोग किया है।
2. तत्सम शब्दों का प्रयोग है।
3. विश्व कल्याण के लिए शक्तिशाली व कर्मठ बनने का संदेश है।

4. जीवन में आकर्षण के महत्व को दर्शाया गया है।

विधाता की कल्याणी सृष्टि
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण;
पटें सागर, बिखरें ग्रह पुंज
और ज्वालामुखियां हो चूर्ण।
उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प
कुचलती रहे खड़ी सानंद;
आज से मानवता की कीर्ति
अनिल, भू-जल में रहे न बंद।

संग– प्रलयकारी जलप्लावन ने सब ओर विनाश ही विनाश कर दिया था अनेक वालामुखियों को भी जन्म दे दिया था। ग्रह-समूह एकत्र हो गए थे पर्वत समाप्त हो गए थे, र्वत्र जल ही जल दिखता था। संसार में वायु-पृथ्वी और जल एक ही स्थान पर एकत्र हो या है। प्रकृति की विनाशलीला का उल्लेख करते हुए श्रद्धा का हृदय भी द्रवित हो गया था कंतु फिर भी वह आशावान थी और चाहती कि सृष्टि का पुनः निर्माण हो और वायु और ल का जो आधिपत्य छा गया था वह समाप्त हो इन्हीं विनाशकारी तत्वों के विनाश से सृष्टि ा पुनः निर्माण हो।

ाख्या– श्रद्धा चाहती है कि ब्रह्मा जो सृष्टि के सृजन कर्ता हैं उनकी इस कल्याण भरी ष्टि का पुनःनिर्माण हो। सर्वत्र जल ही जल हो गया है वहां थल का पुनःनिर्माण हो। जो नक्षत्रों ा समूह एकत्रित हो गया है वह फिर से छिन्न भिन्न हो जाए और उनकी विनाशक शक्ति ा विनाश हो। विनाशकारी तत्व नवीन सृजनकारी तत्वों का रूप धारण करें। मानवता ालजयी हो और कल्याणकारी हो। अनेक स्थानों पर जो ज्वालामुखियों का जन्म हो गया है ह नष्ट हो जाएं। पांचों महाभूत सृष्टि के निर्माणार्थ पुनः उद्घाटित हों, ऐसी कामना की ई है।

शेष

1. सरल भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है।
2. भाव अत्यंत गंभीर हैं।
3. भारत की मानवतावादी विचारधारा प्रस्तुत की है।
4. विश्व व्यापी मानव-उत्थान की कामना है।
5. विश्व कल्याण और सद्भावना की कामना है।

जलधि के फूटें कितने उत्स
द्वीप, कच्छप डूबे उतराएं;
किंतु वह खड़ी रहे दृढ़ मूर्ति
अभ्युदय का कर रही उपाय।
विश्व की दुर्बलता बल बने

पराजय का बढ़ता व्यापार
हंसाता रहे उसे सविलास
शक्ति का क्रीड़ामय संचार।

प्रसंग– जलप्लावन आए और उनसे कितनी भी उथल-पुथल हो जाए किंतु मानव उनसे विचलित न हो, उन्नति के मार्ग पर सदैव अग्रसर रहे। कवि के अनुसार मानवता इतनी सुदृढ़ हो जाए कि प्राकृतिक आपदाएं उसके मार्ग में अवरोध न पैदा कर सकें।

व्याख्या– कवि के अनुसार संसार में चाहे कितने झरने भर जाएं, पृथ्वी पर जल ही जल हो जाए, पृथ्वी के अंश उनमें कछुओं के समान डूबने उतरने लगे किंतु मानवता पर इनका कोई दुष्प्रभाव न पड़े। मानव अडिग होकर मूर्ति समान अचल होकर इनमें खड़ा रहे और उन्नति के मार्ग पर सदैव सक्रिय रहे। आध्यात्मिक उन्नति भौतिक उन्नति के साथ-साथ चले।

कवि प्रसाद का अध्यात्म पर पर्याप्त अधिकार था। भौतिकता के समर्थक अध्यात्म को अपनी बाधा मानते हैं किंतु प्रसाद के अनुसार वे आध्यात्मिक होते हुए भी वे भौतिक उन्नति के भी समर्थक थे इसीलिए संसार की भौतिक उन्नति की भी कामना करते हैं।

जीवन में कितनी भी कठिनाइयां आए मानव उनसे घबराकर कमजोर न पड़े अपितु उनसे बल प्राप्त करके शक्तिवान बनें। पराजय में भी विषाद ग्रस्त न हो उसमें विजय भावना का संचार बना रहे और वह सदा आनंद मग्न रहे। जीवन में पराजय से जीत की प्रेरणा लेना आवश्यक है। कठिनाइयों से ही प्रेरणा मिलती है और यत्न करते जाना होता है उससे अपनी शक्ति की कमजोरियों का भी आकलन होता है और फिर उन्हीं से उन पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा भी मिलती है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। तभी हमें इनसे लड़ने की योग्यता प्राप्त होती है। यही उन्नति के शिखर पर भी पहुंचाती है।

विशेष

1. भाव गांभीर्य है।
2. आध्यात्मिक भाव है।
3. जीवन के प्रति आस्था और विश्वास है।
4. पराजय से प्रेरणा लेना मुख्य संदेश है।
5. बाधाओं से विचलित न होकर उन पर विजय पाकर अग्रसर होना जीवन का ध्येय है।

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय।
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाए।

प्रसंग– मानव ने जल विद्युत का विकास करके उसका शक्ति रूप में अन्वेषण किया है, अणु-परमाणु एवं एलैक्ट्रांस को विकसित करके अपनी भौतिक शक्ति का विकास किया है। शक्तियों का आविष्कार या विकास हो लेकिन उनमें समन्वय भी आवश्यक है क्योंकि जब

वे एकत्रित हो जाती हैं तभी शक्तिवान होती हैं। बिखराव में वे शक्तिहीन हो जाती हैं या घातक भी हो जाती हैं। उनके जुड़ जाने में ही लाभ है और वे जीवनोपयोगी हो जाती हैं।

व्याख्या– शक्ति या विजय के कण अशक्त होकर बिखरे पड़े हैं। मानव को चाहिए कि वह उन्हें एकत्रित करके एक सूत्र में पिरोए और उनकी शक्ति बढ़ाए। एक प्रकार से श्रद्धा मानव जाति को यह संदेश दे रही है कि भावना और बुद्धि का सही तालमेल हो जाए तो क्या नहीं हो सकता? वह केवल राग तत्व का ही प्रतीक नहीं है। उसके विचारों में मौलिकता है। वे विचार सुदृढ़ और प्रेरणादायक हैं। विचार तभी सुदृढ़ होते हैं जब उनमें हृदय भावना भी सम्मिलित हो। श्रद्धा का चरित्र विश्वास पूर्ण और कर्म भावना से ओतप्रोत है।

विशेष

1. व्यक्ति में समन्वयवादी भावना होनी चाहिए।
2. भौतिक और बौद्धिक भावना मिलकर विजय पथ का निर्माण करती है।
3. श्रद्धा, भावना, शक्ति, आदर्श एवं विवेक का प्रतीक बनकर उभरी होती है।
4. तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

गतिविधि

प्रसाद व भारतेंदु युगीन नाटकों का अध्ययन कर भारतेंदु व प्रसाद की नाट्य शैली लेखन की विविधता पर प्रकाश डालिए।

क्या आप जानते हैं?

जयशंकर प्रसाद जी की रचना 'कामायनी' को सुमित्रानंदन पंत 'हिंदी में ताजमहल के समान' मानते हैं।

4.7 सारांश

जलप्लावन के पश्चात मनु अपने एकाकी जीवन से दुखी अवस्था में एक पर्वत शिखर पर बैठे हुए थे कि अचानक गंधर्व लोक की कन्या भ्रमण करती हुई उनके पास आती है। वह मनु को चिंतित देखकर उनके विषय में जानना चाहती है। मनु को जीवन के प्रति निराश और विरक्त होने पर वह मनु को प्रेरणा देते हुए कहती है कि जीवन मूल्यवान है और अपनी शक्ति के अनुसार उसे पहचानो, निराशा को भूलकर जीवन पथ पर पुनः अग्रसर हो आओ।

श्रद्धा जीवन के सुख दुख से परिचित कराती है और मनु की सहायता करना चाहती है। यद्यपि मनु अपना साहस खो बैठे थे, किंतु वह हार नहीं मानती। वह प्रकृति के परिवर्तन का भी संदेश देती है। वह भावनाओं और बुद्धि दोनों के मेल से प्रगति की प्रेरणा देती है।

श्रद्धा मानव जाति की कल्याण भावना से ओत-प्रोत है और उसकी उन्नति के लिए सतत प्रयास भी करती है। कामायनी एक रूपक, एक प्रतीक के रूप में रचा गया महाकाव्य है। इस काव्य की कथा का वर्णन करते हुए दृश्य अंकित होने लगता है। कामायनी के पात्रों

के चरित्र-चित्रण में सश्लिष्टता और प्रतीकात्मकता सर्वत्र विद्यमान है। इसका कथानक मूल रूप से ऐतिहासिक है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रसाद कृत कामायनी एक अनुपम महाकाव्य है। इसकी कथा इतिहास व पुराणों से प्रेरित है जिसे आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है।

4.8 मुख्य शब्दावली

- **स्फुरण** : अंकुरित होना
- **वैवस्वत** : मनु संबंधी
- **उत्तुंग** : सबसे ऊंचे
- **द्विअर्थक** : दो अर्थ वाला
- **अप्रस्तुत** : जो प्रस्तुत नहीं हो
- **अप्रत्यक्ष, प्रतिबिंब** : प्रतिच्छाया
- **विभावरी** : रात्रि
- **लावण्य** : सुंदरता
- **मधुकर** : भंवरे
- **महाश्वेत** : अतिधवल, सफेद
- **मधु धाराएं** : शहद/मिठास की धाराएं
- **सलज्ज** : लज्जा/शर्म के साथ
- **अरुणोदय** : ऊषाकाल
- **किंकर्त्तव्यविमूढ़** : क्या करूं ऐसा समझ पाने में असमर्थ
- **अरण्य** : जंगल
- **अन्योन्याश्रय** : परस्पर, एक दूसरे के सहारे
- **गात** : शरीर
- **अनुरक्त** : लीन
- **अस्ताचल** : पश्चिम का वह कल्पित पर्वत जिसके पीछे सूर्य का अस्त होना मान जाता है

4.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. छायावादी युग का।
2. सर्वात्मवाद दर्शन में।

3. श्रीधर पाठक ने।
4. स्वातंत्र्य।
5. (i) अनुभूति की प्रधानता।
   (ii) कल्पनाशीलता।
6. कामायनी का।
7. नवजागरण की।
8. पं. जवाहरलाल नेहरू का।
9. ई.एस. रॉस की।
10. व्यंजना शब्दशक्ति पर।
11. 'बीती विभावरी जाग री' शीर्षक गीत।
12. विषमता रहित समाज की स्थापना करना।
13. सर्गबद्ध रचना को।
14. 'इड़ा' को।
15. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का।
16. इड़ा के पास।
17. 'प्रकृति' से।
18. कामायनी।
19. 'मेटाफर' तथा 'एलिगरी'।
20. बौद्धिकता का।
21. मानव मन में उत्पन्न हुए विरोध का।
22. आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित होने पर।

4.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. 'वेदना की परिणति' का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।
2. जल प्लावन के बाद मनु की क्या दशा हुई?
3. श्रद्धा ने मनु के जीवन में क्या परिवर्तन किया?
4. कामायनी का मुख्य रस कौन सा है

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. जयशंकर प्रसाद के काव्य में प्रस्तुत छायावादी काव्य मूल्यों का वर्णन कीजिए।

2. 'प्रसाद का काव्य राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना का द्योतक है' – मूल्यांकन कीजि

3. महाकाव्य के गुणों के आधार पर कामायनी का वर्णन कीजिए।

4. कामायनी का आधुनिक संदर्भ में क्या महत्व है? विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

5. कामायनी की प्रतीक योजना की विवेचना कीजिए।

6. सप्रसंग व्याख्या कीजिए :

(क) "दुख की पिछली रजनी बीच....
कभी मत जाओ इसको भूल।"

(ख) "प्रकृति के यौवन का शृंगार.....
किये हैं परिवर्तन में टेक।"

(ग) "शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त.....
विजयिनी मानवता हो जाए।"

4.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. नंददुलारे वाजपेयी, *जय शंकर प्रसाद*, लोकभारती प्रकाशन।
2. *प्रसाद का संपूर्ण काव्य*, राजकमल प्रकाशन।
3. विमल शंकर नागर, *प्रसाद की काव्य प्रतिभा*, हिंदी बुक सैंटर।
4. शारदा शर्मा, साहित्य में नारी, हिंदी बुक सैंटर।
5. सुशीला भारती, *कामायनी इतिहास और रूपक*, हिंदी बुक सैंटर।
6. सुरुचि मिश्र, *कामायनी का भाषीय औदात्य*, हिंदी बुक सैंटर।
7. विश्वंभर मानव, *कामायनी की टीका मूल पाठ सहित*, हिंदी बुक सैंटर।
8. *कामायनी में अलंकृति और अर्थसौष्ठव*, हिंदी बुक सैंटर।
9. हरिचरण शर्मा, *कामायनी विमर्श*, हिंदी बुक सैंटर।

इकाई 3 सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' एवं महादेवी वर्मा

3.0 परिचय

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' छायावाद के चार स्तम्भों में से एक हैं। इनका जन्म 21 फरवरी, 1896 को हुआ। निराला जी एक कवि होने के साथ-साथ एक प्रमुख उपन्यासकार, निबंधकार और कहानीकार थे। इन्होंने कई रेखाचित्र भी लिखे। 'निराला' के पिता का नाम पं. रामसहाय था। यह मेदिनीपुर जिले में सरकारी नौकरी करते थे। निराला जी की शिक्षा बंगाली माध्यम से हुई। हाईस्कूल उत्तीर्ण करने के उपरांत इन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन अपने घर पर ही किया। निराला जी स्वच्छंद प्रकृति के व्यक्ति थे। संगीत से इन्हें बेहद लगाव था। सन् 1918 से 1922 तक निराला जी ने महिषादल राज्य की सेवा की। उसके उपरांत संपादन, स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य किया। यद्यपि निराला खड़ी बोली के कवि थे परंतु ब्रज व अवधी भाषा में भी कविताएं लिखा करते थे। निराला का रचना क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। यथा–

कविता संग्रह – परिमल, अनामिका, गीतिका, कुकुरमुत्ता, अणिमा, तुलसीदास, आराधना, अर्चना आदि।

उपन्यास – अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, चमेली आदि।

कहानी संग्रह – चतुरी चमार, शुकुल की बीवी, सखी, लिली, देवी।

निबंध संग्रह – प्रबंध-परिचय, प्रबंध-प्रतिभा, बंगभाषा का उच्चरन, प्रबंध पद्म, चाबुक, चयन, संघर्ष आदि।

अनुवाद – आनंद मठ, विष-वृक्ष, कृष्णकांत का वसीयतनामा आदि।

पुराण कथा – महाभारत

पं. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की रचना 'राम की शक्ति पूजा' को साहित्य में महाकाव्य की श्रेणी में रखा गया है। छायावाद काल में रचित इस रचना में छायावादी विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं। भाषा में ओज की प्रधानता है तथा संपूर्ण रचना अलंकारों से युक्त है। 'राम की शक्ति पूजा' पौराणिक साहित्य से प्रभावित अवश्य है परंतु इसमें राम के मानवीय स्वरूप का वर्णन किया गया है। यह खंड काव्य प्रमुख रूप से राम व रावण के बीच युद्धकाल में राम की मनोदशा का वर्णन है, जिसे कुछ विद्वानों ने स्वयं निराला के जीवन संघर्ष का वर्णन कहा है। 'राम की शक्ति पूजा' को महाकाव्यों की शैली पर किया गया एक नूतन प्रयोग कहा गया है।

हिंदी साहित्य में निराला रचित शोकगीत 'सरोज स्मृति' अपने आप में एक निराली रचना है। यह कवि ही नहीं अपितु पिता के हृदय की चीत्कार है जो अपनी एकमात्र पुत्री के निधन के पश्चात व्यक्त हुई है। सरोज स्मृति का ऐतिहासिक महत्व है। इसमें महाकवि निराला ने अपनी पुत्री के माध्यम से व्यथा, करुणा तथा संघर्ष का मार्मिक चित्रण किया है। प्रस्तुत इकाई में हम निराला की 'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' कृतियों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- निराला जी के काव्य वैशिष्ट्य का विस्तृत अध्ययन कर पाएंगे;
- लंबी कविता की परंपरा के स्वरूप का अध्ययन कर पाएंगे;
- लंबी कविता की परंपरा के अंतर्गत 'सरोज-स्मृति' का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- 'राम की शक्ति पूजा' के प्रतिपाद्य का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- निराला के काव्य शिल्प का विश्लेषण कर पाएंगे।

5.2 निराला का काव्य–वैशिष्ट्य

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' छायावाद के चार प्रमुख स्तंभों में अपना विशेष स्थान रखते हैं। उनका व्यक्तित्व सरल किंतु स्वाभिमान से भरपूर था, अपने जीवन की विविध व विषम परिस्थितियों को पाकर निराला के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था, इतने पर भी वे शक्ति, साहस, ओज के कवि थे जो अपने बाह्य जीवन के वातावरण में जागरुक चेतना के साथ गतिशील रहे। निराला के काव्य वैशिष्ट्य को जानने के लिए उनके व्यक्तित्व एवं परिवेश को समझना समुचित होगा। निराला का जन्म मेदिनीपुर परिक्षेत्र में महिषादल (बंगाल) में हुआ था। जन्म के तीन वर्ष पश्चात उनकी माता का देहावसान हो गया। मां के अभाव से ही जीवन में उन्होंने आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ा किंतु परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने पर निराला ने कई प्रकार के संघर्षों का सामना आजीवन किया। व्यक्तिगत जीवन एवं साहित्यिक जीवन में अनेक बार उन्होंने परंपराओं को तोड़ने की शुरुआत की जहां उस वक्त उन्हें कई आलोचनाओं का शिकार भी होना पड़ा। उनके काव्य-संग्रह इस बात का पर्याप्त प्रमाण देते हैं। उनकी काव्य-यात्रा में छायावादी प्रभाव से लेकर रहस्यवाद तथा प्रगतिवादी स्वर देखने को मिलते हैं जिनका विवेचन अग्रलिखित है–

राष्ट्रीय भावना

निराला के काव्य में राष्ट्रीय भावना सांस्कृतिक नवजागरण एवं राष्ट्रभक्ति के रूप में प्राप्त होती है। भारतीय जनमानस में अपने अतीत के प्रति गौरव को जगाने की प्रवृत्ति निराला काव्य में पर्याप्त रूप से मिलती है, उनके उद्‌बोधन गीत भारतीय स्वाधीनता के पक्षधर बनते हैं–

जागो फिर एक बार!
पशु नहीं, वीर तुम,
समर-शूर, क्रूर नहीं,
काल-चक्र में ही दबे
आज तुम राज-कुंवर! समर-सरताज!

कवि ने स्वाधीनता की कामना को दैवीय शक्ति की वंदना के माध्यम से भी व्यक्त किया है। जब वे कह जाते हैं–

एक बार बस और नाच तू श्यामा
सामान सभी तैयार, कितने ही हैं असुर
चाहिए तुझको कितने हार।

वहीं दूसरी ओर निराला बड़े ही विनत भाव से भारत के लिए वीणावादिनी सरस्वती मां से यह कामना करते हुए भी मिल जाते हैं–

वर दे, वीणावादिनी वर दे!
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे।

निराला की 'जागो फिर एक बार' नामक कविता स्वाधीनता संग्राम में आड़े आने वाली ताकतों को झकझोर डालती है। राष्ट्रप्रेम की भावना ने उनके क्रांतिकारी एवं ओजस्वी व्यक्तित्व को सामने लाकर रखा है।

विद्रोही स्वर

निराला की कविताएं समाज एवं साहित्य की रूढ़ मान्यताओं एवं परंपराओं का विरोध करती हुई मिलती हैं, यह उनकी स्वछंद वृत्ति का ही परिणाम है। उन्होंने स्वयं कहा है, "हिंदी में समझ वाला युग अभी नहीं आया। इसलिए नये साहित्य का विरोध होता है। रूढ़ियों से अभी जनमस्तिष्क पूर्ववत जकड़ा हुआ है, रूढ़ियों पर बार-बार प्रहार द्वारा इसकी शृंखला तोड़ देनी है।" निराला ने परंपरावादी छंदों को त्यागकर मुक्त छंदों को कविता के लिए आवश्यक माना, वे अनुभूति व भावनाओं की मुक्ति की बात भी कहते हैं। इसके पीछे उनका साहसी व्यक्तित्व रहा है जो अनेक तरह की आलोचनाओं को सहने के बावजूद अपनी सोच एवं कर्म में अडिग रहा है। निराला ने छायावादी कविता को अपनी इसी सोच के कारण उत्कृष्ट कला प्रदान की। उनकी कविताएं साहित्य की स्वतंत्रता व नवीनता की सृष्टि करती है, व्यक्तिगत जीवन में भी पारिवारिक स्तर पर उन्होंने परंपरा के विद्रोही रूप का मार्ग अपनाया है। अपनी पुत्री सरोज की स्मृति में लिखी कविता 'सरोज स्मृति' में यह रूढ़ि परंपरा का विरोध कई स्तर पर स्पष्ट हुआ है जैसे–

तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम,
लग्न के; पढ़ूंगा स्वयं मंत्र
यदि पंडित जी होंगे स्वतंत्र।

प्रकृति चित्रण

निराला के काव्य में प्रकृति के नव-नव रूप प्राप्त होते हैं। प्रकृति का आलंबन व उद्दीपन रूप उनके यहां प्राप्त होता है, प्रकृति का मानवीकृत रूप विशेष महत्वपूर्ण है। इनकी 'बादल राग' कविता छः भागों में विभाजित है। एक उदाहरण देखिए–

ऐ निर्बन्ध!
अन्ध-तम-अगम-अनर्गल-बादल!
ऐ स्वच्छन्द!
मन्द चंचल-समीर रथ पर उच्छृंखल!

निराला ने अपनी प्रिय ऋतु वसंत का वर्णन तो किया ही है साथ ही अन्य ऋतुओं को भी उन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया है जिसमें वर्षा, ऋतु के विविध प्राकृतिक चित्र हैं, इसके अतिरिक्त 'जूही की कली' कवि की सुप्रसिद्ध रचना है, इसमें प्रकृति के साथ एक प्रकार के रागात्मक संबंध की कल्पना की गई है व कली रूपी नायिका के हाव-भाव प्रस्तुत हुए हैं; जैसे–

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल-तनु तरुणी-जूही की कली

ग्राम्य-प्रकृति पर भी निराला ने कई गीत लिखे हैं जहां सहज, निश्छल सौंदर्य की परिकल्पना की गई है। प्रकृति वर्णन के प्रसंगों में सौंदर्य एवं वेदना के भी चित्र प्राप्त होते हैं। निराला का मानना है कि "कलाकार की कल्पना जिस भाव को सौंदर्य के माध्यम से ग्रहण करती है वह सत्य है और अनुभूति की सच्चाई तो सब दिन सुंदर होती है।"

रहस्यवाद एवं दार्शनिकता

निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' व 'तुलसीदास' कविताओं के माध्यम से अपने दार्शनिक भावों को व्यक्त किया है। छोटी कविताओं में 'तुम और मैं' कविता ब्रह्म एवं जीव के संबंधों को प्रकट करती है। रहस्यवाद, यह सर्वात्मवाद को साथ लेकर चलता है और इसे छायावादी कविता स्वीकार भी करती है। निराला भी एक अद्वैतवादी हैं। स्वामी विवेकानंद के वेदांती-सिद्धांतों से वे अत्यधिक प्रभावित थे। दार्शनिक मनोवृत्ति रखने वाले निराला की कविता कुछ इस प्रकार है–

कहां?
मेरा अधिवास कहां?
क्या कहां? रुकती है गति जहां?

निराला 'गीता' के कर्मवाद से भी प्रभावित थे। 'अध्यात्म-फल' नामक कविता में देखिए–

जब कड़ी मारें पड़ीं, दिल हिल गया
पर न कर चूं भी कभी पाया यहां

मार्क्सवाद एवं प्रगतिवादी स्वर

निराला की 'विधवा', 'भिक्षुक', 'बहू', 'कुकुरमुत्ता', 'दीन' इत्यादि कविताओं में सामाजिक व्यवस्था और आर्थिक विषमताओं की समस्याओं को उभारा गया है। उन्होंने दीन-दुखियों, जाति व छुआछूत की समाप्ति के सवालों को उठाया है और एक आदर्श राष्ट्र की सोच को सामने रखा है, यह उनकी प्रगतिशील चेतना की स्थितियां हैं। मानवतावादी संदर्भों में उन्होंने ग्रामीण जन, सामान्य जन व शोषित जनों के कारुणिक चित्रों को सामने रखा है। उनकी कविता 'तोड़ती पत्थर' में निहित प्रगतिवादी स्वर की पंक्तियां हैं–

वह तोड़ती पत्थर
मैंने देखा उसे इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर

× × ×

चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता रूप

हास्य व्यंग्य की स्थिति

निराला की 'कुकुरमुत्ता' कविता में व्यंग्य की तीव्र स्थितियां प्राप्त होती हैं। 'गुलाब' को इस कविता में काफी लताड़ा गया है व कहीं-कहीं पर उसके वजूद की दयनीय स्थितियों को रखकर पूंजीपति का असली चेहरा दिखाया है, जहां व्यंग्य की स्थिति बनी हुई है–

अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू रंग-ओ-आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपीटलिस्ट!

इसी कविता में हास्य भी है–

मुझसे मूछें, मुझसे कल्ला
मेरे लल्लू, मेरे लल्ला

'मास्को लायलाग्स', 'गर्म-पकौड़ी', 'महंगू महंगा रहा', 'डिप्टी साहब', आदि कविताएं व्यंग्य-बोध के अंतर्गत आती हैं जहां यथार्थ चित्रण एवं सामाजिक-बोध है। उनके व्यंग्य का अपना एक तेवर है और साहसपूर्ण अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार निराला का काव्य वैशिष्ट्य जहां सरलतम व सहज विषयों को उठाता है वहीं दूसरी ओर निराला तर्कपूर्ण, राष्ट्रीय एवं ओजपूर्ण विषयों को भी लेकर आते हैं। उनके भीतर एक ऐसा कवि विद्यमान था जो साहित्य की स+हित भावना के संस्कार को लेकर छायावाद से प्रगतिवाद तक अपने हस्ताक्षर करता चला है। उनकी कविता की विशेषताओं को समझने के लिए उनकी काव्यगत चेतना एवं प्रयोजन को समझना अनिवार्य है।

5.3 लंबी कविता की परंपरा और 'सरोज-स्मृति'

हिंदी कविता के इतिहास में ऐसी कई कविताएं प्राप्त होती हैं जो आकार में प्राय: लंबी रही हैं, जिनको पढ़ने में अधिक समय लगता है तथा जिनका संदर्भ परस्पर जुड़ा रहता है। आधुनिक काल की कविताओं में ऐसी कविताएं हैं जिनमें सुमित्रानंदन पंत की कविता 'नौका विहार' एवं 'परिवर्तन' का नाम आता है, अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' कविता भी इसी प्रकार लंबी कविता है। स्वयं निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' एवं कुकुरमुत्ता जैसी लंबी कविताएं हिंदी काव्य जगत को सौंपी हैं। मुक्तिबोध की कविता 'ब्रह्मराक्षस' तथा धूमिल की 'मोचीराम' कविता भी इसी लंबी कविताओं की परंपरा में आती हैं। इन लंबी कविताओं में अनुभूतिगत संवेदना की गहराई से निहित रहती है। इन कविताओं में या तो वर्णनात्मकता प्रमुख होती है अथवा ऐसी स्थितियां भी होती है जहां कवि अपनी गहन-गूढ़ संवेदना को पाठक तक पहुंचने की कामना करे। इन कविताओं का सच यह है कि कवि पूरी ईमानदारी के साथ कलात्मक प्रयोग करते हुए अपनी अभिव्यक्ति किसी एक मूल विषय पर केंद्रित कर देता है।

शोकगीत अंग्रेजी के 'एलिगरी' का पर्याय है। पाश्चात्य साहित्य में 'एलिगरी' विधा को अति प्राचीनकाल में स्थान मिल चुका है। पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से ही यह भारत में आया। हिंदी में 'एलिगरी' को शोकगीत, करुणगीत, विलासिका आदि कहा गया है। शोकगीत का विषय वियोग, युद्ध अथवा मृत्यु कुछ भी हो सकता है। इसमें करुणा या शोक की प्रधानता होती है। पाश्चात्य साहित्य में इसी प्रकार का शोक गीत अंग्रेजी कवि ग्रे का 'कंट्री चर्च यार्ड में लिखा शोकगीत' है। कीट्स की मृत्यु पर कवि शैली द्वारा लिखी कविता 'एडोनायस' तथा 'लेसाइड्स' इसी प्रकार के प्रसिद्ध शोकगीत हैं।

हिंदी में लम्बी कविता की पारंपरिक पृष्ठभूमि

हिंदी साहित्य में लम्बी कविताओं की परंपरा की दृष्टि से पंत की रचना 'परिवर्तन' (1923) हिंदी की प्रथम लम्बी कविता मानी जाती है। इसके बाद प्रसाद की 'प्रलय की छाया' (1933) और यहां प्रासंगिक कवि निराला की 'राम की शक्ति पूजा' (1937) का स्थान है। नई कविता काल में नरेश मेहता की रचना, 'समय देवता' (1951) अस्तित्व में आई। इसके बाद, एक के बाद एक लम्बी कविताएं प्रकाश में आई।

प्रबंधात्मक लम्बी रचनाओं में असाध्य वीणा (अज्ञेय, 1961), अंधेरे में (मुक्तिबोध, 1964), सिसिफ बरक्स हनुमान (बच्चन, 1965), अलविदा (विजय देवनारायण साही, 1966), शब्दों की वाणी (श्रीराम वर्मा, 1967), आत्महत्या के विरुद्ध (रघुवीर सहाय, 1967), चीरफाड़ (भारतभूषण अग्रवाल, 1968), फिर वही लोग (रामदरश मिश्र, 1969) और तलधर (प्रमोद सिन्हा, 1970) आदि अहम है। इसी क्रम में राजकमल चौधरी की रचना 'मुक्ति प्रसंग' तथा धूमिल की 'पटकथा' भी उल्लेखनीय है। लम्बी कविताओं के इतिहास में हिंदी के प्रसिद्ध कवि बाबा नागार्जुन का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने 'चन्दना' और 'नेवला' सरीखे रचनाएं कर अभिव्यक्ति को प्रबंध की प्रगतिशील विशेषताओं से युक्त बनाया। पंत, प्रसाद और निराला ने भी लम्बी भावभूमि की प्रस्तुति के लिए महाकाव्य या खण्डकाव्य का आश्रय न लेकर लम्बी प्रबंध कविता शैली का चयन किया।

वैज्ञानिक युग में कवि प्रत्येक मोड़कर किसी न किसी घटना का साक्षात्कार करता है और कोई न कोई अनुभूति प्राप्त करता है। इस प्रकार उसके पास अनुभूत-सत्यों की विशाल मात्रा एकत्र हो जाती है। ऐसे में जब वह रचना करने बैठता है तब प्रायः एक ही रचना में बहुत सारे अनुभव व्यक्त कर देना चाहता है। स्पष्ट है कि इसके लिए लघु रचना पर्याप्त नहीं हो सकती। अतः रचना स्वतः ही लम्बी कविता का रूप ग्रहण करने लगती है। इसीलिए लम्बी कविता की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

निराला के हृदय में तीव्र ग्लानि रही कि वे अपनी बेटी के लिये धनाभाव के कारण कुछ न कर सके। वे मानते थे धनोपार्जन का उपाय उन्हें मालूम था परंतु उस मार्ग के अनर्थों व अत्याचारों से वे भयभीत थे। इन्हीं भावों को उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त किया है।

"धन्ये मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका।
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित-काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर
शुचिते, पहनाकर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दधिमुख।

लम्बी कविता में 'सरोज-स्मृति' की महत्ता

सरोज स्मृति एक शोक गीत है जिसे निराला ने अपनी पुत्री सरोज की असमय मृत्यु के उपरांत लिखा है। 9 अक्तूबर, 1935 को पुत्री सरोज की अकाल मृत्यु के पश्चात निराला को जिस प्रकार वेदना व अभाव ने घेरकर रखा उसी भावना को लेकर यह लंबी कविता लिखी गई है। उस समय उनकी पुत्री अट्ठारह वर्ष ही पूर्ण कर पाई थी, इस लंबी कविता को लिखने के पीछे कवि की कई परिस्थितियां रही हैं। निराला अपने जीवन में आरंभ से ही कई प्रकार के भौतिक एवं दैवीय कष्टों से जूझते रहे सर्वप्रथम पारिवारिक सदस्यों की सिलसिलेवार मृत्यु तदुपरांत अर्थाभाव एवं सरोज की मृत्यु ने उन्हें झकझोर कर रख डाला, उन्होंने इसी कविता में एक स्थान पर लिखा है–

मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल
दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूं आज जो नहीं कही।

वास्तव में इस कविता में दुख केंद्रीय भाव में व्यक्त हुआ है। अपनी पुत्री को 'गीते' कहकर सम्बोधित करने के पीछे पुत्री के अट्ठारह वर्ष के उपरांत मृत्यु वरण कर लेना है यहां गीता के अट्ठारह अध्यायों की पूर्णता के समान ही पुत्री के जीवन-समय को जोड़ा गया है, जो लम्बी कविता की परंपराओं में दुलर्भ है। उदाहरणार्थ है–

गीते, मेरी तज रूप-नाम,
वर लिया अमर शाश्वत विराम,
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय

यह कविता भावुकता ही नहीं प्रकट करती वरन इसमें निराला ने अपने जीवन की असफलताओं को व्यक्त किया है तथा पुत्री के जीवनक्रम से जुड़ी घटनाएं यहां निहित हैं। असफलता संदर्भित जीवन के कड़वे पक्ष की अभिव्यक्ति विरल ही मिलती है। भारतीय जीवन के संस्कार, विवशताएं पिता व पुत्री के माध्यम से उजागर होते हैं। अपने जीवन की सच्चाइयों को स्वीकार करने का साहस निराला के व्यक्तित्व का ही ईमानदार रूप है–

धन्य, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका।

कवि की मानसिक अवस्था का चित्रण 'सरोज स्मृति' कविता में प्राप्त होता है जहां कवि की अभिव्यंजना बहुत करुणासिक्त बन पड़ी है। स्वयं निराला के व्यक्तित्व के विविध पहलुओं को इस कविता में देखा जा सकता है। उनमें स्पष्टवादिता प्राप्त होती है। एक ओर जीवन की कटु अनुभूतियों ने निराला को भावुक बना दिया है तो वहीं दूसरी ओर उन्हीं कटु अनुभूतियों को पाकर निराला अपने स्वभाव एवं कर्म से विद्रोही रूप में भी दिखाई देते हैं। स्वयं कान्यकुब्ज कुल में उत्पन्न होने पर उन्होंने बगैर किसी लगाव के यहां तक कह दिया–

इस विषम बेलि में विष ही फल,
यह दग्ध मरुस्थल–नहीं सुजल।

सरोज स्मृति एक 'विलाप गीत' (स्मृति गीत) है। यह व्यक्तिगत वियोग की श्रेणी में आता है जिसका साम्य अन्यत्र दुर्लभ है। शोक गीत की परंपरा में यह अपनी तरह का अनुपम शोक गीत है जिसे कवि ने अपनी पुत्री के वियोग में लिखा है इससे अलग अपनी प्रेयसी अथवा पत्नी को लेकर शोक गीत विश्व साहित्य में प्राप्त हो रहे हैं।

सरोज नव यौवना थी, उसकी इस अवस्था का चित्रण पिता से अधिक कवि रूप में जिस प्रकार निराला ने प्रस्तुत किया है व साहित्य-जगत में अपनी अलग पैठ रखता है–

कर पार, कुञ्ज-तारुण्य सुधर
आई, लावण्य-भार थर थर
कांपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर

निराला ने माना है कि सरोज उनके जीवन के लिए कितनी अमूल्य थी। सरल व सहज पंक्तियों में यह भाव कुछ इस प्रकार व्यक्त हुए हैं–

ले चला साथ मैं, तुझे कनक
ज्यों भिक्षुक लेकर, स्वर्ण-झनक

निराला की इस कविता में सरोज के बाल्यकाल से लेकर अंतिम प्रयाण तक की स्थितियां हैं। सरोज का मातृविहीन होना, अपनी नानी के घर रहना, बाल्योचित व्यवहार का वर्णन, विवाह से जुड़ा कार्यक्रम; एक पिता की आंतरिक मनःस्थिति एवं बाह्य संघर्षरत वातावरण के माध्यम

में प्रकट हुआ है। इस प्रकार पारिवारिक जीवन के चित्र प्राप्त होते हैं, पिता की मनोवैज्ञानिक स्थितियां भी इंगित हुई है। सभी तरह की परिस्थितियों के बावजूद एक संघर्षरत किंतु काल का भी कवि ने विद्रोह किया है।

निराला ने पिता के साथ-साथ सरोज की मां से जुड़े उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने में भी कोई कमी नहीं की। कविता के अंतिम पड़ाव में विवाह समय में वे बताते हैं कि–

मां की कुल शिक्षा मैंने दी,
पुष्प-सेज तेरी स्वयं रची।

सरोज ससुराल तो चली गई परंतु अल्पकाल में ही विधवा हो गई और सदा-सदा के लिए पिता के पास वापस चली आयी। सरोज टूट चुकी थी और उसकी चिंताओं ने बीमारी का रूप धारण कर लिया। अर्थाभाव के कारण पिता 'निराला' ठीक से इलाज न करवा सके और अंततः सरोज परमपिता परमात्मा की गोद में चली गयी। भाग्यहीन पिता की बुढ़ापे की लाठी परमात्मा ने छीन ली। निराला ने अपनी पीड़ा को दो वर्ष बाद व्यक्त करते हुए लिखा–

"हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म रहे नत सदा माथ
इस पथ पर मेरे कार्य एकल
हों भ्रष्ट शील के से शतदल
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण!

निराला ने विवाहोपरांत हुई सरोज की मृत्यु के लिए 'महामरण', 'आलोक-वरण', 'अमर शाश्वत विराम', 'कर गई पार' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हुए स्वयं के पितृ-वात्सल्य को ही नहीं प्रकट किया है, अपितु हिंदी जगत में सरोज को सदैव के लिए अमर किया है। निराला की इस लंबी कविता में उनके संगीत का ज्ञान एवं लगाव भी दृष्टिगत होता है। निराला शास्त्रीय संगीत का ज्ञान रखते थे। अपनी पुत्री में भी वह इसी संस्कार को पाकर प्रसन्न होते हैं–

बन जन्मसिद्ध गायिका, तन्वि,
मेरे स्वर की रागिनी वाहिल

भाषा की दृष्टि से भी निराला की यह कविता अतुलनीय है। भावात्मक शैली में लिखी इस कविता में कवि ने स्वनिर्मित नवछंदों का सर्जन किया है। करुण रस प्रधान है। कविता के आरंभ में ही भाषा का शुद्ध-साहित्यिक-तत्सम प्रधान रूप प्राप्त होता है जैसे–

चढ़ मृत्यु-तरणि पर तूर्ण-चरण
कह-पितः, पूर्ण-आलोक-वरण।

'सरोज स्मृति' कविता भाषा के परिष्कृत रूप में व्यक्त कविता है, छायावादी प्रभाव है। रूपक की छटा बिखरती है। पारिवारिक सदस्यों के संवादों से कथा विवरणात्मक काव्य की कोटि में आती है, वाक्य छोटे किंतु सार्थक हैं–

कुण्डली दिखा बोला-"ए-लो"
आई तू, दिया, कहा-"खेलो।"

करुण के हास्य एवं व्यंग्य के भाव को लाये बिना कवि की कविता आगे नहीं बढ़ती है। निराला का हास्य व व्यंग्य को लाने का भाव भी प्रसंग में सहायक ही बनता है–

चमरौंधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर-गन्ध

कविता का अत्यंत साधारण कलेवर है जहां एक पिता की अपनी संतान की आवश्यकताओं की पूर्ति मुख्य कामना रहती है वह भी अपूर्ण रह जाने पर अभिव्यक्ति का धरातल किस करुणाद्र बन जाता है। इस रचना में वह सब व्यक्त है। करुणा का भाव मुख्य है किंतु हास्य व व्यंग्य के अंश आने पर यह करुणा बाधित नहीं होती है। इसको श्री बच्चनसिंह के शब्दों में समझा जा सकता है, "प्रसंगवश दो विरोधी रसों-करुण और हास्य के एक रचना में आने से कोई बाधा नहीं पड़ती, रसों का उपयोग चरित्र के विकास के लिए किया जाता है। स्वयं रस केवल शास्त्र की वस्तु है। ...रस स्वयं साध्य नहीं है, वह चरित्रों की उद्धारना में साधन बनता है।"

वेदना और विपन्नता से सम्बद्ध इस काव्य रचना के अंत में कवि की एक ऐसी मनोदशा भी प्राप्त होती है, जब वह कर्मों के द्वारा सरोज का तर्पण करने का प्रयास करता है। भौतिक जगत में वह अपने उत्तरदायित्वों को पूर्णतया सफल रूप में संपादित करने में स्वयं को अक्षम पाता है किंतु मनोवैज्ञानिक स्तर पर वह उन्हें पूर्ण करने के उपक्रम में तर्पण कार्य को पूर्ण करता है। निश्चित रूप से यह कविता कवि के भाव एवं कला रूप का विरल उदाहरण है।

सरोज स्मृति शोकगीत ही नहीं वरन् आत्मकथा भी है। समाजिक व्यंग्य का प्रतीक यह शोकगीत कान्यकुब्जों व रूढ़ियों पर करारा प्रहार भी करता है। निराला ने एक स्थान पर लिखा है–

"ये कान्यकुब्ज-कुल कुलांगार,
खाकर पत्तल में करें छेद,
इनके कर कन्या, अर्थ खेद
इस विषम बेलि में विष ही फल
है दग्ध मरुस्थल-नहीं सुजल।

इसी संदर्भ में डॉ. रमेश कुंतल का कथन है–

"इस रचना में कई आलोचनाशील (क्रिटिक्स) मिलते हैं जो सामाजिक सांस्कृतिक अंतर्विरोधों को प्रकट करते हैं पहला और सर्व प्रमुख आलोचनाशील आर्थिक है। समर्थ कवि उन अनर्थ आर्थिक पक्षों को नहीं पकड़ता। अत: वह निरर्थक रह जाता है। दूसरी कलात्मक आलोचना-कला-कौशल-प्रबुद्ध प्रमाण दिए हैं किंतु उसे हिंदी का स्नेहोपहार उपेक्षा और निरानंद (रस से विहीन) संपादकों से उदासीनता ही मिलती है। तीसरा वर्गगत आलोचनाशील है जिसमें कान्यकुब्ज कुलांगारों के पाखंड और दंभ का भंडाफोड़ हुआ है। चौथा आलोचनाशील रूढ़ियों का है। कवि अपने पूर्व जगणों की राह चलना चाहता है। किंतु प्राचीन भार को पूर्ण रूपेण नहीं ढो सकता।"

'सरोज स्मृति' आधुनिक हिंदी भाषा की एक श्रेष्ठ उपलब्धि है।

"उनविंश पर जो प्रथम चरण

तृतीय खंड में हनुमान अपने प्रभु राम का कष्ट देख नहीं पाते और एकादश रुद्र को धरकर अट्टहास करते हुए महाकाश में पहुंच जाते हैं। महाविनाश की आशंका से भयभीत शंकर, शक्ति को सजग करते हैं और वह अंजना का रूप धारण कर हनुमान को झिड़कती है। अंजना की फटकार सुन हनुमान प्रभु राम की स्थिति से अंजना को अवगत कराते हैं।

चतुर्थ खंड में विभीषण राम को शक्ति से अवगत कराते हैं तथा जामवंत शक्ति की आराधना करने को कहते हैं। पंचम खंड में राम शक्ति की आराधना में लीन हो जाते हैं। नौ दिन में रात के दूसरे पहर में दुर्गा राम का कमल चुरा कर ले जाती हैं। जब राम आंख खोलते हैं तो पाते हैं कि कमल तो गायब है अब पुष्प कैसे अर्पित करें। अगर उठते हैं तो पूजा खंडित हो जाती है। तभी उन्हें अपनी मां के शब्द याद आते हैं कि वे उन्हें कमल नयन कहा करती हैं। राम सोचते हैं कि दो में से एक नयन निकाल कर वह उसे अर्पित कर देंगे। ऐसा सोच कर वह बाण पकड़ कर दायीं आंख निकालने को उद्यत होते हैं तभी देवी प्रकट होती है और राम का हाथ थाम लेती है और 'होगी जय', 'होगी जय' कहकर शक्ति राम के वदन (मुख) में लीन हो जाती है।

राम की शक्ति पूजा पौराणिक साहित्य से प्रभावित है जिसके प्रेरणा ग्रंथ 'देवी भागवत' शिव महिमा स्रोत तथा बांग्ला के 'कृतिवास' प्रमुख हैं।

पं. कृतिवास ओझा ने 15वीं शताब्दी में 'बांग्ला रामायण' लिखी थी। इसमें रावण को काली के कृपा पात्र के रूप में दिखाया गया है। इसके अनुसार राम रावण से सीता का उद्धार करने को लेकर चिंतित थे तब विभीषण रामचंद्र को चंडी की आराधना करने को कहते हैं। राम की शक्ति पूजा कृतिवास से सर्वाधिक प्रभावित एवं प्रेरित है। कृतिवास के अनेक वर्णन 'राम की शक्ति पूजा' से मिलते-जुलते हैं-

साधु साधु साधक धीर, धर्म धन जन्य राम!
कह लिया भगवती ने, राघव का हस्त थाम।

–राम की शक्ति पूजा

चक्षु उपाड़िते रमा बसिला साक्षाते
हेन काले कात्यायिनी धरि लेने हाते।

–कृतिवास

कुछ आलोचकों का कहना है कि निराला की 'राम की शक्ति पूजा' रचना महाकाव्य के स्तर की है। उनकी इस कविता में प्रसिद्ध कथानक, महान चरित्र तथा भव्य शैली आदि महाकाव्य के समान ही मिलते हैं। जो किसी काव्य को महाकाव्य बना देने की सामर्थ्य रखते हैं। कुछ अलोचकों ने महाकाव्य न मानते हुए भी इसे महाकाव्य की गरिमा वाला काव्य स्वीकारा है। आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी इसे महाकाव्योचित नहीं मानते। उनका कहना है-

"एक महाकाव्य के नायक में जिस उदात्त तथा उच्च कोटि की गरिमा का होना आवश्यक है वह इस रचना के नायक में नहीं मिलती। उन्होंने इसे 'गाथा काव्य' कहा है जिसे निराला ने गाथा की भूमि से उठाकर महाकाव्योचित गाम्भीर्य देना चाहा है। 'गाथा काव्य' में लोक विश्वासों की प्रचुरता, अतिरंजना के चमत्कार और अलौकिकता की योजना रहा करती है। ये सभी योजनाएं 'राम की शक्ति पूजा' में हैं। परंतु उसके साथ ही शक्ति पूजा को असाधारण गाम्भीर्य देने की चेष्टा की गई है।

इस रचना को महाकाव्य कहना उचित ही होगा क्योंकि इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता महाकाव्यधर्मिता है। अपने सीमित रूप एवं आयाम में भी यह रचना महाकाव्य का महाप्राणत्व धारण किये हुए है। 'राम की शक्ति पूजा' के राम उदात्तता के परिणामस्वरूप अत्यधिक प्रभावित करते हैं। राम की मानवीय दुर्बलताएं उनके चरित्र को मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी बनाती हैं। 'राम की शक्ति पूजा' राम के वैयक्तिक चित्रण के साथ-साथ निराला के व्यक्तित्व का भी परिचायक है।

'राम की शक्ति पूजा' निराला के जीवन का प्रतिबिंब भी है। जहां सरोज स्मृति में निराला की वैयक्तिकता का तथ्य प्रत्यक्ष कथ्य में वर्णित है वहीं दूसरी ओर 'राम की शक्ति पूजा' में उसकी अप्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्ति मिलती है।

इस विषय में डॉ. रमेश कुन्तल मेघ ने लिखा-''जाहिर है कि सब चौंक पड़ेंगे यदि मैं बेसाख्ता यह कह दूं कि निराला की 'राम की शक्ति पूजा' बेशक 'सरोज स्मृति' का रूपांतर तथा विस्तार है बस, परिवेश (मिथकीय वातावरण बनाम वातावरण) और घटना (राम-रावण युद्ध बनाम युवा बेटी सरोज की मत्यु में) अदल-बदल हो गई है।"

'राम की शक्ति पूजा' वस्तुपरक काव्य है जिसमें निराला की आत्म-चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। जैसी प्रतिज्ञा राम ने सीता को रावण से मुक्त कराने के लिए की उसी प्रकार निराला ने कविता को बंधनमुक्त करने के लिए की थी।

''धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिए ही किया शोध।''

राम का उक्त कथन सहृदय भाव-विभोर हो वेदना और विषाद से भर जाता है तथा राम के संघर्ष के साथ ही निराला के जीवन का संघर्ष भी प्रस्तुत हो जाता है। मुक्त छंद में लिखी गई निराला की कविताओं को प्रारंभ में आलोचकों, संपादकों तथा प्रकाशकों ने महत्व नहीं दिया था। संपादकों तथा प्रकाशकों ने उनकी कविताओं को 'प्रकाशन योग्य नहीं' या 'स्तरीय नहीं' कहकर नकारात्मक रुख भी अपनाया था जिससे क्षुब्ध होकर निराला विषाद से भर उठे थे। राम की भांति निराला कभी हारे नहीं। संघर्ष की कठिनाइयां मानव को सबल एवं सशक्त बनाती हैं। निराला का व्यक्तित्व राम की भांति ही अपराजेय है। तीन वर्ष की अवस्था में मां चल बसी फिर पिता, पत्नी, भाभी, भाई एक-एक करके महाप्रस्थान कर गए। इकलौती पुत्री सरोज के अट्ठारह वर्ष की अल्पायु में मृत्यु हो जाने से वे पूर्णतः टूट गए थे। बीमारी तथा आर्थिक संकट के बावजूद निराला जीवन के अंतिम क्षणों तक संघर्ष करते रहे। उन्होंने कभी पराजय नहीं स्वीकारी। राम के समान उनके पास भी अपराजेय, दैन्य को कभी न स्वीकारने वाला दिल था।

''वह एक और मन रहा राम का जो न थका''।

निराला ने राम का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। जिस प्रकार साकेत में उर्मिला के चरित्र को महत्व दिया गया है उसी प्रकार निराला ने राम की शक्ति पूजा में राम के चरित्र को महत्ता दी है। जिस प्रकार वाल्मीकि के राम पुरुषोत्तम तथा तुलसी के राम मर्यादा पुरुषोत्तम साक्षात ब्रह्म है। वहीं निराला के राम सबसे निराले हैं। वे काव्य के नायक राम हैं जिनके चरित्र को उदात्त एवं अनुदात्त दोनों रूपों में चित्रित किया गया है। निराला के राम

मनुष्य की अपूर्णता के भी परिचायक हैं जिनमें दुखों से अधीरता, सौंदर्य के प्रति अनुराग दुःख में आंखों से आंसू आना राम की विशेषता है।

निराला ने आरंभ में राम के योद्धा रूप को चित्रित किया है किंतु जब रावण के साथ युद्ध निर्णायक स्थिति पर नहीं पहुंचा वहां राम का चित्रण चिंतित पात्र के रूप में किया है। जब राम शिविर में पहुंचते हैं तो जटाजूट मुकुट ढीला हो जाता है, उदासी के क्षणों में प्रियतमा की याद सताती है। राम को याद आने लगता है कि किस प्रकार युद्ध में रावण की सहायता हेतु शक्ति प्रकट हुई थीं। रावण विकराल अट्टहास करता है। ऐसे में राम की आंखों से दो बूंद आंसू टपक पड़ते हैं। राम का ऐसा रूप किसी अन्य कवि ने प्रस्तुत नहीं किया है। विभीषण राम को युद्ध करने के लिये प्रेरित करते हैं किंतु राम पर प्रेरणा का कोई प्रभाव नहीं दिखता है-

मित्रवर! विजय होगी न समर
यह नहीं रहा नर-वानर से राक्षस का रण
उतरी पा महाशक्ति रावण से आमंत्रण
''अन्याय जिधर है उधर शक्ति'' कहते छल-छल
हो गए नयन, कुछ बूंद पुनः ढलके दृग जल,

राम की समस्या अन्याय से लड़ना है। शक्ति अन्याय का साथ दे रही है, इसलिए यह बड़ी समस्या है। जांमवंत ने राम को शक्ति-पूजा करने की सलाह दी। शक्ति की पूजा के समय अनेक विघ्न आये, राम निराश भी हुए पर अंततः उन्होंने संघर्ष किया और हार नहीं मानी। राम का यह रूप उस प्रयत्नशील मानव का स्वरूप है जो विषम परिस्थितियों में भी हार नहीं मानता और अंत में विजयी होता है।

निराला ने शक्ति की उपासना के पीछे यह भाव बताया है कि सबसे बड़ी शक्ति आत्म की शक्ति है इसी आत्मिक महाशक्ति को राम के बदन में लीन करवा दिया गया है। राम की आराधना मानव एकाग्रता, अनंत निष्ठा तथा तपस्या जैसे तत्वों की पुष्टि करती है।

इस काव्य का संदेश आशावाद से प्रेरित है। निराला का उद्देश्य अंधकारग्रस्त मानव को आशा का संदेश देकर उसे अंधकार से मुक्त करना है।

राम की क्रांतिकारी पूजा का अवलोकन कर देवतागण भी स्तब्ध रह जाते हैं। संपूर्ण ब्रह्मांड कंपित हो जाता है। दुर्गा राम को वरदान देती हैं-

''होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन!
वह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन!''

निराला ने एक बार कहा भी-

''इसका (राम की शक्ति पूजा) विषय तो पुराना है पर इसकी अदायगी और अनुभव एक दम नया है। 'राम की शक्ति पूजा' की कथा वस्तु प्राक्थन है, संघटन अद्यतन है और प्रभाव नित्य नूतन है।"

निराला जीवन संग्राम में मृत्युपर्यंत संघर्षरत रहे इसलिये अपने आदर्श नायक राम के द्वारा "दैन्यं न पलायनम्" को स्वस्थ एवं कर्म प्रधान मार्ग पर चलने का संदेश दिया। 'राम की शक्ति पूजा' का संदेश मानवता को सर्वांगीण विकास देकर विजयी बनाना है।

5.5 निराला का काव्य शिल्प

निराला की काव्य भाषा शुद्ध साहित्यिक हिंदी है। उनके संपूर्ण काल का अध्ययन करने के पश्चात प्रत्येक सुधि पाठक यह महसूस करता है कि निराला भाषा के प्रयोग के प्रति सजग रहे। भाषा को लेकर मौलिक प्रश्नों का उत्तर उन्होंने अपने प्रबंध-पद्य' और 'प्रबंध-प्रतिमा' के निबंधों में दिया है। प्रतिभा एवं तर्क-शक्ति का उनमें अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। इसी कारण वे रूढ़ि व परंपरा का कई जगह पर अनुपालन नहीं कर पाए। वे अपने जीवन काल में नेहरू, गांधी, विवेकानंद से गंभीर विषयों पर चर्चा करते थे, 'जागो फिर एक बार' कविता का उदबोधन उन्हीं जागरण एवं नवीन ग्रहण के अर्थों में किया है। साहित्य की मूल भावना पर प्रकाश डालते हुए निराला कहते हैं कि "मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं-फिर भी स्वतंत्र। इसी तरह कविता का भी हाल है। मुक्त-काल कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता है, प्रत्युत उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।" ('परिमल' से)

भाषा का प्रारूप

निराला के काव्य में भाषा के मूलतः दो रूप प्राप्त होते हैं। एक है-सरल सहज भाषा जो औसत पाठक की समझ में आती है, दूसरी है समासबहुल क्लिष्ट भाषा, जहां कवि का भाषा शिल्पी रूप सामने आता है। उन्होंने स्वयं भी शब्द-भंडार को बढ़ाया, संस्कृत निष्ठ साहित्यिक भाषा को भी उनके काव्य-संसार में देखा जा सकता है। भाषा के सरल रूप का उदाहरण है–

वह तोड़ती पत्थर,
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।

भाषा का संस्कृतनिष्ठ रूप है–

विधृत-क्षिप्र-कर, वेग प्रखर,
शत शैल सम्वरणशील, नील नभ गर्जित-स्वर

निराला के काव्य में संस्कृत, हिंदी, अरबी-फारसी, अंग्रेजी, उर्दू आदि शब्दों का भी कहीं-कहीं पर प्रयोग मिलता है। 'कुकुरमुत्ता' कविता का उदाहरण दृष्टव्य है–

सर सभी का फांसने वाला हूं ट्रेप
टर्की टोपी, दुपलिया या किश्ती-केप
और जितने, लगा जिनमें स्ट्रा या टेप,
देख, मेरी नक्ल है अंगरेजी हेट।

बिम्ब विधान

निराला की कविताओं का चित्रात्मक भाव बिम्ब सृजन में सहायक है। प्रवाहमय अभिव्यक्ति की स्थिति में बिम्ब उभर कर आए हैं। प्राकृतिक परिवेश के चित्रण में बिम्बों की शृंखला देखते ही बनती है–

(प्रिय) यामिनी जागी।
अलस पकंज-दृग अरुण-मुख-
तरुण-अनुरागी।

उक्त पंक्तियों में रात्रि रूपी नायिका का चित्र दृश्यात्मकता की अनुभूति करता है। इसी प्रकार निराला के यहां एन्द्रिय संवल बिम्ब, गत्यात्मक बिम्बों की भरमार मिलती है, जैसे-

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से-आ वसन्त रजनी

ध्वन्यात्मकता

निराला की कविताओं में आवाज है यह कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी चाहे प्राकृतिक परिवेश के चित्र हो, बादल राग की गर्जना हो, युद्ध की ध्वनियां हो या संगीत अनुरागी कवि के गीत से संबद्ध चित्र हो, ध्वन्यात्मकता बनी हुई है। जो उनकी कलात्मक प्रतिभा एवं कल्पना को भी स्पष्ट करती है जैसे-

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर
राग-अमर! अम्बर में भर निज शोर।

निराला ने शास्त्रीय संगीत की शिक्षा ली अतएव उनके काव्य सुर और ताल से जुड़ी ध्वनियां हैं। 'राम की शक्ति पूजा' कवि की ध्वन्यात्मक शब्दावलियों से भरी पड़ी है। उदाहरणार्थ-

राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह, कुछ-कपि-विषम-हूह

प्रतीक योजना

अपने संदर्भों से जुड़े हुए शब्द प्रतीक हैं जो भावात्मक संवेदना जगाने में सक्षम रहते हैं। निराला काव्य में प्रतीकों का स्तरीय रूप प्राप्त होता है, प्रतीक, भाषा के रूढ़ि अथवा परंपरा वाले अर्थ को नकारकर संदर्भगत अर्थ देते हैं अतएव निराला ने इन्हें स्वीकार किया है। छायावादी कविता में यूं भी प्रतीकों का प्रबल आग्रह विद्यमान है। 'जूही की कली' इनकी सुप्रसिद्ध कविता है, इसमें 'जूही की कली' तथा 'मलय' का प्रतीकार्थ है। 'बादल राग', 'कुकुरमुत्ता' में अनेक प्रतीक आए हैं। प्रतीकों के निर्माण में उन्होंने नव-नव कल्पना को माध्यम बनाया है, प्रकृति का प्रतीकात्मक रूप निराला के काव्य की अन्यतम विशेषता है। 'यामिनी जागी', में यामिनी, 'सिंह की गोद से छीनता रे शिशु कौन?' में सिंह व शिशु तथा कुकुरमुत्ता व गुलाब तथा अनेक प्रकार के प्रतीक निराला के यहां मिलते हैं जो कभी मानवीकृत रूप प्रस्तुत करते हैं और कभी मानसिक अवस्था बताने में सहायक बने हैं। निम्न उदाहरण दृष्टव्य है-

जड़े नयनों में स्वप्न
खोल बहुरंगी पंख विहंग-ये,

मुक्त छंद

मुक्त छंद से तात्पर्य छंदों की शास्त्रीय परंपरा से मुक्ति है। निराला ने इस संदर्भ में अपना स्पष्ट तर्क दिया है कि काव्य में स्वाधीनता-चेतना का स्फुरण होना चाहिए। हिंदी में मुक्त छंद का प्रयोग निराला के द्वारा ही आया। वे काव्य में नवीनता के हिमायती रहे हैं, परंपरागत छंदों में

भावों को बांधने से अनुभूति की पूर्णतया अभिव्यक्ति नहीं होने पाती, यह निराला मानते रहे हैं। मुक्त छंद को निराला ने वेदों की परंपरा से जोड़ा है। मुक्त छंद की व्यवस्था को भी स्वीकार किया है–

देख मुझको, मैं बढ़ा
डेढ़ बालश्त और ऊंचे पर चढ़ा
और अपने से उगा मैं
बिना दाने का चुगा मैं।

शैली विधान

निराला के काव्य में गीति-शैली देखने को मिलती है। जागरण उद्‌बोधन की स्थितियों में ओजपूर्ण शैली निहित है, जैसे : 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास', 'जागो फिर एक बार' तथा 'बादल राग' में मिलती है। भावानुकूल कोमलता पदावली का भी निराला ने प्रयोग किया है। निराला के व्यंग्य चित्रण पर वृहत चर्चा हो सकती है किंतु यहां पर शैली के संदर्भ को लेकर पाठक उनके काव्य में व्यंग्य के कई रूप देख पाता है। यथा–

"अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू, रंग-ओ-आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपीटलिस्ट।

अलंकार योजना

निराला का सर्वाधिक पसंदीदा अलंकार अनुप्रास प्रतीत होता है। यूं तो उनके काव्य में शब्दालंकार के अन्य उदाहरण भी सामान्य तौर पर मिल जाते हैं। अनुप्रास में वर्णों एवं व्यंजनों के साम्य के आधार पर यह प्रयोग मिलता है। ध्वनि के आधार पर भी यह प्रयोग निराला ने अपने काव्य में किया है, जैसे–

कण-कण कर कङ्कण, प्रिय
किण-किण रव किङ्किणी
रणत-रणत नूपुर उर लाज
लौट रंकिणी

उपमा, रूपक, मानवीकरण के उदाहरण निराला के यहां जीवंतता प्रदान करने के साथ-साथ भाव संगति की स्वीकार्यता भी बनाये रखते हैं। उपमाओं को देने की स्थिति में कवि के गूढ़ भाव भी प्रकट होते हैं जो जीवन के सत्य को इंगित करते हैं। 'विधवा' कविता की स्थिति का निम्न उदाहरण दृष्टव्य है–

वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी,
वह दीप-शिखा सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी,
वह टूटे तरू की छूटी लता सी दीन-
दलित भारत की ही-विधवा है।

गीतात्मकता

गीतात्मकता छायावाद की प्रधानतम विशेषताओं में से एक है। निराला संगीत के ज्ञाता थे उनको भी शास्त्रीय संगीत, शब्द व संगीत के योग ने निराला के काव्य को आज भी जीवंत स्मरणीय रखा है। उनके काव्य में लोक गीतों का प्रवाह मिलता है। भावावेग की स्थितियां हैं। प्रेम एवं सौंदर्य की अनुभूतियां हैं। इसके दूसरी ओर निराला के व्यापक व्यक्तित्व के स्तर ने ओज से पूर्ण स्वर भी कविता को प्रदान किए हैं। गीतों के वर्णन में मनोविज्ञान की भूमिका इनके यहां प्राप्त होती है। यहां छोटी से छोटी भावभंगिमा को भी संगीत की लय में पिरोया गया है। प्रकृति वर्णन, पर्व आदि दृश्यों, भक्ति भावमय स्थितियों में गीतों की स्थितियां प्राप्त होती हैं। उदाहरण निम्न प्रकार से है–

वर दे, वीणावादिनी वर दे।
प्रिय स्वतंत्र रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे।

यह मां सरस्वती के प्रति समर्पित गीत हैं, इसके अलावा बादलों को देखकर कवि ने माधुर्य भाव के लिए जिस ब्रजभाषा का प्रयोग किया है वह भी दृष्टव्य है–

धिकमंद, गरजे बदरवा
चमक बिजुली डरपावे,
सुहावे, सघन झर, नरवा
कगरवा-कगरवा।

अतएव समग्र काव्य भाषा के पहलुओं का अध्ययन करते हुए ज्ञात होता है कि निराला भाषा को मात्र बाह्य उपकरण ही नहीं मानते थे बल्कि उसके कलात्मक सौष्ठव के प्रति भी सावधान थे। निश्चित रूप से उन्होंने अपने समय को नई राह देने का प्रयास किया है। उनका काव्य प्रयोजन के साथ अभिव्यक्त हुआ है जिसमें भावुकता-स्वाभाविकता होने के साथ-साथ एक गरिमा भी उपस्थित है।

5.6 पाठांश

महामानव माने जाने वाले छायावाद के प्रमुख कवि निराला की कविता 'सरोज-स्मृति' दरअसल एक शोक-गीत है। निराला की पत्नी का नाम मनोहरा था। बेटा रामकृष्ण एवं बेटी सरोज यही दो बच्चे थे। जब सरोज बहुत छोटी थी तभी उनकी पत्नी का देहांत हो गया था इसलिए बच्चे अपनी ननिहाल में पले। 18 वर्ष की आयु पूर्ण करते ही सरोज की मृत्यु हो गयी। पिता का बेटियों से लगाव गहन संवेदनापूर्ण होता है। निराला अपनी बेटी के वियोग में विह्वल होकर यह रचना करते हैं। इसमें बेटी के जाने का दुख है, जीवन की सफलता-असफलता को लेकर द्वन्द्व पूर्ण अभिव्यक्ति है।

कन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित कर न सका।

निराला की यह अभिव्यक्ति 'ग्लानि' को दर्शाती है। वे इसमें रूढ़िवादी समाज का मखौल उड़ाते हैं। बेटी की मृत्यु पर वे अपने कवि कर्म को शाप देते हैं–'हो इसी कर्म पर वज्रपात, यदि धर्म रहे नत सदा माथ।' निराला अपने गत कर्मों को अर्पित कर सरोज का तर्पण करते हैं।

'दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूं आज जो नहीं कही।'

सरोज को गत कर्म अर्पित कर निराला का अधीर मन विरह की वेदना में तप्त हो जाता है। लिखते हैं–

सरोज स्मृति

उनविंश पर जो प्रथम चरण
तेरा वह जीवन-सिन्धु तरण;
तनये, ली कर दृक्पात तरुण
जनक से जन्म की विदा अरुण!
गीते, मेरी, तज रूप-नाम
वर लिया अमर शाश्वत विराम,
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय,
चढ़ मृत्यु-तरणि पर तूर्ण-चरण
कह–"पितः, पूर्ण आलोक वरण
करती हूं मैं, यह नहीं मरण,
'सरोज का ज्योतिः शरण-तरण!"

अशब्द अधरों का सुना भाष,
मैं कवि हूं, पाया है प्रकाश
मैंने कुछ अहरह रह निर्भर
ज्योतिस्तरणा के चरणों पर।
जीवित-कविते, शत-शत-जर्जर
छोड़ कर पिता को पृथ्वी पर
तू गई स्वर्ग, क्या यह विचार–
"जब पिता करेंगे मार्ग पार
यह, अक्षम अति, तब मैं सक्षम,
तारूंगी कर गह दुस्तर तम?"
कहता तेरा प्रयाण सविनय–
कोई न अन्य था भावोदय।
श्रावण-नभ का स्तब्धान्धकार
शुक्ल प्रथमा, कर गई पार! ।।।।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश निराला द्वारा रचित शोक गीत 'सरोज स्मृति' से लिया गया है। सरोज अठारह वर्ष की आयु पूर्ण होने के बाद मृत्यु का वरण करती है। वह इतना शीघ्र क्यों गई? जाते हुए उसने क्या सोचा? निराला इसी पर विचार करते हुए सरोज की स्मृतियों में डूबते हैं।

व्याख्या–निराला स्मृतियों में अपनी मृत पुत्री सरोज को संबोधित करते हुए कहते हैं–बेटी अठारह वर्ष आयु के पूर्ण कर अभी तूने उन्नीसवें वर्ष में चरण रखा ही था कि इस दीर्घ जीवन समुद्र को पार कर मृत्यु का वरण कर लिया। क्यों बेटी? क्यों तूने अपने पिता से, जन्मदाता से अर्थात मुझ से इतनी शीघ्र विदा ले ली? यह तो ऐसा ही है जैसे सुबह सूर्य उदित हो और रक्तिम आभा से मुक्त युवा होते ही छिप जाए। प्रकृति पर एक दृष्टि डालकर छिप गए बाल रवि की तरह ही तू छिप गयी मृत्यु की ओट में।

बेटी, तू मेरे जीवन का गीत थी। मेरे जीवन की संवदेना और संगीत का, मेरी जिजीविषा का आधार थी। तूने अपने सुंदर रूप और नाम को त्याग कर चिर मृत्यु का वरण कर लिया। संसार के संघर्ष को त्यागकर एक शाश्वत विराम, स्थिरता रूपी मृत्यु का वरण कर लिया। जीवन के अठारह वर्ष तूने पूरी शुचिता, पवित्रता के साथ पूरे कर अपने 'सरोज' नाम को सार्थक किया और अत्यंत शीघ्रता से मृत्यु रूपी नाव पर अपने चरण रखते हुए बोली– "पिता मैं पूर्ण आलोक के उस प्रकाशमान ज्योति स्वरूप ईश्वर के चरणों में शरण ले रही हूं। उस प्रकाशमान का वरण करते हुए इस संसार–सागर से तर रही हूं मुक्त हो रही हूं यह मेरी मृत्यु नहीं, मुक्ति है।"

बेटी तेरे होंठों से कोई शब्द नहीं निकला लेकिन तेरी चुप्पी को मैंने पढ़ा। अशब्द खामोश अधरों के अव्यक्त शब्दों को मैंने पढ़ा। मां सरस्वती के चरणों में रहकर उनकी नित्य सेवा करते हुए मैंने यह योग्यता का प्रकाश पाया है, मैं कवि हूं खामोशी के पीछे छिपे शब्दों को पढ़ सकता हूं। बेटी-तू जीवित कविता थी मेरी....। कविता में जो लयात्मकता, प्रवाह, संवेदनशीलता, स्निग्धता होती है वह सब तुझ में थी इसलिए तू मेरी रचना मेरी जीवित कविता थी। तू अत्यंत शांत भाव से, विनम्रता से चुपचाप इस लोक से चली गई अपने पिता को अकेला छोड़कर। सैकड़ों तीरों से घायल (संघर्ष के, असफलताओं के, दुखों के तीर) अपने पिता को इस पृथ्वी पर अकेला छोड़कर जाने के पीछे और कोई भाव तो मुझे समझ में नहीं आता बस यही लगता है कि तूने सोचा होगा– "एक समय आएगा जब मेरे पिता इस मृत्यु लोक में देह छोड़कर मृत्यु का वरण करेंगे तब वे और अधिक बूढ़े, अधिक कमजोर, अक्षम हो गए होंगे तो उन्हें मृत्यु का यह अंधकार से भरा दुर्गम, कठिन मार्ग पार करने में परेशानी होगी तब मैं जो वहां पहले से उपस्थित रहूंगी, उनका, अपने पिता का हाथ पकड़ उन्हें सहारा दूंगी और वह मार्ग पार कराऊंगी।" तूने अवश्य यही सोचा होगा बेटी...बेटियों को अपने पिता की चिंता बहुत होती है। जब तू गई उस दिन सावन माह के शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि थी और रात्रि का समय था। आकाश अंधकार से भरा और स्तब्ध था। वह अंधकार मेरे जीवन में ठहर गया है बेटी।

विशेष-

- सरोज से पूछे गए प्रश्न और स्वयं कवि द्वारा दिए गए उत्तर में किसी अतिप्रिय के दिवंगत हो जाने पर जो मनःस्थिति होती है उसकी अप्रतिम अभिव्यंजना है।
- 'बेटियों को अपने पिता की अधिक चिंता होती है' इस लोक सत्य का चित्रण है।

धन्ये मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका।
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित-काय
लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।
शुचिते, पहनाकर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दधिमुख।
क्षीण का न छीना कभी अन्न,
मैं लख न सका वे दृग विपन्न,
अपने आंसुओं अतः बिम्बित
देखे हैं अपने ही मुख-चित।
सोचा है नत हो बार-बार-
"यह हिंदी का स्नेहोपहार,
यह नहीं हार मेरी, भास्वर
यह रत्नहार-लोकोत्तर वर।"
अन्यथा, जहां है भाव शुद्ध
साहित्य-कला-कौशल-प्रबुद्ध,
हैं दिये हुए मेरे प्रमाण
कुछ वहां, प्राप्ति को समाधान
पार्श्व में अन्य रख कुशल समाधान
गद्य में पद्य में समाभ्यस्त।12।।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश महाकवि निराला द्वारा रचित शोक गीत 'सरोज-स्मृति' से लिया गया है। कवि निराला के मन में यह ग्लानि और निरर्थकता का बोध है कि वे अच्छे पिता नहीं बन पाए। वे यही भाव और रचनात्मकता के असफल संघर्ष पर विचार कर रहे हैं।

व्याख्या–निराला अपनी मृत पुत्री सरोज की स्मृतियों में डूबे हैं और उसे संबोधित करते हुए कहते हैं–पुत्री तू धन्य है। तूने मेरी बेटी के रूप में जन्म लेकर मेरे जीवन को धन्य कर दिया तथा शुचितापूर्वक अपने नाम को सार्थक कर अपने जीवन को भी धन्य किया। मैं ही अच्छा पिता नहीं बन सका। मेरा जीवन निरर्थक हो गया। अपनी बेटी को जो सुख, समृद्धि और सौभाग्य के साधन उपलब्ध कराने चाहिए वह मैं नहीं करा सका। रुपया कैसे कमाया जाता है यह उपाय तो मैं जानता था लेकिन इन उपायों के पीछे स्वार्थ और अनर्थ-छिपा है, अपनी आत्मा को बेचना पड़ता है यह देखकर मैं रुपया कमाने के मार्ग पर नहीं गया बेटी। अपनी सीमित आय में अभावग्रस्त हो संकुचित होकर जीवन की सफलता का युद्ध हार गया। निराला बेटी को पवित्रता की मूर्ति मानते हुए शुचिते कहकर संबोधित करते हैं क्योंकि सरोज की पवित्र आत्मा में कोई छल, कपट, स्वार्थ, ईर्ष्या का मेल नहीं था। वे कहते हैं कि बेटी मैं तुझे दूध-दही खिलाकर, रेशमी वस्त्र पहनाकर नहीं रख सका अच्छे वस्त्र और भोजन नहीं जुटा सका क्योंकि आर्थिक अभावों ने मुझे यह अवसर नहीं दिया। मैंने किसी गरीब, कमजोर से

कुछ छीना नहीं, किसी की विपन्नता देखकर आहत हो जाता था अतः जो पास होता था उसे कुछ दे दी देता था। अब अपने आंसुओं को देखता हूं तो उनमें मेरा ही मुख और हृदय विपन्न रूप में दिखाई देते हैं क्योंकि अर्थ तो पहले ही से नहीं था मगर तू मेरा धन थी। अब तू भी चली गई तो मैं विपन्न (गरीब) हो गया हूं।

मैंने बार-बार विनम्रतापूर्वक ठंडे दिमाग से सोचा है कि मैं जो किसी का कुछ छीनता नहीं, छल-कपट नहीं करता और सरस्वती की साधना में लगा रहता हूं फिर मेरी आर्थिक स्थिति इतनी खराब क्यों? मैं जीवन संघर्ष में सफल क्यों नहीं हो पाता हूं? तो यही उत्तर मुझे मेरी अन्तर्रात्मा देती है कि–यह हिंदी का स्नेह से दिया गया उपहार है, यह मेरी हार नहीं है। मेरी लौकिक हार दिखाई देती है, मैं सुख के साधन, भोजन, वस्त्र भी अपने परिवार के लिए नहीं जुटा पाता हूं लेकिन यह मेरी अन्तर्रात्मा की जीत है उस परम पिता और मां सरस्वती के द्वारा दिया गया यह सर्वश्रेष्ठ वरदान है कि मैं कवि हूं। जहां मेरे जैसा शुद्ध भावनाओं और प्रबुद्ध चेतना से अपने रचनात्मक कला, कौशल से गद्य और पद्य में सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति करने वाला लेखक है, वहां विपन्नता कैसे रह सकती है। इस कवि की प्राप्ति भौतिक सुख-सुविधाओं के रूप में नहीं है। किंतु मेरी आत्मिक समृद्धि से संतुष्टि है।

विशेष-

- आत्म-ग्लानि और निरर्थकता के बोध की जीवंत प्रस्तुति।
- धनवान बनने के तरीके स्वार्थ-अनर्थपूर्ण होते हैं: इस तथ्य की अभिव्यंजना।
- आर्थिक विपन्नता को अपनी हार नहीं, सरस्वती के सर्वश्रेष्ठ वरदान के रूप में अपनी जीत बताना कवि के संतत्व का साक्ष्य।

देखें वे; हंसते हुए प्रवर
जो रहे देखते सदा समर,
एक साथ जब शत घात घूर्ण
आते थे मुझ पर तुले तूर्ण
देखता रहा मैं खड़ा अपल
वह शर-क्षेप, वह रण-कौशल।
व्यक्त हो चुका चीत्कारोत्काल
क्रूद्ध युद्ध का रुद्ध कण्ठ फल।
और भी फलित होगी वह छवि,
जागे जीवन जीवन का रवि
लेकर कर कल तूलिका कला,
देखो क्या रंग भरती विमला।
वाञ्छित उस किस लाञ्छित छवि पर
फेरती स्नेह की कूची भर।

अस्तु मैं उपार्जन को अक्षम
कर नहीं सका पोषण उत्तम

कुछ दिन को, जब तू रही साथ,
अपने गौरव से झुका माथ।
पुत्री भी, पिता-गेह में स्थिर,
छोड़ने के प्रथम जीर्ण अजिर।
आंसुओं सजल दृष्टि की छलक
पूरी न हुई जो रही कलक
प्राणों की प्राणों में दब कर
कहती लघु-लघु उसांस में भर;
समझता हुआ मैं रहा देख,
हटता भी पथ पर दृष्टि टेक।
तू सवा साल की जब कोमल,
पहचान रही ज्ञान में चपल
मां का मुख, हो चुम्बित क्षण-क्षण
भरती जीवन में नव जीवन,
वह चरित पूर्ण कर गई चली
तू नानी की गोद जा पली।
सब किये वहीं कौतुक-विनोद
उस घर निशि-वासर भरे-मोद।
खाई भाई की मार विकल
रोई उत्पल-दल-दृग-छलछल,
चुमकारा सिर उसने निहार,
फिर गंगा-पट-सैकत-विहार
करने को लेक साथ चला,
तू गहकर चली हाथ चपला;
आंसूओं धुला मुख हासोच्छल,
लखती प्रसार वह ऊर्मि-धवल।3।।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश महाकवि निराला द्वारा रचित शोक गीत 'सरोज-स्मृति' से लिया गया है। निराला अपने रचनात्मक क्षेत्र के संघर्ष को व्यक्त कर रहे हैं और अपनी असफलताओं को याद करते हुए उन दिनों की स्मृति में खो जाते हैं जब उनकी बेटी उनके घर में थी।

व्याख्या–निराला जी अपनी मृत पुत्री के शोक में डूबे हुए अपने संघर्ष और असफलता के दिनों को याद कर रहे हैं। ऐसे कठिन दिनों में जब संपादक उनकी रचनाएं बिना पढ़े ही लौटा दिया करते थे, समीक्षक कटु आलोचनाएं लिखते थे। आरोप प्रत्यारोप लगाया करते थे और यह सब देखकर गुणीजन हंसते थे, इस बौद्धिक युद्ध को देखकर आनंद लेते थे कि किस तरह एक साथ जब मुझ पर सैकड़ों आघात लगते थे। घुमा फिरा कर लोग बार-बार मुझ पर आरोप लगाते थे मेरा आत्मबल तोड़कर मेरी रचनात्मकता को समाप्त करने का प्रयत्न करते थे। मैं उन आलोचकों, आरोप लगाने वालों का रण कौशल और तीरंदाजी, बयानबाजी को चुप-चाप

खड़ा देखता रहता था। कभी क्रोध को अभिव्यक्त भी किया। बेचैन होकर, चीत्कार करके क्रोध करके सब कुछ शांत हो गया। उसका फल मुझे और उन्हें दोनों को मिला। आगे भी सब दृश्य और भी आते रहेंगे जीवन में। जीवन आत्माभिमान के सूर्य के प्रकाश से जागृत सचेत बना रहे। देखें कल मां सरस्वती (भविष्य में) और हाथों में तूलिका लेकर मेरे जीवन में रचनाओं और कला के क्या और कैसे रंग भरती हैं। मुझ कवि के उस लांछित जीवन की कालिमा मिटाने के लिए उसमें स्नेह से अपनी इच्छानुसार कौन से रंग भरती हैं। अर्थात निराला कहते हैं मैं मां सरस्वती की आराधना सदैव की तरह शुद्ध, नि:स्वार्थ मन से करता रहूंगा देखता हूं भविष्य में मेरी रचनाओं को सम्मान और जीवन को समृद्धि मिलती है या नहीं।

जीवन संघर्ष पर दृष्टि डालते हुए निराला स्मृतियों में ही अपनी मृत पुत्री से कहते हैं–बेटी आर्थिक अभाव थे क्योंकि मैं रुपया कमाने में अक्षम था इसलिए तुझे सुख-सुविधाएं नहीं दे सका, ठीक से पालन-पोषण नहीं कर सका। मृत्यु से पूर्व भी जब तू कुछ दिनों तक मेरे साथ रही, मैं तुझे कुछ नहीं दे सका। अपने सौभाग्य के गौरव से तेरा माथा झुका रहता था, विवाहित जो थी, किंतु देह छोड़ने के पूर्व तेरा दुर्बल शरीर और शांत मुखमुद्रा मैं देख रहा था, तेरे मन की बेचैनी को भांप रहा था। आंसुओं से भरी छलकती सी आंखों कहती थी कि मेरे मन की साध पूरी नहीं हुई, जो छोटे-छोटे सुखों को पाने की इच्छाएं थीं वे प्राणों में ही दबकर रह गईं। तेरी बार-बार भरी जाने वाली आहें तेरे मन की आतृप्ति को दर्शाती थीं और मैं सब कुछ समझता, देखता हुआ तेरे सामने से सिर झुकार रास्ते पर आंखें टिकाए हट जाता था। कितना विवश था मैं अर्थाभाव के कारण ठीक से तेरा उपचार भी नहीं कर पाया। अब जब तू इस संसार को छोड़कर चली गई तो इस निरर्थक जीवन को ढोते हुए दिन काट रहा हूं जिसमें विगत की स्मृतियां बार-बार सामने आती हैं। जब तू केवल सवा साल की थी और बेहद चंचल थी, अपनी मां को पहचानती थी। तेरी मां बार-बार तेरा मुख चूमकर अपने जीवन में नई ऊर्जा, नया जीवन, नये उत्साह का संचार करती थी। उसने अपना कर्तव्य निभाया। मुझे दो बच्चों के पिता होने का गौरव प्रदान किया और भूमिका निभाकर मृत्यु का वरण कर लिया। तेरी मां की मृत्यु हो जाने पर तेरी नानी ने तुझे पाला-पोषा। बचपन के सारे कौतुक-विनोद, हंसना, रोना, खेलना तूने अपनी नानी के घर ही किए हैं। मैं उस सुख से वंचित रह गया बेटी कि तुझे कि तुझे हंसते-खेलते बड़ा होता हुआ देखूं। रात-दिन अपनी बाल-सुलभ क्रीड़ाओं से उस घर को प्रसन्नता से भर दिया। अपने भाई से की हुई शरारत पर तू उससे मार खाकर रोने लगती थी तब तेरे सुंदर गुलाबी कमल जैसे नेत्रों में आंसू छलछला जाते थे। तुझे छटपटाते, रोते देख वह तुझे लाड़ करता था। सिर पर हाथ फेरता और चूम लेता था फिर तुझे बहलाने के लिए पास ही बहती हुई गंगा के रेतीले तट पर घुमाने ले जाता था। अपने भाई का हाथ पकड़कर तू चंचल बिजली की तरह दौड़ लगाती, खेलती थी। आंसुओं से धुले (कुछ देर पहले रोने के कारण) तेरे मुख पर हंसी छलकने लगती थी और तू गंगा की सफेद चमकती चांदी सी लहरों को दूर-दूर तक फैला हुआ देखकर उत्साह से भर जाती थी।

विशेष-

- सफलता की दिशा में पग बढ़ाने पर सामने आने वाले संघर्षों व समाज से मिलने वाले ऋणात्मक व्यवहारों का चित्रण।
- अर्थाभाव के कारण संतति की सामान्य आवश्यकताओं की अभिपूर्ति न कर पाने वाले पिता की पीड़ा की मार्मिक अभिव्यंजना।

तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि-जीवन में भी व्यर्थ व्यस्त
लिखता अबाध गति मुक्त छन्द,
पर सम्पादकगण निरानन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर
दे एक-पंक्ति-दो में उत्तर।
लौटी रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश
बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर
व्यतीत करता था गुन-गुन कर
सम्पादक के गुण; यथाभ्यास
पास की नोंचता हुआ घास
अज्ञात फेंकता इधर-उधर
भाव की चढ़ी पूजा उन पर।
याद है दिवस की प्रथम धूप
थी पड़ी हुई तुझ पर सुरूप,
खेलती हुई तू परी चपल,
मैं दूरस्थित प्रवास से चल
दो वर्ष बाद, होकर उत्सुक
देखने के लिए अपने मुख
था गया हुआ, बैठा बाहर
आंगन में फाटक के भीतर
मोढ़े पर, ले कुण्डली हाथ
अपने जीवन की दीर्घ गाथ।
पढ़, लिखे हुए शुभ दो विवाह
हंसता था, मन में बड़ी चाह,
खण्डित करने को भाग्य-अंक;
देखा भविष्य के प्रति अशंक।।4।।

प्रसंग- अपनी पुत्री की असमय-मृत्यु उपरांत, उसकी स्मृति में रचित शोकगीत 'सरोज-स्मृति' की इन पंक्तियों में कहाकवि निराला विगत स्मृतियों में डूबकर अपनी मृत बेटी को संबोधित कर रहे हैं।

व्याख्या- जब तुम दोनों भाई-बहन नानी के घर यह बाल सुलभ-क्रीडाएं कर उन सबके जीवन को आनंद से भर रहे थे। मैं तब भी आज की तरह व्यर्थता से भरा जीवन जी रहा था। कविताएं लिखने में व्यस्त था। कविताएं लिखकर छपने के लिए भेजता और संपादक गण उसे पढ़कर तुरंत खारिज कर वापस भेज देते थे। वे बड़ी खिन्नता से एक दो पंक्ति में उत्तर लिखकर भेजते कि आपकी यह मुक्त छंद की कविता प्रकाशन के योग्य नहीं है। लौटी हुई रचना को देखकर मैं उदास हो जाता और चारों दिशाओं और आकाश को देखता, भटकता रहता

कि कहीं से कोई आश्वासन मिले। कई-कई पहर तक बाहर मैदान में, बगीचों में बैठा रहता सुबह से दोपहर से शाम हो जाती, मैं लगातार रचनाएं लौटाने वाले सम्पादकों को गुण-दोष याद करता और बैठे-बैठे खिन्नता में, क्रोध में, व्यर्थता के बोध से मैदान की घास नोंच-नोंचकर इधर-उधर फेंकता रहता जैसे अपनी भावनाओं से, क्रोध से उन पर प्रहार कर रहा हूं। लोग देवता पर पूजन सामग्री चढ़ाते हैं श्रद्धा से, वैसे ही मैं क्रोध से घास नोंचकर उन अदृश्य सम्पादकों पर फेंकता था। इसी व्यर्थता बोध से घबराकर मैं दो साल बाद तुम बच्चों से मिलने तुम्हारी नानी के घर गया था।

निराला जी कहते हैं मुझे याद है तुम्हारी मां की मृत्यु के दो वर्ष बाद संघर्ष और असफलताओं से घबराकर मैंने अपनी कुंडली देखी कि उसमें मेरे भाग्य के संबंध में क्या लिखा है। कुण्डली में मेरे दो विवाह लिखे हैं, यह देखकर मन ही मन हंस रहा था और बड़ी उत्कट इच्छा जाग्रत हो रही थी कि भाग्य के इस लेख को उलट दूंगा। खण्डित कर दूंगा यह धारणा कि जो कुंडली में लिखा है वह सच होगा। इस भाग्य की लम्बी कहानी को खण्डित करने की चाह लेकर और भविष्य को निःशंक होकर देखते हुए एकाकी जीवन व्यतीत करने का निर्णय ले मैं इतनी दूर से चलकर तेरी नानी के घर गया और घर के बाहर आंगन के फाटक के भीतर बैठा था तभी तुझे आंगन में खेलते हुए देखा। तू सुंदर परी की तरह लग रही थी और तेरे सुंदर मुख पर सुबह के सूर्य की कोमल चमकती धूप पड़ रही थी। तेरी वह चंचलता, सौंदर्य देखकर मैं निहाल हो गया था बेटी।

इससे पहले आत्मीय स्वजन
सस्नेह कह चुके थे, जीवन
सुखमय होगा, विवाह कर लो
जो पढ़ी लिखी हो-सुन्दर हो।
आये ऐसे अनेक परिणय,
पर विदा किया मैंने सविनय
सबको, जो अड़े प्रार्थना भर
नयनों में, पाने को उत्तर
अनुकूल; उन्हें जब कहा निडर-
"मैं हूं मंगली", मुझे सुनकर।
इस बार एक आया विवाह
जो किसी तरह भी हतोत्साह
होने को न था, पड़ी अड़चन,
आया मन में भर आकर्षण
उन नयनों का। सासु ने कहा-
"वे बड़े भले जन हैं, भय्या,
एन्ट्रेन्स पास है लड़की वह,
बोले मुझसे-छब्बीस ही तो
वर की है उम्र, ठीक ही है,
लड़की भी अट्ठारह की है।"

फिर हाथ जोड़ने लगे, कहा–
वे नहीं कर रहे ब्याह, अहा,
हैं सुधरे हुए बड़े सज्जन!
अच्छे कवि, अच्छे विद्वज्जन!
हैं बड़े नाम उनके! शिक्षित
लड़की भी रूपवती; समुचित
आपको यही होगा कि कहें
हर तरह उन्हें; वर सुखी रहें।
आयेंगे कल।" दृष्टि थी शिथिल,
आई पुतली तू खिल-खिल-खिल
हंसती, मैं हुआ पुनः चेतन,
सोचता हुआ विवाह-बन्धन।
कुण्डली दिखा बोला–"ए-लो"
आई तू, दिया, कहा–"खेलो!"
कर स्नान-शेष, उन्मुक्त-केश
सासुजी रहस्य-स्मित सुवेश
आई करने को बातचीत
जो कल होनेवाली, अजीत
संकेत किया मैंने अखिन्न
जिस ओर कुण्डली छिन्न-भिन्न,
देखने लगीं वह विस्मय भर
तू बैठी सञ्चित टुकड़ों पर।।5।।

प्रसंग–निराला जी की सास उनके दूसरे विवाह का प्रस्ताव रखती हैं। चूंकि निराला जी विवाह नहीं करना चाहते अतः कुंडली बेटी के हाथ में खेलने के लिए दे देते हैं और वह उस कुंडली को फाड़ देती है। निराला इसी को अंतिम निर्णय मान लेते हैं।

व्याख्या–अपनी मृत पुत्री की स्मृतियों में खोए हुए निराला जी उसके बचपन की स्मृतियों को टटोलते हैं कि जब उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई थी तभी से लगातार उनके रिश्तेदार, मित्र उन्हें प्रेम से समझा रहे थे, दबाव डाल रहे थे कि किसी सुंदर, पढ़ी-लिखी युवती से विवाह कर लो तो जीवन सुखमय हो जाएगा। प्रतिदिन कोई-न-कोई लड़की का रिश्ता लेकर आता तो मैं विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर उन्हें मना कर देता और वे लौट जाते और जो अड़े रहते कि आपको कुछ उत्तर देना ही होगा उनको मैंने डरा कर भगा दिया कि मैं मंगली हूं। मंगल ग्रह से सभी डरते हैं कि यह दुखों का कारण बनेगा अतः मैंने कन्यापक्ष को भगाने के लिए इसी अस्त्र का इस्तेमाल किया। लेकिन एक बार एक ऐसा रिश्ता आया कि किसी बहाने से, डर से कन्यापक्ष को भगाया नहीं जा सका। सासु ने कहा-कि भैया वे बड़े भले लोग हैं। लड़की सुंदर है, एंट्रेंस पास है, अठारह वर्ष की है। तुम छब्बीस वर्ष के हो अतः संयोग ठीक है। लड़की की आंखों के आकर्षण ने कुछ क्षण के लिए मुझे भी बांध लिया। कन्या पक्ष हाथ

जोड़ने लगा। उन्होंने कहा वे विवाह क्यों नहीं करना चाहते। वे सुधेर हुए सभ्य सज्जन पुरुष हैं। कवि और विद्वान हैं। उनका साहित्य जगत में बड़ा नाम है लेकिन लड़की भी तो शिक्षित और उनके योग्य है। उन्होंने सासु जी से कहा कि आप वर से (निराला जी से) कहें कि विवाह करके वे सुखी ही होंगे। हम कल आएंगे, आज आप लोग विचार कर लें। इसी कारण सासु के बार-बार बुलाने पर मैं विवाह के द्वन्द्व में फंसा कुंडली लेकर पहुंचा और बाहर आंगन में बैठकर सासु जी से बात करने लगा। मन में सोचता था कि कुंडली में दो विवाह का जो लेख है इसे किसी तरह खण्डित कर दूं, इतने में ही खेलती, हंसती हुई पुतली के समान तू मेरे पास आई। मेरी आंखों की शिथिलता, चिंता सब तुझे देखकर दूर हो गई और मैं चैतन्य हो गया। विवाह के बारे में सोचते-सोचते मैंने कुंडली तेरे हाथ में देकर कहा-ये लो, खेलो...। कागज का रंगीन टुकड़ा पाकर तू खेलने लगी। उस कुंडली को चीर-फाड़कर तूने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए और उसी पर बैठकर खेलने लगी। मेरे भाग्य का निर्णय मेरे अनुकूल तूने कर दिया। जब सासु जी नहाकर, भीगे बाल फैलाए, रहस्यमयी मुस्कान सजाए मुझसे बात करने के लिए आई तो कल होने वाली विवाह की बातचीत का निर्णय हो गया। सह संकेत कर तेरी ओर उन्हें देखने को बाध्य किया। वे आश्चर्य से भरकर देखने लगीं कि किस तरह पिता की कुंडली के टुकड़ों पर बैठकर तू खेल रही थी।

विशेष-

- बालक्रीडा का सहज व सजीव रेखांकन है।
- मंगल ग्रह से भय द्वारा ज्योतिषीय मान्यता का समर्थन।
- पुनर्विवाह के विषय पर एक आदर्श पिता की मनोस्थिति का सहज चित्रण।

धीरे-धीरे फिर बढ़ा चरण,
बाल्य की केलियों का प्रांगण
कर पार, कुञ्ज-तारुण सुघर
आई, लावण्य-भार थर-थर
कांपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर।
नैश स्वप्न ज्यों तू मन्द-मन्द
फूटी ऊषा जागरण छन्द,
कांपी भर निज आलोक-भार,
कांपा वन, कांपा दिक्-प्रसार।
परिचय-परिचय पर खिला सकल-
नभ, पृथ्वी, द्रुम, कलि, किसलय-दल।
क्या दृष्टि! अतल की सिक्त-धार
ज्यों भोगावती उठी अपार।
उमड़ता ऊर्ध्व को कल सलील
जल टलमल करता नील-नील,
पर बंधा देह के दिव्य बांध,
छलकता दृगों से साध-साध।

फूटा कैसा प्रिय कण्ठ-स्वर
मां की मधुरिमा व्यञ्जना भर।
हर पिता-कण्ठ की दृप्त-धार
उत्कलित रागिनी की बहार!
बन जन्मसिद्ध गायिका, तन्वि,
मेरे स्वर की रागिनी वहिन
साकार हुई दृष्टि में सुघर,
समझा मैं क्या संस्कार प्रखर।
शिक्षा के बिना बना वह स्वर
है सुना न अब तक पृथ्वी पर!
जाना बस, पिक-बालिका प्रथम
पल अन्य नीड़ में जब सक्षम
होती उड़ने को, अपना स्वर
भर करती ध्वनित मौन प्रान्तर।।6।।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश महाकवि निराला द्वारा रचित शोक गीत 'सरोज-स्मृति' से लिया गया है। निराला जी पुत्री की युवावस्था के सौंदर्य की अभिव्यक्ति कर रहे हैं।

व्याख्या–निराला जी अपनी मृत पुत्री की स्मृतियों में डूबे उन दिनों को याद कर रहे हैं जब उनकी पुत्री ने युवावस्था में कदम रखा था। वे कहते हैं धीरे-धीरे समय बीतता गया, तेरी आयु बढ़ती गई और तूने बचपन का आंगन छोड़कर युवावस्था की देहलीज पर कदम रखा। बचपन के सारे खेल, कौतुक, चंचलता पीछे छूट गई और तरुणाई के कुंज में तूने अत्यंत शालीनता और सुघड़ता से प्रवेश किया। जैसे नई बेले फूलों के भार से थरथराती हैं ऐसे ही यौवन के भार से तेरी देह थरथराने लगी। स्निग्धता, कोमलता और सौंदर्य से तेरा थरथराता यौवन बिल्कुल वैसा लगने लगा जैसे किसी नयी वीणा के कसे हुए तारों पर मालकोश जैसा मधुर राग गाया जाए। तू रात्रि को देखे गए सुंदर स्वप्न की तरह मधुर और मंद गति से बढ़ती गई और प्रातः काल को गायी जाने वाली प्रभाती (जागरण छन्द) की तरह, सौंदर्य रूपी सूर्य की तरह लालिमा और उज्ज्वल चेतना से युक्त होती गई। अपने ही उज्ज्वल-सौंदर्य के आलोक का भार तुझे कंपित किए रहता था। दशों दिशाएं, वन, पृथ्वी, आकाश, बेलें, लताएं, कलियां और पुष्पों पर तेरे अधरों की मुस्कान बिखर गई। तेरा सौंदर्य देखकर प्रकृति मुस्कराने लगी। तेरी दृष्टि का गहन सौंदर्य इतना आकर्षक और रहस्मय था, उनमें इतनी गंभीरता और स्निग्धता थी जैसे अतल में बहने वाली गुप्त सरस्वती की धारा हो या गंगा की लहरों का उफनता ज्वार हो। आकाश की नीलिमा लिए बहते जल की धारा जैसा तेरी आंखों का सौंदर्य था जो सधा हुआ तेरी आंखों से छलकता था लेकिन तेरी दिव्य सौंदर्य से युक्त देह के बांध में बंधा था, सीमाएं तोड़कर बाहर नहीं आता था।

बेटी तेरी मां मनोहरा का कण्ठ अत्यंत मधुर था वह बहुत अच्छा गाती थी। तूने मां से यह गुण पाया इसलिए तेरा स्वर अत्यंत मधुर था। मेरे कण्ठ की प्रखरता भी तुझे मिली इसलिए तेरी आवाज में ओज और मधुरता का संगम था जैसे ही तू गाती तो लगता जैसे हृदय के गहन स्तर से उठी रागिनी चारों दिशाओं में फूल खिला रही है। तू दुबली-पतली तन्वंगी थी लेकिन

जन्मसिद्ध गायिका की तरह तेरा गायन परिपक्व था। मेरे ओजस्वी गीतों में जो आग होती है वही आग, वही ताप तेरी आवाज और गायन में था। यह देखकर मैं प्रसन्न हो जाता था कि मेरे संस्कार प्रखरता के साथ तुझमें प्रकट हुए हैं। वह स्वर सुनकर, तुझे देखकर आश्चर्य होता था कि बिना संगीत की शिक्षा लिए कोई इतना पक्का राग कैसे गा सकता है। ऐसा इस धरती पर मैंने तो नहीं देखा था। यह तेरे लिए ईश्वर का वरदान था। मैंने तो बस इतना जाना था कि कोयल के बच्चे दूसरे के घोंसले में पलते हैं तब तक उड़ने में सक्षम हो जाते हैं तो आस-पास के मौन परिवेश को अपनी मीठी आवाज से गुंजाते हुए उड़ जाते हैं।

विशेष-

- पिता द्वारा पुत्री के यौवन व सौंदर्य के वर्णन का विलक्षण उदाहरण।
- माता-पिता के गुण बच्चों को मिलते हैं: इस तथ्य की प्रत्यक्ष स्वीकृति।

तू खिंचीं दृष्टि में मेरी छवि,
जागा उर में तेरा प्रिय कवि,
उन्मनन-गुञ्ज सज हिला कुञ्ज
तरु-पल्लव कलिदल पुञ्ज-पुञ्ज
बह चली एक अज्ञात वात
चूमती केश-मृदु नवल गात,
देखती सकल निष्पलक-नयन
तू, समझा मैं तेरा जीवन।
सासु ने कहा लख एक दिवस:-
"भैया अब नहीं हमारा बस,
पालना-पोसना रहा काम,
देना 'सरोज' को धन्य-धाम
शुचि वर के कर, कुलीन लखकर
है काम तुम्हारा धर्मोत्तर।
अब कुछ दिन इसे साथ लेकर
अपने घर रहो, ढूंढकर वर
जो योग्य तुम्हारे, करो ब्याह
होंगे सहाय हम सहोत्साह।"
सुनकर, गुनकर चुपचाप रहा,
कुछ भी न कहा, -न अहो, न अहा,
ले चला साथ मैं तुझे कनक
ज्यों भिक्षुक लेकर, स्वर्ण-झनक
अपने जीवन की, प्रभा विमल
ले आया निज गृह-छाया-तल।
सोचा मन में हत बार-बार-
'ये कान्यकुब्ज-कुल कुलांगार
खाकर पत्तल में करें छेद,

इनके कर कन्या, अर्थ खेद,
इस विषय बेलि में विष ही फल,
यह दग्ध मरुस्थल-नहीं सुजल।'
फिर सोचा-'मेरे पूर्वजगण
गुजरे जिस राह, वही शोभन
होगा मुझको, यह लोक-रीति
कर दूं पूरी, गो नहीं भीति
कुछ मुझे तोड़ते गत विचार,
पर पूर्ण रूप प्राचीन भार
ढोते मैं हूं अक्षम; निश्चय
आयेगी मुझमें नहीं विनय
उतनी जो रेखा करे पार
सौहार्द-बंध की निराधार।

वे जो यमुना के-से कछार
पद फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यों, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर-गन्ध
उन चरणों को मैं यथा अन्ध,
कल घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूं, ऐसी नहीं शक्ति।
ऐसे शिव से गिरिजा विवाह
करने की मुझको नहीं चाह।'
फिर आई याद-'मुझे सज्जन
हैं मिला प्रथम ही विद्वज्जन
नवयुवक एक, सत्साहित्यिक,
कुल कान्यकुब्ज, यह नैमित्तिक
होगा कोई इंगित अदृश्य,
मेरे हित है हित यही स्पृश्य
अभिनन्दनीय।' बंध गया भाव,
खुल गया हृदय का स्नेह-स्राव,
खत लिखा, बुला भेजा तत्क्षण,
युवक भी मिला प्रफुल्ल, चेतन।।7।।

प्रसंग- असमय दिवंगत हुई पुत्री की स्मृति में रचित अपनी कृति 'सरोज-स्मृति' के प्रस्तुत अंश में महाकवि निराला उसके लिए वर की खोज और प्राप्ति तक के क्षणों का स्मरण कर रहे हैं।

व्याख्या- निराला जी अपनी मृत पुत्री की स्मृतियों में डूबे हुए उसे संबोधित करते हैं कि बेटी-तू मेरे संस्कारों की मेरी ही छवि थी। तेरी युवावस्था और सौंदर्य देखकर मेरी आंखों में तेरी चिंता समा गई और तेरा पिता, तेरा प्रिय कवि अर्थात मैं हृदय के भीतर एक बेचैनी एवं चेतना का अनुभव करने लगा जैसे कि विवाह योग्य होती बेटी को देखकर हर पिता होता है। एक अज्ञात सी रहस्यमयी, मंद, शीतल वायु तुझे भाव विभोर बना रही है। तेरे हृदय का बाग कामनाओं से सज गया है और उस बाग में कलियां, पुष्प, तरु, पत्ते हैं और भौंरों की गुनगुनाहट सुनकर, भावों की मंद वायु से हिल-डुल रहे हैं, गूंज रहे हैं। मंद वायु तेरे कोमल नव युवा गालों को देह को, काली सघन केशराशि को चूमती है और तू चुपचाप पलक झपकाए किसी साधक की तरह अपने भीतर के इस परिवर्तन को देखती है, अनुभव करती है। मैं तेरे जीवन की इस नवीन परिवर्तित स्थिति को समझ रहा था। अंततः एक दिन सासु मां ने मुझसे कहा-भैया, लड़की बड़ी हो गई है अब इसके जीवन पर हमारा वश नहीं है। इसे पाल-पोस कर बड़ा करना हमारा काम था, हमने कर दिया अब तुम्हारा पिता के रूप में सबसे प्रथम और महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है, धर्म है कि कोई अच्छा कुलीन वर खोजकर इसका विवाह कर दो। उसे अच्छा घर और वर दिलाना तुम्हारा उत्तरदायित्व है अतः इसे अब अपने साथ ले जाओ और अपने घर पर रखो और अच्छा वर ढूंढकर, जो तुम्हें योग्य लगे उसके साथ इसका विवाह कर दो। विवाह निश्चित करो तो हम आकर उत्साह के साथ उसमें आकार शामिल होंगे। मैंने चुपचाप सासु जी की बात सुनी और सोचा लेकिन आश्चर्य था हां, ना के रूप में प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं कि। मैं तुझे लेकर वहां से चला सावधानी से जैसे कोई भिखारी अचानक सोना पाकर उसे लेकर सावधानी से चलता है वैसे ही। तू मेरे लिए सोना ही थी। बहुमूल्य पूंजी थी, मेरे जीवन का एकमात्र स्वर्ण धन थी। तू मेरे जीवन की उज्ज्वल, पवित्र आभा और प्रकाश थी। अतः तुझे सम्भालकर मैं अपने घर ले आया।

बेटी, तुझे घर ले आने के बाद मैं बार-बार तेरे विवाह की चिंता करने लगा। जाति, कुल के लोगों के आचरण से आहत था और बार-बार सोचता था कि-"कानयकुब्ज कुलांगार होते हैं। अपने आचरण से कुल को भ्रष्ट करने वाले, जलाने वाले। अविश्वसनीय होते हैं। जिस पत्तल में खाते हैं उसी में छेद करते हैं अर्थात जो इन पर विश्वास करता है, इनका भला करता है ये उसी को धोखा देते हैं। अतः इनके यहां कन्या का विवाह करना ठीक नहीं ये रुपये के लालची हैं रुपया पाकर भी कन्या को सुखी रखें ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता। ये ऐसे जलते हुए सूखे मरुस्थल हैं कि इनमें जल होता ही नहीं अर्थात इनका हृदय संवेदनशील हैं इनमें मुख्यता, प्रेम और करुणा के भाव नहीं हैं। निराला जी कहते हैं कान्यकुब्जों से चिढ़ होने पर भी मैंने सोचा कि-मेरे पूर्वज जिस राह चले हैं जिन रीति-रिवाजों का पालन करते आए हैं मेरे लिए भी उसी राह पर चलना शोभा देगा। इस लोक रीति को पूरा कर देना चाहिए। ऐसे लोक रीति को तोड़ने और पूर्वजों की राह पर न चलने का विचार करते हुए मुझे इस पूरी पृथ्वी पर किसी का भय नहीं है क्योंकि प्राचीनता का परंपराओं का भार ढोते-ढोते मैं थक गया हूं। आपने आप को अब असमर्थ पाता हूं और समझता हूं कि इन परपराओं का पालन करने के लिए जिस विनम्रता की आवश्यकता होती है सौहार्द की आवश्यकता होती है वह मुझमें नहीं बची है मैं इन बनावटी लोगों के साथ सौहार्द स्थापित करने के लिए विनम्रता की सीमा पार करने वाली भूमिका नहीं निभा सकता।

निराला जी वर पक्ष के लोगों के व्यक्तित्व पर खिन्नता व्यक्त करते हुए सोचते हैं कि-ऐसे लोग जो तेल पिए चमरौंधे जूते फटफटाते हुए और उन जूतों जैसा ही मुख लिए ऐसे दिखते हैं जैसे उधार लेकर खा रहे हों, आत्मसम्मान से रहित, विपन्न, स्वार्थी और लालची लोग, कंजूस इतने कि देह पर भी खर्च नहीं करते, बदबूदार बने घूमते रहते हैं उनके पैरों की फटी बिवाइयां ऐसी प्रतीत होती है मानो जमुना नदी के कटे-फटे कछार हों। ऐसे फटे-गंदे पैरों को अंधा बनकर पूजूं इतना धर्मांध मैं नहीं हूं। ऐसा व्यक्ति बन जाऊं जिसके पास न संवेदनशील प्राण हैं न सूंघने की शक्ति, मैं नहीं बन सकता इसलिए ऐसे गंदे लोगों के पैर नहीं पूज सकता। ऐसे शिव से अपनी बेटी गिरिजा का विवाह नहीं कर सकता। मैं हिमालय नहीं हूं कि ऐसे लोगों के घर कन्यादान कर दूं। इसी उधेड़ बुन में था कि मुझे एक सज्जन व्यक्ति याद आया। जो साहित्यकार है, विद्वान है, नवयुवक है और कान्यकुब्ज भी है कुछ दिनों पहले ही मिला था। अवश्य यह कोई संयोग है या उस अदृश्य भाग्य विधाता का संकेत है। जो भी मेरे हित में है यही संबंध बांधने और अभिनन्दन करने योग्य है तभी मुझे इस समय उस नवयुवक का ध्यान आया। मैंने निश्चय कर लिया कि उसी नवयुवक से तेरा विवाह करूंगा। मन में उस युवक के प्रति अचानक ही स्नेह के भाव उमड़ आए और मैंने उसे पत्र लिखा और तुरंत आकर मिलने के लिए कहा। वह नवयुवक भी आया और प्रसन्नतापूर्वक मिला था सचेत होकर उसने मेरी बात सुनी।

विशेष-

- विवाह की उम्र में पहुंची पुत्री का सौंदर्य वर्णन।
- विवाह योग्य बेटी के लिए पिता के मन में उठने वाली चिंताओं का सजीव चित्रांकन।
- योग्यवर की उपलब्धि पर उभरी मनोस्थिति का बिंब।

बोला मैं-"मैं हूं रिक्त-हस्त
इस समय, विवेचन में समस्त-
जो कुछ है मेरा अपना धन
पूर्वज से मिला, करूं अर्पण
यदि महाजनों को, तो विवाह
कर सकता हूं, पर नहीं चाह
मेरी ऐसी, दहेज देकर
मैं मूर्ख बनूं, यह नहीं सुघर,
बारात बुला कर मिथ्या व्यय
मैं करूं, नहीं ऐसा सुसमय।
तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम,
लग्न के; पढ़ूंगा स्वयं मन्त्र।
जो कुछ मेरे, वह कन्या का,
निश्चय समझो, कुल धन्या का।"

आये पण्डितजी, प्रजावर्ग,
आमन्त्रित साहित्यिक, ससर्ग
देखा विवाह आमूल नवल,
तुझ पर शुभ पड़ा कलश का जल।
देखती मुझे तू हंसी मन्द,
होठों में बिजली फंसी स्पन्द
उर में भर झूली छवि सुन्दर
प्रिय की अशब्द शृंगार-मुखर
तू खुली एक-उच्छ्वास-संग,
विश्वास-स्तब्ध बंध अंग-अंग
नत नयनों से आलोक उतर
कांपा अधरों पर थर-थर-थर।
देखा मैंने, वह मूर्ति-धीति
मेरे वसन्त की प्रथम गीति-
शृंगार, रहा जो निराकार,
रस कविता में उच्छ्वसित-धार
गाया स्वर्गीया-प्रिया-संग-
भरता प्राणों में राग-रंग,
रति-रूप प्राप्त कर रहा वही,
आकाश बदल कर बना मही।
हो गया ब्याह आत्मीय स्वजन,
कोई थे नहीं, न आमन्त्रण
था भेजा गया, विवाह-राग
भर रहा न घर निशि-दिवस जाग;
प्रिय मौन एक संगीत भरा
नव जीवन के स्वर पर उतरा।।8।।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यांश महाकवि निराला द्वारा रचित लम्बी कविता 'सरोज-स्मृति' से उद्धृत है। यहां कवि पुत्री के वर के सामने अपनी आर्थिक विपन्नता और दहेज न देने संबंधी असमर्थता का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या- निराला जी अपनी दिवंगत पुत्री की स्मृतियों में डूबकर उसको संबोधित करते हुए कहते हैं कि जब तुम्हारे योग्य वर मेरे सामने बैठा था तब मैंने उससे कहा–मैं रचना और आलोचना में व्यस्त रहता हूं कमाई का और कोई जरिया नहीं है अत: मैं खाली हाथ हूं। बेटी के अतिरिक्त और कोई दहेज नहीं दे सकता। मेरे पास पूर्वजों से मिला जो भी धन है वह यदि महाजनों के पास गिरवी रख कर उधार लूं तो विवाह कर सकता हूं पर मैं ऐसा करना नहीं चाहता। दहेज देकर मूर्ख बनना नहीं चाहता क्योंकि दहेज देकर मैं बेटी का सुख देखना चाहूं तो यह मूर्खता है। जो श्रेष्ठ मनुष्य है वह बिना दहेज के भी सुखी रखेगा और जो लालची है वह दहेज की राशि समाप्त होते ही बेटी को प्रताड़ित करेगा। इसलिए मैं दहेज देने के और

बारात बुलाकर व्यर्थ झूठा दिखावा करने और खर्च करने के विरुद्ध हूं। न मेरा समय ठीक है न मेरी आर्थिक स्थिति ऐसी है कि मैं बेकार के खर्च करके मुसीबत बढ़ाऊं। अत: यदि तुम इन सब परिस्थितियों में भी मेरी बेटी से विवाह करने के लिए तैयार हो तो बताओ, मैं सारे परंपरागत नियम, सामाजिक रीति-रिवाज तोड़ने के लिए कटिबद्ध हूं। यदि पंडित जी मेरी बात नहीं मानेंगे और रीति-रिवाज के पालन की हठ करेंगे तो मैं उन्हें जाने के लिए स्वतंत्र कर दूंगा तथा विवाह के, लग्न के मंत्र स्वयं पढ़ूंगा। मेरी कन्या तुम्हारे कुल को अपने पवित्र आचरण से, शील और सदाचार से धन्य कर देगी, यह मेरा बचन है। मेरा जो भी है वह मेरी बेटी का ही होगा इस बात का विश्वास करो।

निराला जी कहते हैं-वह नवयुवक इस और ऐसे विवाह के लिए तैयार हो गया। विवाह का दिन निश्चित हुआ। पंडित जी और समाज के लोग आए, साहित्कार और मेरे संगी-साथी आए और इस नए रीति के विवाह को तू मंद हंसी हंसने लगी जैसे तेरे होंठों पर चमकती बिजली की एक लकीर फंस कर रह गयी हो ऐसे तेरे मंद हंसी के कारण तेरे शुभ्र दांतों की झलक दिखाई दे गई। तेरे हृदय में अपने प्रिय की सुंदर छवि झलकने लगी थी शायद तभी शृंगार हीन होने पर भी तेरा मुख सौंदर्य से दमकने लगा। तूने एक लम्बी सांस ली, एक आहभरी, विश्वास से तेरा अंग-अंग बंधा हुआ था कि पिता का निर्णय ठीक है। झुकी हुई आंखों से उज्ज्वल आलोक (प्रकाश) उतर कर तेरे होंठों को कांपने लगा, मैंने तेरी यह धैर्यपूर्वक मन की अधीरता को छिपाती मूर्ति देखी जिसमें पिता के वियोग का दुख और पति के मिलन का सुख द्वन्द्व उत्पन्न कर रहा था। निराला जी इस अवसर पर अपनी पत्नी मनोहरा को याद करते हैं कि-मैंने अपने जीवन के बसंत में अर्थात युवावस्था के सुखों से हरे-भरे दिनों में अपनी पत्नी और प्रिया मनोहरा के साथ मिलकर जो प्रेम गीत गाया था। जो रस से भरी कविता की तरह अनुभव करने योग्य निराकार था जो उत्साह और उमंगों की, प्रेम की आहें हमने भरी थीं। जो राग, प्रेम का रूप बनकर हमारे प्राणों में समाया था। वही मेरी बेटी सरोज के रूप में सुंदर प्रतिफल बनकर प्राप्त हुआ। आकाश में रहने वाली मेरी पत्नी रूप बदलकर धरती पर बेटी के रूप में आ गई है।

पत्नी की स्मृतियों से निकलकर निराला जी विवाह संपन्न कराते हैं। ऐसा विवाह जिसमें कोई आत्मीय स्वजन, रिश्तेदार नहीं आए थे। किसी को निमंत्रण ही नहीं भेजा गया था। घर में विवाह के गीत नहीं गाए गए, न दिन-रात का जागरण हुआ। मौन का प्रिय लगने वाला संगीत ही घर में भरा हुआ था और संगीत के बीच ही सरोज का अपने पति के साथ नव जीवन का शुभारंभ हुआ।

विशेष-

- दहेज देकर बेटी को सुखी देखने की चाहत मूर्खता है का संदेश।
- होने वाले आदर्श पति के संदर्भ में जानकर लड़की की निखरी छवि का प्रतिबिंब।
- दिवंगत पत्नी का पुत्री में आरोपण कर पुनर्जन्म के सिद्धांत का समर्थन।

मां की कुल शिक्षा मैंने दी,
पुष्प-सेज तेरी स्वयं रची,
सोचा मन में, 'वह शकुन्तला,

पर पाठ अन्य यह, अन्य कला।'
कुछ दिन रह गृह तू फिर समोद,
बैठी नानी की स्नेह-गोद।
मामा-मामी का रहा प्यार,
भर जलद धरा को ज्यों अपार;
वे ही सुख-दुख में रहे न्यस्त;
तेरे हित सदा समस्त, व्यस्त;
वह लता वहीं की, जहां कली
तू खिली, स्नेह से हिली, पली,
अन्त भी उसी गोद में शरण
ली, मूंदे दृग वर महामरण।

मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल,
दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूं आज, जो नहीं कही!
हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म रहे नत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सकल
हों भ्रष्ट शीत के-से शतदल!
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण! ।।9।।

प्रसंग—प्रस्तुत काव्यांश महाकवि निराला द्वारा रचित शोक गीत 'सरोज-स्मृति' से लिया गया है। यहां निराला जी मृत पुत्री की स्मृतियों में खोए हुए उसके विवाह के बाद उसकी घर से विदाई और अंत में उसके संसार से विदा होने की स्मृति का कारूणिक वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या—निराला जी कहते हैं कि सरोज तेरी विदाई के समय मैंने तुझे वह सीख दी जो तेरी मां होती तो तुझे सिखाती कि ससुराल में और पति के साथ कैसे रहना है? वही तेरा वास्तविक घर है आदि-आदि। मैंने स्वयं तेरी पुष्प सेज सजाई, डोली सजाई और यह सोचता रहा कि शकुन्तला को जिस तरह ऋषि ने विदा किया था अकेले, वैसे ही मैं भी कर रहा हूं बस उसकी परिस्थितियां तुझसे अलग थीं। कुछ दिन ससुराल में रहकर तू प्रसन्नतापूर्वक फिर अपनी नानी के पास आ गई। मामा-मामी का स्नेह तुझ पर वैसा ही अपार था जैसे भरे हुए बादल धरती पर बरसते हैं। वे तेरे मामा-मामी और नानी ही तेरे सुख-दुख के साथी थे, तेरे जीवन को स्वस्थ, सुंदर, सुखी बनाने में व्यस्त रहते थे। तू उस लता की कली थी जो उस भूमि पर जन्मी थी, पली-बढ़ी थी अर्थात तेरी मां का वह जन्म स्थान था अतः उसकी बेटी होने के कारण तेरी नानी, मामा-मामी ने तुझे स्नेह से पाला और अंत में बीमार होकर उन्हीं की गोद में तूने आंखें बंद कर लीं और मृत्यु का वरण किया।

निराला जी गहन शोक में डूबकर कहते हैं—बेटी मुझ भाग्यहीन का तू ही सहारा थी, तुझे देखकर जीवन को सार्थक समझता था, लेकिन जब मेरी यह तपस्या खण्डित हो गई, तो

लिए जीने और कुछ करने की चाह खत्म हो गई तो जीवन व्यर्थ लगने लगा। पीछे मुड़कर अपने विगत जीवन पर दृष्टि डालता हूं तो जीवन दुख से भरी कथा की तरह लगता है। इस जीवन की दुख भरी कहानी जो आज तक किसी से नहीं कहा तो अब क्या कहूं। जीवनभर जो रचनाएं लिखता रहा और तुम्हें कोई सुख नहीं दे पाया, वह टीस निरंतर बनी रहती है। यदि कहीं धर्म है तो निश्चय ही मेरे इस रचनाकर्म पर वज्रपात हो जाए क्योंकि इस रचनाकर्म के चलते मैं तुम्हें सुखी नहीं कर सका। मैं सदा सर झुकाए इस रचनाकर्म के मार्ग पर चलता रहा हूं और अब इसे शाप देता हूं यह नष्ट हो जाए। जैसे शरद ऋतु पाला पड़ने से कमल की सैकड़ों पंखुड़ियां नष्ट होकर बिखर जाती हैं वैसे ही मेरा रचनाकर्म नष्ट हो जाए। मेरी बेटी–मैं धार्मिक नहीं हूं, समृद्ध नहीं हूं, लोक रीति का पालनकर्ता नहीं हूं अतः मैं अपने विगत कार्यों और रचना कर्मों को तुझे अर्पित करते हुए तेरा तर्पण करता हूं।

विशेष-

- पुत्री के प्रति सभी कर्मों का अर्पण, सर्वस्व समर्पण की अद्वितीय एवं उद्दात प्रस्तुति।
- पूरी 'सरोज-स्मृति' कविता वियोग की पीड़ा को आत्मसात किए हुए है। करुण रस प्रधान है। अलंकारिक है। सरस, सरल, प्रवाहमयी है। तत्सम शब्दों की भरपूर उपस्थिति है। जीवित कविते-मानवीकरण अलंकार है। सम्बोधन शैली है। प्रकृति का चित्रण लय, शब्द और ध्वनि के साथ है।
- सामाजिक पदावली हैं। यह हिंदी साहित्य का मार्मिक और सर्वश्रेष्ठ शोक गीत है। संस्कृतनिष्ठ भाषा से काव्य को गौरव में वृद्धि हुई है।

गतिविधि

महाकवि निराला के संपूर्ण रचना-संसार पर एक विवेचनात्मक आलेख तैयार कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

'लिली' कहानी-संग्रह कथानक-साहित्य में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी का प्रथम प्रयास था।

5.7 सारांश

निराला की कविताएं समाज एवं साहित्य की रूढ़ मान्यताओं एवं परंपराओं का विरोध करती हुई मिलती हैं, यह उनकी स्वछंद वृत्ति का ही परिणाम है। उन्होंने स्वयं कहा है, "हिंदी में समझ वाला युग अभी नहीं आया। इसलिए नये साहित्य का विरोध होता है। रूढ़ियों से अभी जनमस्तिष्क पूर्ववत् जकड़ा हुआ है, रूढ़ियों पर बार-बार प्रहार द्वारा इसकी शृंखला तोड़ देनी है।" निराला के काव्य में प्रकृति के नव-नव रूप प्राप्त होते हैं। प्रकृति का आलंबन व उद्दीपन रूप उनके यहां प्राप्त होता है, प्रकृति का मानवीकृत रूप विशेष महत्वपूर्ण है। निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' व 'तुलसीदास' कविताओं के माध्यम से अपने दार्शनिक भावों को

व्यक्त किया है। छोटी कविताओं में 'तुम और मैं' कविता ब्रह्म एवं जीव के संबंधों को प्रक
करती है।

सरोज स्मृति एक शोक गीत है जिसे निराला ने अपनी पुत्री सरोज की असमय मृत्यु
के उपरांत लिखा है। वास्तव में इस कविता में दुख केंद्रीय भाव में व्यक्त हुआ है। अपने
पुत्री को 'गीते' कहकर सम्बोधित करने के पीछे पुत्री के अट्ठारह वर्ष के उपरांत मृत्यु वरण
कर लेना है यहां गीता के अट्ठारह अध्यायों की पूर्णता के समान ही पुत्री के जीवन-समाप्त
को जोड़ा गया है। कवि की मानसिक अवस्था का चित्रण 'सरोज स्मृति' कविता में प्राप्त होता
है जहां कवि की अभिव्यंजना बहुत करुणासिक्त बन पड़ी है। स्वयं निराला के व्यक्तित्व के
विविध पहलुओं को इस कविता में देखा जा सकता है। उनमें स्पष्टवादिता प्राप्त होती है। एक
ओर जीवन की कटु अनुभूतियों ने निराला को भावुक बना दिया है तो वहीं दूसरी ओर उन्हें
कटु अनुभूतियों को पाकर निराला अपने स्वभाव एवं कर्म से विद्रोही रूप में भी दिखाई देते
हैं। निराला की इस कविता में सरोज के बाल्यकाल से लेकर अंतिम प्रयाण तक की स्थितियां
हैं। सरोज का मातृविहीन होना, अपनी नानी के घर रहना, बाल्योचित व्यवहार का वर्णन, विवाह
से जुड़ा कार्यक्रम; एक पिता की आंतरिक मनःस्थिति एवं बाह्य संघर्षरत वातावरण के माध्यम
से प्रकट हुआ है।

महाप्राण निराला भारतीय सांस्कृतिक विरासत के ओजस्वी कवि हैं। काव्य धारा में
ओजस्वी कविता के कई प्रमुख हस्ताक्षर हैं, किंतु 'राम की शक्ति पूजा' ओज काव्य शैली की
सबसे प्राणवान कृति है, जिसमें निराला ने राम-रावण के युद्ध के परिप्रेक्ष्य में मौलिक चिंतन
और कल्पना का मिश्रण कर 'राम की शक्ति पूजा' का सृजन किया, इसीलिए संभवतः यह
एक अद्वितीय काव्य रचना है।

कुछ आलोचकों का कहना है कि निराला की 'राम की शक्ति पूजा' रचना महाकाव्य
के स्तर की है। उनकी इस कविता में प्रसिद्ध कथानक, महान चरित्र तथा भव्य शैली आदि
महाकाव्य के समान ही मिलते हैं। जो किसी काव्य को महाकाव्य बना देने की सामर्थ्य रखते
हैं। कुछ अलोचकों ने महाकाव्य न मानते हुए भी इसे महाकाव्य की गरिमा वाला काव्य
स्वीकारा है। 'राम की शक्ति पूजा' के काव्य रूप का विवेचन करते हुए डॉ. रमेश कुन्तल
मेघ ने लिखा है- "कवि श्री निराला की 'राम की शक्ति पूजा' एक ऐसी रचना है जिसे आज
की भाषा में संश्लिष्ट कविता कह सकते हैं।"

साहित्य की मूल भावना पर प्रकाश डालते हुए निराला कहते हैं कि "मनुष्यों की मुक्ति
कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना।
जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके
तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं-फिर भी स्वतंत्र। इसी तरह कविता का
भी हाल है। मुक्त-काल कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता है, प्रत्युत उससे साहित्य
में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि निराला का काव्य प्रयोजन के साथ व्यक्त हुआ है
तथा उसमें भावुकता स्वाभाविकता होने के साथ-साथ एक गरिमा भी उपस्थित होती है।

6.0 परिचय

महादेवी वर्मा हिंदी की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्रियों में से हैं। वे छायावाद के चार स्तंभों में से एक हैं। आधुनिक हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कवयित्रियों में से एक होने के कारण इन्हें आधुनिक युग की मीरा भी कहा जाता है। महादेवी जी ने स्वतंत्रता से पहले और बाद का भारत दोनों देखा था। उन्होंने व्यापक समाज के भीतर विद्यमान हाहाकार, रुदन को देखा, परखा और करुणा से भरकर अंधकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की। उन्होंने मन की पीड़ा को इतने स्नेह और श्रृंगार से सजाया कि दीपशिखा में भी जन-जन की पीड़ा के रूप में स्थापित हुई और उन्होंने केवल पाठकों को ही नहीं समीक्षकों को भी गहराई तक प्रभावित किया।

महादेवी का जन्म 26 मार्च 1907 को प्रात:काल 8 बजे फर्रुखाबाद उत्तर प्रदेश, भारत में हुआ। उनके परिवार में लगभग 200 वर्षों या सात पीढ़ियों के बाद पहली बार पुत्री का जन्म हुआ था। अत: बाबा बांके बिहारी हर्ष से झूम उठे और इन्हें घर की देवी मानते हुए पुत्री का नाम महादेवी रखा। महादेवी वर्मा के मानस बंधुओं में सुमित्रानंदन पंत एवं निराला का नाम लिया जा सकता है, जो उनसे जीवन पर्यंत राखी बंधवाते रहे। महादेवी की निराला जी से अत्यधिक निकटता थी वह उन्हें लगभग चालीस वर्षों तक राखी बांधती रहीं। यद्यपि

महादेवी ने कोई उपन्यास, कहानी या नाटक नहीं लिखा फिर भी उनके लेख, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, भूमिकाओं और ललित निबंधों में जो गद्य मिलता है वह श्रेष्ठतम गद्य का उदाहरण है।

महादेवी जी की शिक्षा इंदौर के मिशन स्कूल से प्रारंभ हुई साथ ही संस्कृत, अंग्रेजी, संगीत तथा चित्रकला की शिक्षा अध्यापकों द्वारा घर पर ही दी जाती रही। सन् 1932 में जब उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. पास किया तब तक उनके दो कविता संग्रह 'नीहार' और 'रश्मि' प्रकाशित हो चुके थे। सन् 1916 में इनका विवाह बरेली के पास नवाबगंज के निवासी श्री स्वरूप नारायण जी के साथ हुआ। श्रीमती महादेवी वर्मा को विवाह जीवन से विरक्ति थी। महादेवी जी का जीवन एक संन्यासिनी का जीवन था। सन् 1966 में पति की मृत्यु के बाद वे स्थायी रूप से इलाहाबाद में रहने लगी।

महादेवी का कार्य लेखन, संपादन और अध्यापन रहा। उन्होंने इलाहाबाद में प्रयाग महिला विद्यापीठ के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। सन् 1930 में नीहार, 1932 में रश्मि, 1934 में नीरजा तथा 1936 में सांध्यगीत नामक उनके चार कविता संग्रह प्रकाशित हुए। सन् 1939 में इन चारों काव्य संग्रहों को उनकी कलाकृतियों के साथ वृहदाकार में 'यामा' शीर्षक से प्रकाशित किया गया। इसके अतिरिक्त उनकी 18 काव्य और गद्य-कृतियां हैं जिनमें मेरा परिवार, स्मृति की रेखाएं, पथ के साथी, शृंखला की कड़ियां और अतीत के चलचित्र प्रमुख हैं। आधुनिक गीत काव्य में महादेवी जी का स्थान सर्वोपरि है। उनकी कविता में प्रेम की पीर और भावों की तीव्रता विद्यमान होने के कारण भाव, भाषा और संगीत की जैसी त्रिवेणी प्रवाहित होती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। 1943 में उन्हें 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' एवं 'भारत भारती' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। प्रस्तुत इकाई में हम महादेवी वर्मा के कृतित्व, उनके काव्य में वेदना तत्व व काव्य सौंदर्य का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

6.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- महादेवी के काव्य में वेदना तत्व का विस्तृत रूप से अध्ययन कर पाएंगे,
- महादेवी के काव्य के द्वारा वेदना के विविध रूपों का अध्ययन कर पाएंगे,
- महादेवी जी की प्रतीक योजना का विश्लेषण कर पाएंगे,
- महादेवी वर्मा के प्रगीतों के भाव-सौंदर्य का मूल्यांकन कर पाएंगे।

6.2 महादेवी के काव्य में वेदना तत्व

महादेवी वर्मा गहन किंतु सरल आस्तिक स्वभाव वाली कवयित्री हैं जो कि उत्तर प्रदेश के एक संभ्रांत परिवार से संबंधित रहीं। परिवार में उनकी माता की आस्तिक भावना, ईश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा एवं भावुकपूर्ण हृदय ने जहां महादेवी वर्मा के मानस को दृढ़ आस्था का आधार प्रदान कर प्राणिमात्र के प्रति करुणामय बनाया वहीं दूसरी ओर उनके पिता के गुरु-गंभीर स्वभाव एवं दार्शनिक मानस ने उनके मन को रहस्यवाद की ओर मुड़ने को प्रेरित किया। इस

तथ्य को वे स्वयं भी स्वीकार करते हुए लिखती हैं- "एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है परंतु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की सांप्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या संप्रदाय में न बंधाने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी।" महादेवी वर्मा को अपने माता एवं पिता से प्राप्त दोनों संस्कारों के कारण ही हमें उनके काव्य में उदात्त मानवीय करुणा का भाव तथा उसके साथ साथ प्रवाहित होती रहस्यवाद की धारा के दर्शन होते हैं। विवाह और परिणय सूत्र की विच्छिन्नता के महत्व को भी हम अस्वीकार नहीं कर सकते। भले ही उनकी अनुभूति पूरी तरह पार्थिव न हो, उनके प्रणय गीतों में वासना तत्व के लेश मात्र भी दर्शन न होते हों परंतु नारी जीवन की चरम सिद्धि, सफल दाम्पत्य जीवन प्राप्त न होने पर जो दुखमयी प्रतिक्रिया होती है उसका वेदनामय प्रभाव काव्य पर पड़े बिना रह ही नहीं सकता। इस दाम्पत्य जीवन की असफलता ने उनके हृदय में जो वेदना उत्पन्न की उससे मानस की नीरवता व एकांतता, बेचैनी और जीवन में धुंधलेपन की छाया ने महादेवी के काव्य को करुणा एवं वेदना से सराबोर कर दिया है।

महादेवी वर्मा की वेदना के मूल तत्व के संबंध में भले ही विद्वानों में मतभेद हो परंतु इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि महादेवी के व्यक्तित्व की मूल विशेषता वेदना ही है। महादेवी का कथन है कि "विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जल-बिंदु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।" कवयित्री को दृढ़ विश्वास है कि अपनी वेदना को विश्व वेदना में मिलाकर देखने से ही कोई कवि अपने कर्तव्य को पूरा कर पाता है।

महादेवी वर्मा का हृदय करुणा एवं संवेदना से सर्वथा ओत प्रोत दिखाई पड़ता है। यह उनके पद्य ही नहीं अपितु गद्य में भी सर्वत्र दिखाई पड़ता है। महादेवी स्वयं इसे अपने बाल्यकाल से ही अपने अंतर्मन में स्थित मानती हैं। उनका कथन है कि "बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण, उनके संसार को दु:खात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय परिचय हो गया था।" अब देखने वाली बात यह है कि महादेवी का यह परिचय करुणा का प्रसाद बनकर केवल मानव जाति के लिए ही नहीं अपितु वृक्ष, हवा, पशु-पक्षी एवं संपूर्ण प्रकृति तथा अन्य सभी निर्बल, असहाय आदि की वेदना के साथ जुड़ गया और महादेवी वर्मा के काव्य में अमर वरदान बन गया। यही कारण सामने दिखाई भी देता है कि उनके काव्य का मूल यही वेदना बन गई। महादेवी दर्शन विशेषत: भारतीय दर्शन की अच्छी जानकार थीं। भारतीय दर्शन में दु:खवाद की जड़े भी विद्यमान हैं। वैदिक वाङ्मय के पश्चात भारतीय दर्शन और साहित्य में दु:खवाद के दर्शन होते ही रहे हैं। उदाहरण के तौर पर यदि देखा जाए तो बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन के साथ साथ षड्दर्शन में भी दु:खवाद पोषित होता दिखाई देता है। महादेवी वर्मा ने भारतीय दर्शन एवं साहित्य में वर्णित दु:खवाद गृहण तो किया किंतु थोड़े बदले हुए स्वरूप में। उनके दु:खवाद और प्राचीन दर्शन के दु:खवाद में थोड़ी भिन्नता है। वे दु:खवाद को प्रकृति के साथ जोड़कर प्रस्तुत करती हैं। साग्रह वे प्रकृति के प्रति उन्मुख हुई हैं। वे पार्थिव मिलन को महत्व नहीं देती अपितु सभी

जगह विरह और मिलन की भाषा में ही अभिव्यक्ति प्रदान करती दिखाई पड़ती हैं। महादेवी में एक बात और भी है कि महादेवी की वेदना दुःखमूलक नहीं है। उनके संपूर्ण काव्य में केवल कुछ स्थानों को यदि छोड़ दिया जाए तो, दुःखवादिता होते हुए भी एक अद्भुत आनंद का भाव जाग्रत होता है। उनकी व्यक्तिगत जीवन की स्थितियां-परिस्थितियां, सामाजिक जीवन की विषमताएं और व्यक्तिगत वेदना को उदात्त बनाने की प्रबल इच्छा ऐसी कुछ बातें हैं जो उनके वेदनानुभूति के कारणों में गिनाई जा सकती हैं। इस प्रकार दुःख रूपी सागर में गोते लगाते हुए जो काव्य रूपी रत्न उन्होंने हमारे समक्ष रखा है वह आकर्षक होने के साथ-साथ मधुर भी है।

महादेवी के वेदना के स्वरूप और उसके विकास का विश्लेषण करते हुए उनके द्वारा अपनी कृति 'यामा' की भूमिका में कही गई उनकी बात का उल्लेख करना अवश्य प्रासंगिक होगा क्योंकि उनकी दुःख विषयक मान्यताएं और 'दुःख' का अर्थ साधारण जन की मान्यता से एकदम अलग हटकर है। 'यामा' की भूमिका में वे अपने विचार प्रकट करते हुए कहती हैं- "दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांधे रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सके किंतु हमारा एक बूंद आंसू भी जीवन को अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता।" इसी कथन को आगे विस्तार देते हुए वे कहती हैं:- "समष्टिगत सुख विश्व वेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है तो व्यक्तिगत दुख विश्व के सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व।"

महादेवी की ऐसी विचारधारा से हम इस नतीजे पर पहुंच सकते हैं कि वे दुःख को जीवन को नष्ट करने वाला तत्व न मानते हुए जीवन की स्फूर्ति तथा प्रेरणा तत्व मानकर चलती हैं। वे इसे कवि का मोक्ष मानकर चलती हैं तथा जीवन को अमरत्व प्रदान करने वाली शक्ति स्वीकार करती हैं। दुख में निर्माण करने की अपरिमित शक्ति एवं ऊर्जा है। यह सुख का दूत है। महादेवी की पीड़ा के अंतःस्थल में प्रेम अवस्थित है और यही कारण है कि उनकी पीड़ा जहां एक ओर उन्हें जलाती है वहीं दूसरी ओर उन्हें शीतलता का आभास भी कराती है, और यही कारण है कि महादेवी की पीड़ा अन्य साधारण जन की पीड़ा से सर्वथा भिन्न है, महादेवी वेदना एवं पीड़ा को कई सुंदर संज्ञाओं से विभूषित करती हैं जैसे- मधुमय, मधु, मधुमदिरा सी धार, चंदन सी शीतल आदि।

महादेवी वर्मा के लिए वेदना केवल नफरत का विषय ही नहीं है अपितु वह प्रेम का विषय भी है। उनके लिए वेदना का महत्व तीन कारणों से है- प्रथमतः वेदना अंतःकरण को शुद्ध करती है। दूसरी वह प्रिय को और अधिक निकट लाती है तथा तीसरे प्रियतम की शोध भी उसी पर आधारित रहती है। यही कारण है कि महादेवी वर्मा के काव्य में वेदना के तीन रूप दिखाई पड़ते हैं:

(i) निर्माणात्मक वेदना

(ii) करुणात्मक वेदना

(iii) साधनात्मक वेदना

6.2.1 निर्माणात्मक वेदना

सामान्य जन की दृष्टि में दुख जीवन का अभावात्मक पहलू है इसीलिए दुख को कष्टकारी, दुखकारी, विध्वंसकारी इत्यादि ना जाने क्या-क्या कह दिया गया है किंतु महादेवी की दृष्टि इन सभी दृष्टियों से सर्वथा भिन्न है। अपने काव्यपथ को आध्यात्मिक जल से सराबोर करते हुए अपनी अमर प्रेम-यात्रा की ओर निरंतर अग्रसर रहने वाली कवयित्री महादेवी का आराध्य चिर-चेतन तथा परम तत्व ब्रह्म है। फिर उसकी प्रेमजनित वेदना विध्वंसकारी कैसे हो सकती है। जन साधारण की दृष्टि से महादेवी वर्मा कतई सहमत नहीं है वे तो वेदना को निर्माणात्मक स्वीकार करती हैं। 'नीरजा' की रचनाकार अपनी वेदना को निर्माण से जोड़कर पाठक के सामने प्रस्तुत करती है–

"गल जाता लघु बीज असंख्य,
नश्वर बीज बनाने को।"

काव्य में वे कहीं भी यह स्वीकार नहीं करती कि वेदना गतिहीनता की ओर ले जाती है अथवा जीवन को निस्पंद बनाती है। वे तो इसके ठीक विपरीत यह स्वीकार करती हैं कि वेदना के अभाव में जीवन निस्पंद हो जाता है, गतिहीन हो जाता है–

"इन मिलन-विरह के शिशुओं के बिन
विस्तृत जग का आंगन सूना।"

अर्थात जीवन में वेदना का भी उतना ही महत्व है जितना आनंद का। इसके बिना वे विस्तृत जग के आंगन को सूना मानती हैं। कई स्थानों पर तो वे प्रेम की पीर में करुणा और वेदना की सजलता का पुट भरकर मिलन का तिरस्कार करती भी दिखाई पड़ती हैं तथा विरह को ही प्रेम साधना का एकमात्र साध्य और एकमात्र साधन मानते हुए कहती हैं–

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव अरे यह,
मेरा मिटने का अधिकार?"

दुख मार्ग से आने वाले प्रियतम के पथ शूल भी उनको बहुत रुचिकर एवं परमप्रिय हैं।

"दूर तुमसे हूं अखंड सुहागिनी भी हूं,
बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं।"

यह कहकर वे विरह में मिलन और मिलन में ही विरह का साक्षात्कार करने लगती हैं। उनका प्रियतम तो "प्राणों का अंतिम पाहुन" है। उसकी प्रतीक्षा में यह प्रेयसी सुख प्राप्त करती है जो उन्हीं के शब्दों में चिर काम्य है। वे वेदनापूरित बिल्कुल भी नहीं होती हैं। उन्हें तनिक सा भी कष्ट नहीं होता है। वे तो प्रतीक्षा के इस अंधकार में विरह-दीपक जलाकर परिष्कार करती हैं–

"अपने इस सूनेपन की
मैं हूं रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जलाकर
करती रहती दीवाली।"

अत: महादेवी की वेदना कोई साधारण जन की वेदना नहीं जो कि पीड़ाजन्य है। उनकी वेदना तो निर्माणात्मक वेदना है जो प्रेम की पोषक एवं संवर्द्धक है।

6.2.2 करुणात्मक वेदना

महादेवी वर्मा का दृढ़ विश्वास है कि सुख का समय होने पर व्यक्ति की भावनाएं संकीर्ण हो जाती हैं तथा दु:ख में ये व्यापक रूप धारण कर लेती हैं। दुख में व्यापक हो जाने वाली इसी भावना से करुणा का उद्‌भव होता है, और यही विचार सबसे बड़ा कारण है कि महादेवी वर्मा की वेदना में करुणा भाव की प्रधानता है। यह करुणा भाव दो प्रकार से दिखाई पड़ता है- सार्वकालिक और सर्वजनीन तथा चतुर्दिक परिस्थितियों से अनुप्राणित। प्रथम के अंतर्गत सभी प्राणी उनकी करुणा का प्रसाद प्राप्त करते हैं तथा दूसरे के अंतर्गत युगधर्म से प्रेरित होकर उन्होंने संक्रान्ति कालीन समाज की वेदना को अभिव्यक्त किया है। एक ओर तो वे अपने प्रिय से याचना करती हुई दिखाई देती हैं कि वे उनके हंसते अधरों को न देखते हुए संसार के आंसुओं की लड़ियों को देखें–

"मेरे हंसते अधर नहीं जग की आंसू लड़ियां देखो!
मेरे गीले पलक छुओं मत मुरझाई कलियां देखो!

गीली अश्रुयुक्त पलकों को छूने से मना करते हुए जीवन में असहाय, तिरस्कृत लोगों के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को कहती हैं तथा दूसरी ओर बाह्य जीवन के दुखों से प्रभावित होकर उन्होंने किसी पड़ोसी की विधवा वधू के जीवन पर 'अबला', 'विधवा' जैसे शीर्षकों से शब्द चित्रों की रचना की तथा स्वयं 'ध' का रूप धारण करते हुए झर झर मिट जाने का वरदान मांगते हुए दिखाई पड़ती हैं–

"नित घिरूं झर झर मिटूं प्रिय,
धन बनूं वर दो मुझे प्रिय।"

प्रिय के इस मूक मिलन की स्मृति अमर है। उनका दुख तो समग्र संसार को एक सूत्र में बांधता है। उनकी पीड़ा ही उन्हें आनंद की चरमावस्था तक ले जाती है क्योंकि यह पीड़ा भी तो प्रियतम की दी हुई है। "बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं" कहकर जब वे "मैं और तुम" को एकीकृत करती हैं तो अनायास उनकी अंतर्रात्मा से यह शब्द निकल ही जाते हैं–

"पर शेष नहीं होगी यह,
मेरे प्राणों की क्रीड़ा।
तुझको पीड़ा में ढूंढ़ा,
तुम में ढूंढूंगी पीड़ा।"

अत: महादेवी की मार्मिक और व्यापक पीड़ा एवं वेदना उनकी स्वयं की न रहकर संपूर्ण विश्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं और वे करुणामय संसार में आत्मसात हो जाती हैं।

6.2.3 साधनात्मक वेदना

महादेवी वर्मा की वेदनानुभूति के बारे में पहले ही कहा जा चुका है कि इनकी वेदना लोक से अलग हटकर है। कवयित्री को पूर्णरूपेण विश्वास है कि वेदना ही वह तत्व है जिसके

द्वारा प्रिय से मिलन हो सकता है। वेदना रूपी मार्ग पर चलकर ही प्रेयसी अपने प्रिय से साक्षात्कार कर सकती है। प्यासे हृदय को प्रेम रूपी अमृत का पान वेदना ही करवा सकती है। यही साधनात्मक वेदना है। महादेवी वर्मा के काव्य में इसी साधनात्मक वेदना का सर्वाधिक चित्रण मिलता है। कवयित्री इसी वेदना के विश्वास पर प्रियमिलन को आतुर दिखाई पड़ती है। शत शत निर्वाण और मुक्ति के क्षण बांधे रखने में यही वेदना ही सहायक है। यथा–

"एक करुण अभाव में चिर तृप्ति का संचार संचित,
एक लघुक्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत शत।"

उनका दृढ़ विश्वास है कि प्राणोत्सर्ग और बलिदान से ही प्रेम की सच्ची परीक्षा होती है तथा प्रिय निकट आता चलता है। अपने इसी भाव को दीपक के माध्यम से अभिव्यक्त करती हुई महादेवी वर्मा कहती हैं–

"तू जल जल होता जितना क्षय
वह समीप आता छलनामय।"

जिस निर्माण में हृदय की धड़कनों का योग नहीं है, सुधि का दंश नहीं है वह उनके लिए तिरस्कृत है, तिरस्कार की वस्तु है–

"जिसमें कसक न सुधि का दंशन
प्रिय के मिट जाने के साधन
वे निर्वाण-मुक्ति उनके
जीवन के शत बंधन मेरे हों।"

यही विश्वास है जो वे पूजा अर्चना के बाह्य विधानों एवं उपादानों का खंडन करती हुई दिखाई पड़ती हैं। वेदनापूरित जीवन से बढ़कर प्रिय की वंदना और कैसे की जा सकती है। इसी रूपक को बांधते हुए वे गा उठती हैं–

"क्या पूजा क्या अर्चन रे?
उस असीम का सुंदर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे"

अतः महादेवी की वेदना में निराशा के तो कहीं दर्शन होते ही नहीं हैं, सर्वत्र आशावादिता ही दिखाई पड़ती है। यही आशावादिता ही प्रिय से मिलने की आतुरता को और अधिक बढ़ाती है तथा उस आतुरता से आनंद की अनुभूति कराती है। इस आशावादिता के साथ साथ आत्मविश्वास, आत्मपरितोष और एक ऐसी आत्मदीप्ति दिखाई पड़ती है जो एक साथ मानस को आत्मविश्वास और आनंद के आलोक से पूरित कर स्फूर्ति जगा देती है।

महादेवी वर्मा के संपूर्ण काव्य को विश्लेषित किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि उसमें वेदनानुभूति का सतत् विकास हुआ है। 'रश्मि' के उनके गीतों में यह वेदना पतंगे के समान जलती दिखाई देती है। उसमें एक अधीरता, आतुरता और अस्थिरता है–

"मृगमरीचिका के चिर पथ पर
सुख आता प्यासों के पग धर
रुद्ध हृदय के पट लेता कर।"

'रश्मि' के बाद 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' में यह वेदनानुभूति शांत, स्निग्ध और कोमल होती दिखाई पड़ती है–

"मधुर पिक हौले हौले बोल
हठीले हौले हौले बोल।"

उनके प्रारंभिक गीतों में संयम का अभाव दिखाई पड़ता है। ऐसे गीतों में प्रिय से मिलने की तीव्र बेचैनी, आर्त क्रंदन, हाहाकार सा दिखाई पड़ता है। परंतु बाद में वह आत्मसंयम से बंधा हुआ दिखाई पड़ता है। सांध्यगीत के वक्तव्य में महादेवी वर्मा ने स्वयं स्वीकार भी किया है: "दु:खातिरेक की अभिव्यक्ति आर्त क्रंदन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है जिसमें संयम का नितांत अभाव है, उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में है, जिसमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयत हो जाने की संभावना रहती है। उनका प्रकाशन एक दीर्घ विश्वास में भी है। जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती और उसका स्पष्टीकरण निस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव में अपने गीत को कवि को आर्त क्रंदन के पीछे छिपे हुए संयम से बांधना होगा, तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा।"

यह वक्तव्य आदर्श गीत की व्याख्या करने के साथ-साथ कवयित्री के गीतों में वेदना भाव के विकास पर भी प्रकाश डालता है। उनके वेदना भाव के विकास का क्रम इस प्रकार रहा है- क्रंदन, सजल नयन, दीर्घ नि:श्वास और निस्तब्धता। 'समाज' की व्यवस्था पर जो आघात उनके आरंभिक गीतों में मिलता था वह बीच में दूर हो गया था परंतु 'बंग-दर्शन' में वह फिर से बाह्य जगत की ओर मुड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। कुछ आलोचकों एवं समालोचकों ने महादेवी वर्मा की विरह वेदना को अवास्तविक कहा है किंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि कृत्रिम अनुभूतियां महान कला का निर्माण नहीं कर सकतीं और महादेवी वर्मा के काव्य की महानता हिंदी काव्य जगत में स्वयं सिद्ध है। इस सच्चाई को स्वीकार किया जा सकता है कि उनकी विरहानुभूति में आवेग नहीं है, उसका वातावरण प्रशांत और सूक्ष्म है। उनके काव्य में शृंगार को शांत रस के आवेष्टनों में प्रतीक पद्धति का आश्रय लेने के कारण उनकी पीड़ा का स्वरूप लौकिक न रहकर अलौकिक, मानवीय न रहकर रहस्यात्मक हो गया है। पर यह सब एक स्वाभाविक प्रक्रिया के अंतर्गत ही हुआ है।

हालांकि महादेवी वर्मा के काव्य का मूल स्वर वेदना ही है फिर भी आनंद की भावना उसमें अंत: सलिला की तरह परिव्याप्त है। वेदना के अंधकार में जीवन-दिवस की इच्छा भी है। सुख और दुख दोनों के अस्तित्व को वे समान रूप से स्वीकारती हैं। यद्यपि सुख को दुख से कम ही महत्व देती हैं। उनका लक्ष्य भी परम शांति है जो आनंद की ही एक दशा है संभवतया इसी स्थिति को ध्यान में रखकर उन्होंने कहा है: "इससे मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं जीवन भर आंसू की माला ही गूथा करूंगी और सुख का वैभव जीवन के एक कोने में बंद पड़ा रहेगा। परिवर्तन का दूसरा नाम ही जीवन है। जिस प्रकार जीवन के उषाकाल में मेरे सुखों का उपहास सा करती हुई विश्व के कण-कण से एक करुणा की धारा उमड़ पड़ी है उसी प्रकार संध्याकाल में जब लंबी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दबकर आतुर क्रंदन कर उठेगा तब विश्व के कोने कोने से एक अज्ञातपूर्वक सुख मुस्कुरा पड़ेगा। ऐसा ही मेरा स्वप्न है।"

अतः समग्रतः कहना उचित होगा कि महादेवी वर्मा की वेदनानुभूति को सही रूप में देखे जाने की आवश्यकता है। उन्हें दुखवाद का प्रचारक मानना नितांत असंगत है। उनकी काव्य दृष्टि तो लोक मंगलकारी है तथा समाजोन्मुखी है। उसमें एक प्रच्छन्न आशा का संदेश तथा नए जीवन प्रभात की अरूणिमा का अंतः सौंदर्य सूक्ष्म रूप में परिव्याप्त है। उनकी वेदना तो संसार समग्र को एक सूत्र में बांधती है।

6.3 महादेवी वर्मा की प्रतीक योजना

'प्रतीक' शब्द अंग्रेजी शब्द 'सिंबल' (Symbol) का हिंदी पर्याय है जिसका शाब्दिक अर्थ 'चिह्न' या 'प्रतिरूप' के अर्थ में लिया जाता है। मानव अपनी भावना की विशद अभिव्यक्ति जब लोक प्रचलन के आधार पर सीधे साधे ढंग से नहीं कर पाता तब वह प्रतीकों की सहायता लेता है। इस संबंध में कहा भी गया है कि कवि के सूक्ष्मतम भावों को लाक्षणिक प्रयोग द्वारा ही वाणी प्राप्त होती है। कई बार ऐसा होता है कि कवि अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त नहीं कर पाता क्योंकि उसे कहीं न कहीं किसी कठिनतम स्थितियों का सामना करना पड़ जाता है ऐसी स्थिति में प्रतीक कठिनतम अभिव्यक्ति को भी सरल एवं स्पष्ट बना देते हैं। प्रतीकों के प्रयोग द्वारा कवि काव्य को सनातन बनाने की कड़ी में जोड़ता है क्योंकि प्रतीकों द्वारा हमारी इंद्रिया वस्तु या भावों आदि से प्रगाढ़ परिचय प्राप्त कर स्मृति को सुरक्षित रखती हैं। छायावादी सभी कवियों ने काव्य में प्रतीक योजना को बखूबी स्थान दिया है। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' तो है ही प्रतीक काव्य। प्रतीकों के माध्यम से ही वह जीवन की गंभीरतम भावनाओं को समझने में सहायक प्राप्त होती हैं। 'श्रद्धा' जो कि कोमल भावनाओं का प्रतीक है हृदयवाद का प्रतिनिधित्व करती है। इड़ा जो पौरुष भावनाओं का प्रतीक है, बुद्धिवाद का प्रतिनिधित्व करती है। कवि प्रसाद ने प्रतीकों के माध्यम से अपनी काव्यानुभूति को सहज और सरल बना दिया है।

छायावादी कवियों की परंपरानुसार महादेवी वर्मा ने भी अपने काव्य की समृद्धि के लिए प्रतीकात्मक संकेत भाषा का आश्रय लिया है। वे छायावादी प्रतीकों के साथ-साथ मौलिक प्रतीकों का प्रयोग भी सकुशल रूप में करती हैं। आंतरिक वेदना की मुखर अभिव्यक्ति बना "दीपक" प्रतीक तो महादेवी वर्मा की पहचान के रूप में पाठकों के हृदय में ठहर सा गया है। इसके अतिरिक्त भी महादेवी वर्मा ने सैंकड़ों प्रतीकों का सुंदर प्रयोग किया है। साथ ही बहुत सारे ऐसे प्रतीक भी हैं जिनका महादेवी वर्मा ने निर्माण भी किया है। महादेवी एक रहस्यवादी कवयित्री हैं तथा रहस्यवादी काव्य में प्रतीकों का प्रयोग हर स्थान पर ही हुआ है क्योंकि रहस्यवादी कवि अपनी बात को प्रतीकों के माध्यम से ही समझाता है। महादेवी वर्मा आधुनिक काव्य के छायावादी युग की सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादिनी कवयित्री हैं। निसंदेह उनका काव्य अत्यधिक सांकेतिक है तथा उन्होंने प्रतीकों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। महादेवी के काव्य में प्रतीक योजना की दृष्टि से अनुशीलन करने पर दृष्टिगत होता है कि इनके काव्य में प्राप्त प्रतीक दो प्रकार के होते हैं- परंपरागत तथा स्वनिर्मित।

परंपरागत प्रतीकों के अंतर्गत वे प्रतीक आते हैं जो कि प्राचीन साहित्य में प्रयुक्त किए गए हैं, निर्गुण संत काव्य धारा में प्रयुक्त हुए हैं तथा अन्य छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त कुछ प्रतीक जिन्हें महादेवी वर्मा ने भी प्रयोग किया है। ये प्रतीक परंपरागत एवं परिचित होने के

कारण सहज ही बोधगम्य है जैसे सागर संसार के लिए प्रयुक्त हुआ है। कली, भ्रमर, ... इंद्रधनुष, उषा, चंचला, मेघ, पवन, दीपक आदि तमाम परंपरागत प्रतीकों को वे ग्रहण कर... हैं। उपनिषद आदि में भी प्रकृति के इन सभी उपादानों का प्रतीक रूप में प्रयोग प्रचुरता ... पाया जाता है। जगह-जगह सूर्य, चंद्रमा, तारे, संध्या, उषा, अमानिशा आदि का प्रतीक रूप ... प्रयोग दृष्टव्य है। रात्रि को नारी रूप में चित्रित करने की परिपाटी कोई नई नहीं है अपितु ... पुरानी है। महादेवी वर्मा ने भी इस प्रतीक को प्रयोग में लाने की अनेकानेक चेष्टाएं की है। 'यामिनी' के कई नारी चित्र उनके काव्य में प्रस्तुत हुए हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ बसंत रजनी
तारकमय नव वेणी बंधन
शशि फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि वलय सित धन अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी।
पुलकित आ बसंत रजनी।"

'संपुट के केदारण्य' में माता-पिता को संपुट के रूप में चित्रित किया गया है। महादेवी वर्मा ने भी संपुट का प्रयोग इसी अर्थ में किया है-

"नीलम मरकत के संपुट दो
जिनमें बनता जीवन मोती।"

इसके साथ-साथ ही अनेकानेक परंपरागत प्रतीकों का सहारा महादेवी ने अपने काव्य में शोभा, प्रदान करने हेतु लिया है। सांध्यगगन-लौकिकता के प्रति विराग का प्रतीक हैं, यामिनी सेवारत साधिका है ही। गोधूलि-करुण मिलन की बेला है तथा सरिता-करुणा की अविरल धारा है।

इनके अतिरिक्त तेल-आंतरिक स्नेह, झंझावत-विघ्न बाधाएं, अंधकार-विषाद, बदली-संतों या भक्तों की गंभीरतापूर्वक सेवा करने वाली दासी, वर्षा- करुणा, मकरंद-अश्रु, नभ की दीपावली-तारागण, वीणा-हृदय, वीणा के तारहृदय के भाव, गायक-साधक, प्याली-जीवन का प्रतीक, कालिंदी-अश्रुधारा, पतवार-साहस भाव, लहर-हृदय का भावावेग, शृंगार-मन का उत्साह, सागर-सांसारिक चक्र तथा इंद्रधनुष-मधुर मिलन की स्मृतियों आदि के अनेकानेक प्रतीक महादेवी वर्मा के काव्य सौंदर्य को चार चांद लगाते हुए दिखाई पड़ते हैं।

कई संत कवियों की भांति महादेवी वर्मा ने भी दाम्पत्य प्रतीकों को अपने काव्य में विशेषत: रहस्यवादी काव्य में स्थान दिया है। कई स्थानों पर उन्होंने ईश्वर को पति मानकर तथा स्वयं को उसकी अर्धांगिनी एवं प्रेयसी मानते हुए प्रणय-निवेदन किया है। शरीर को पिंजरा तथा आत्मा को तोता मानने की प्राचीन परिपाटी का अनुसरण भी महादेवी वर्मा ने किया है-

"कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो।"

संतों द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों के साथ ही सूफियों द्वारा प्रयुक्त कई प्रतीकों को महादेवी के काव्य में देखा जा सकता है। साकी, प्याला, मदिरा आदि ऐसे प्रतीक हैं जो कि महादेवी ने सूफी काव्य से ग्रहण किए हैं। ये प्रयोग अनेकश: उनके काव्य में उपलब्ध हैं:

"छिपाकर लाली में चुपचाप
सुनहला प्याला लाया कौन।"

अन्य छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त किए हुए प्रतीक जो कि प्रकृति के उपादान हैं, महादेवी ने भी प्रयोग किए हैं। बस दोनों में अंतर इतना है कि अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा महादेवी वर्मा के प्रतीकों के पीछे बौद्धिकता का तत्व कुछ अधिक प्रबल है। यह विशेषता स्वयं ही सामने नहीं आई अपितु इसके लिए महादेवी का विशेष प्रयास दिखाई पड़ता है। इस बौद्धिकता के तत्व ने महादेवी वर्मा को प्रतीक योजना की श्रेणी में अन्य कवियों से कहीं आगे लाकर खड़ा कर दिया है। इन दोनों में एक और भिन्नता भी दिखाई पड़ती है जो यह है कि महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्य में व्यक्त हुए प्रकृति के सौंदर्य प्रतीकों को न लेकर उन प्रतीकों को, अव्यक्त गतियों तथा छायाओं को ग्रहण करने की सफल कोशिश की है। अपने इस प्रयत्न में वे सफल तो हुई हैं किंतु कहीं कहीं बौद्धिकता और अव्यक्त गतियों तथा छायाओं को ग्रहण करने के कारण उनकी कविता दुरुह सी हो गई लगती है। इस दुरुहता का एक कारण यह भी माना जा सकता है कि वे अपने प्रतीकों के प्रयोग में स्वच्छंद भी रही हैं। एक प्रतीक एक ही अर्थ में सर्वत्र प्रयुक्त नहीं हुआ है। वह संदर्भ के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न अर्थ देता है, किंतु फिर भी जहां ये प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं एक अलग एवं अद्‌भुत सौंदर्य की छटा बिखेरते हैं।

महादेवी वर्मा के ऋतु तथा लौकिक भावों संबंधी प्रतीक भी मौलिक एवं सराहनीय हैं। कवयित्री इन प्रतीकों का प्रयोग रूपक, उपमान तथा लक्षणा के रूप में अलग अलग ढंग से भी करती हैं। "मैं नीर भरी दुख की बदली" में रूपक का प्रयोग है तो "धूप सा तन दीप सी मैं" में उपमान का सुंदर प्रयोग दृष्टव्य है। कहीं-कहीं महादेवी की प्रतीक योजना पर दुरूह होने के आक्षेप भी लगे हैं जिसके बारे में ऊपर भी ज़िक्र हुआ है। परंतु इस संबंध में यह भी कहा जा सकता है कि ये प्रतीक उनकी भावाभिव्यंजना को सशक्त एवं समर्थ भी बनाते हैं।

आध्यात्मिक और भावात्मक प्रतीकों का बाहुल्य महादेवी वर्मा की सूक्ष्म और गहन कल्पना शक्ति का तो परिचायक है ही उनकी मनोवैज्ञानिक पकड़ को भी वह स्पष्ट करता है। लौकिक प्रतीकों से वे अलौकिक को व्यक्त कर देती हैं। अपने काव्य संग्रहों के शीर्षक भी महादेवी वर्मा ने प्रतीकात्मक ही रखे हैं जैसी 'नीहार' -नैराश्यपूर्ण वातावरण का प्रतीक है। 'रश्मि'- आशा, उल्लास का प्रतीक है। 'नीरजा' - सूर्य अर्थात परमतत्व की ओर उन्मुख रहने वाली आत्मा का प्रतीक है। 'सांध्यगीत' - साधना के विकास और आस्था का प्रतीक है तथा 'दीपशिखा'- विरह रूपी रात्रि को झेलती एवं साधना प्रारंभ करती आत्मा का प्रतीक है। उनके 'दीपक' प्रतीक से जलन, पीड़ा, वेदना का अर्थ मात्र ही स्पष्ट नहीं होता अपितु स्वयं जलकर संसार को प्रकाशवान बना देने का अर्थ भी प्रसारित होता है-

"मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर"

महादेवी वर्मा ने भावात्मक, मनोवैज्ञानिक, रूपात्मक, प्रकृति संबंधी, पौराणिक-ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तथा कला संबंधी क्षेत्रों से भी बहुत से प्रतीक लेकर अपनी प्रतीक योजना को

समृद्ध किया है- "मधुर राग तू मैं स्वर संगम", "बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं" आदि ऐसे अनेकानेक उदाहरण हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं।

महादेवी वर्मा ने परंपरागत प्रतीकों का प्रयोग तो किया ही है साथ में कुछ प्रतीकों को उन्होंने स्वयं निर्माण भी किया है। दीप को साधनारत आत्मा के रूप में प्रस्तुत करना, सांध्यगगन को लौकिकता के प्रति विराग के रूप में प्रस्तुत करना, यामिनी को सेवारत साधिका के रूप में चित्रित करना, सरिता को करुणा की धारा के अर्थ में प्रयुक्त करना उनकी अपनी ही मौलिकता का परिणाम है। कुछ ऐसे भी प्रतीक हैं जिनका व्यवहार एक अर्थ में ही होता आया है परंतु महादेवी वर्मा ने उन्हें भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया है। यह भी महादेवी की प्रतीक योजना के लिए एक उत्कृष्टतम् प्रयोग है। उदाहरणतः परंपरागत रूप में शलभ अर्थात भ्रमर को आदर्श प्रेमी के रूप में ही प्रयुक्त किया जाता रहा है। परंतु महादेवी वर्मा ने उसे मोह मूलक सांसारिक आकर्षण के रूप में भी ग्रहण कर प्रस्तुत किया है। उदाहरण दृष्टव्य है-

"शेषमाया यामिनी मेरा निकट निर्वाण।
पागल रे शलभ अनजान।"

ठीक इसी प्रकार तारक समूह को महादेवी वर्मा ने परंपरा से थोड़ा हटकर अपने काव्य में लौकिक भावों के प्रतीक के रूप में भी प्रस्तुत किया है-

"राख से अंगार तारे झर चले हैं।"

प्रस्तुत उदाहरण इस बात की पुष्टि कर रहा है कि आसमान के तारे अंगारों की राख के समान झरते हुए लौकिक भाव के रूप में प्रस्तुत हुए हैं।

ऋतु संबंधी प्रतीकों का प्रयोग भी महादेवी वर्मा की अपनी मौलिक उद्भावना ही है। ग्रीष्म ऋतु को शेष के अर्थ में, वर्षा ऋतु को करुणा के अर्थ में, शिशिर ऋतु को जड़ता के अर्थ में, पतझड़ को दुःख या शेष के अर्थ में, बसंत ऋतु को आनंद या चेतना के अर्थ में प्रयुक्त कर महादेवी वर्मा ने मौलिक उद्भावना का परिचय दिया है। उदाहरणतः

"हास का मधुदूत भेजो
रोष का भ्रू-भंगिमा पतझार को चाहे सहेजो।"

प्रस्तुत पंक्तियों में बसंत ऋतु को हास अथवा आनंद के रूप में तथा पतझड़ को रोष की भ्रू-भंगिमा के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

भावों के लिए किसी स्थान पर 'वीणा के तार' कहीं 'कवियों के उच्छ्वास', कहीं 'उज्ज्वल तारे' प्रयुक्त किए गए हैं। इसी प्रकार ही अश्रु के लिए 'नक्षत्र', 'मोती', 'तुहिन कण' शब्दों का प्रयोग किया गया है। ऐसे में कभी कभी प्रसंग का यदि ध्यान न रखा जाए तो कई बार प्रतीक योजना के बारे में भी भ्रांति उत्पन्न हो जाती है परंतु प्रसंगानुकूलता रहने पर यही प्रतीक काव्य को उच्च कोटि का सौंदर्य प्रदान करते हैं।

महादेवी वर्मा ने प्रतीकों का प्रयोग तीन प्रकार से किया है- रूपक, उपमान और लक्षणा। "मैं नीर भरी दुख की बदली" में यदि वह रूपक रूप में प्रयुक्त हुआ है तो उपमान के रूप में "धूप सा तन दीप सी मैं" प्रयुक्त हुआ है। महादेवी वर्मा के काव्य प्रतीकों की यह विशेषता है कि उन्होंने अधिकांश प्रतीक प्रकृति से ही ग्रहण किए हैं और वे भी ऐसे हैं

की मनः स्थिति के चित्रण तथा विरह भावना को व्यक्त करने में समर्थ हैं। कहीं कहीं पर महादेवी वर्मा की प्रतीक योजना दुरुह सी अवश्य लगती है परंतु वह भावाभिव्यंजना को भी सशक्त एवं सप्राण बनाती है। छायावाद में रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों को अनिवार्य माना गया है और महादेवी वर्मा ने प्रतीकों का कुशलतापूर्वक प्रयोग भी किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा के प्रतीक वर्ण्य वस्तु के विभिन्न पक्षों, अंगों और गुणों की व्यंजना एक साथ करते हैं और संबद्ध विषय या भाव को समग्र रूप में प्रस्तुत कर पाने की अद्‌भुत क्षमता रखते हैं।

6.4 महादेवी वर्मा के प्रगीतों में भाव-सौंदर्य

छायावादी कविता सही अर्थों में "आंतरिक स्पर्श से पुलकित भावों की कविता है"। मानव जीवन चक्र उसका जन्म-मरण, दुख-सुख, संयोग-वियोग, आनंद-शोक आदि की सीमाओं के बीच अपनी यात्रा पूर्ण करता है। कवि के बारे में तो कहा भी गया है कि उसकी पहचान वियोगी होने और आह के गीत सृजन करने में है–

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान
उमड़कर नयनों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।"

जीवन के इस परम अनुभूत सत्य को स्पर्श करके ही छायावादी काव्य-साधना भी हृदय की आध्यात्म गंभीर अनुभूति को प्रस्तुत करती रही। हृदय की अमर अभिव्यक्ति करने वाले इन चारों महाकवियों– प्रसाद, पंत, निराला एवं महादेवी के गीत अमर हो गये। इन चारों में से महादेवी वेदना के गीत मधुरतापूर्वक गाने में सर्वाधिक सफल सिद्ध हुए हैं, और यही कारण है कि उन्हें 'आधुनिक मीरा' भी कहा गया है। साधना का दिव्य दीपक आलोकित कर सदैव यात्रा में रहने वाली महादेवी 'अचल पथिक' बन जाती है। सत्य के सहज ज्योतिर्मय स्वरूप का अस्तित्व वे सामंजस्य में देखती हैं तो कहती हैं–

"सेतु शूलों का बना
बांधा विरह वारीश का जल।"

विरह की घड़ियां भी महादेवी को 'मधुर मधु की यामिनी सी' प्रतीत होती हैं। सुख दुख का यह मेघ-चंचला खेल भी वो समझ जाती हैं। द्वैत-अद्वैत हो जाता है और वे जीवन की गहनतम प्रकाश धारा को सृष्टि-समष्टि रूप में देखना प्रारंभ कर देती है–

"दमकी दिगंत के अधरों पर स्मित की रेखा सी क्षितिज कोर
आ गए एक क्षण में समीप आलोक तिमिर के दूर कोर
घुल गया अश्रु में अरुण हास हो गई हार में जय विलीन।"

यही नहीं "आज वर दो मुक्ति आवे बंधनों की कामना लें" जैसी बात कहने वाली महादेवी वर्मा दृढ़ निश्चयी योद्धा की भांति जीवन संघर्ष करती रहना चाहती हैं। जीवन की इस अनोखी कारा के कोहरे से भरे वातावरण में ही तो परम सत्य की चिदानन्द-ज्योति के दर्शन होते हैं, और एक समय तो ऐसा भी आता है जब वे सभी विषमताओं से ऊपर उठकर उस परम-सत्य के दिव्य संदेश को जन-जन तक पहुंचा देती हैं–

"विरह का युग आज दीखा, मिलनी के लघु पल सरीखा,
दुःख-सुख में कौन तीखा, मैं न जानी औ न सीखा।
मधुर मुझको हो गये सब मधुर प्रिय की भावना लें।

महादेवी वर्मा के ये गीत इसीलिए मीरा के गीतों की तरह अमर हो गए हैं। इनमें छिपे अनूठे भाव सौंदर्य से पाठक भाव विभोर हो जाता है। गीतों में व्यक्तिगत सुख दुख की तीव्रानुभूति की वकालत करती हुई महादेवी वर्मा ने अपने काव्य संग्रह दीपशिखा की भूमिका में गीत की परिभाषा देते हुए कहा है– "साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में लौकिक सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके"।

उनके इस कथन में वे गीति काव्य में व्यक्तित्व की प्रधानता, भावप्रवणता, अंतःस्फूर्ति और गेयता को आवश्यक मानती हैं। वे काव्य में गीतों की महत्ता का प्रतिपादन भी करती हैं। उनका इस संबंध में कथन है कि "काव्य की ऊंची ऊंची हिमालय श्रेणियों के बीच में गीति-मुक्तक एक सजल कोमल मेघ खंड है जो न उससे दबकर टूटता है और न बंधकर रुकता है, प्रत्युत हर किरण से रंग-स्नात होकर उन्नत चोटियों का शृंगार करता है और हर झोंके पर उड़ उड़कर उस विशालता के कोने कोने में स्पंदन पहुंचाता है। महादेवी के बारे में कहा जाता है कि गीत-लेखन में जितनी सफलता महादेवी वर्मा को मिली उतनी और किसी को नहीं मिली। पंत जी ने तो महादेवी के भाव जगत की व्याख्या ही कर डाली। उनका कथन है कि "उनका भाव जगत् ..... अंतर्मुखी भाव-साधना के पवित्र अश्रुओं से द्यौत, तपःपूत स्फटिक शुभ्र प्राण-चेतना का रश्मि कलश मंदिर है जो स्वयं उनके हृदय के भीतर का उनका सूक्ष्म रस-हृदय है। महादेवी के गीतों में केवल कला-विलास नहीं है, वे हृदय की झंकार हैं जो पाठक के हृदय को भी झंकृत करते हैं। प्रगीत काव्य के लिए आवश्यक है कि एक ही मार्मिक उद्गार कसक भरे शब्दों में स्वाभाविक रूप से फूट पड़े और उसकी वेदना पाठक के हृदय में घर करती चली जाए। महादेवी के गीत इस निष्कर्ष पर सफल हैं। वेदना के ताप से गलकर उनकी द्रवीभूत अनुभूति पारे की भाँति तरल होकर बह निकली है।"

महादेवी के गीतों में जीवन रूपी नदी के सुख दुख रूपी दो किनारों के बीच निरंतर बहते हुए परम आनंद के महासागर में मिल जाने का आभास होता है। संयोग और वियोग में दुख और आनंद का जो अनूठा सत्य है वह इस संवेदनशील मानव हृदय को इस संसार के अविच्छिन्न को न छोड़ने का हठ 'शाश्वत पिपासा' बनाए रखता है तथा प्रियतम में मिलकर लीन और तादातकार हो जाने की आकांक्षा जीवन के विकास की चरम-सीमा पार कर लेना चाहती है। महादेवी वर्मा ने जीवन के इसी गूढ़ तथा गहन रहस्य से वेदना के आनंद में साक्षात्कार किया तथा उसे काव्य संसार के पावन बंधनों में जकड़ दिया–

"चिर मिलन-विरह-पुलिनों की
सरिता हो मेरा जीवन,
प्रतिफल होता रहता हो
युग फूलों का आलिंगन।"

संयोगावस्था से वियोगावस्था में आने की स्थिति की मार्मिक वेदना को जीवन का उपहार मान आंसुओं से एक नवीन संसार का निर्माण कर लेने वाली महादेवी वर्मा की कविता प्रकृति से साक्षात्कार की ही नहीं अपितु एकाकार हो जाने की प्रगीति भी है। प्रकृति पुत्र मानी

महादेवी की कविता में बार-बार रूपायित भी हुआ है। 'रश्मि' की भूमिका में वे कहती भी हैं "मेरे लिए तो मनुष्य एक सजीव कविता है। कवि की कृति तो उस सजीव कविता का शब्दचित्र मात्र है जिससे उसका व्यक्तित्व और संसार के साथ उसकी एकता जानी जाती है। वह एक संसार में रहता है और उसने अपने भीतर एक और संसार बसा रखा है जो इस संसार में अधिक सुंदर और अधिक सुकुमार है। मनुष्य में जड़ और चेतन दोनों एक प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध रहते हैं। उसका बाह्याकार पार्थिव है और सीमित संसार का भाग है और अंत:स्थल अपार्थिव असीम का भाग है। एक उसको विश्व से बांधे रखता है तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उड़ाता ही रहना चाहता है।" प्रकृति और प्रकृति पुत्र के मधुर तथा अनुपम चित्रों को शब्दांकित करने वाली इस कवयित्री के हृदय में स्नेह, संवेदना, सहानुभूति, करुणा तथा साधना के भाव जगाने की सहज क्षमता है। साधना पथ की अथक पथिक बनी महादेवी वर्मा आंसू के सैलाब को अपना पाथेय बनाकर चलती चली जाती है। महादेवी वर्मा की जीवन पथ-यात्रा में पंथ ही इनका साथी है और वेदना की साधनात्मक सजगता तथा जीवन के संकल्पों का समन्वय ही उत्साह, साहस और कर्म-प्रेरणा का आवेगमय उन्मेष बनता है। विरह रूपी कमल पुष्प के इस जीवन मूल में जल ही है और नयन पात्र भी इसी से आपूरित है–

"विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना में कर जन्म करुणा में मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात।"

एक उदाहरण और दृष्टव्य है–

"क्यों अश्रु न हों श्रृंगार मुझे?
मेरी मृदु पलकें मूंद मूंद
छलका आंसू की बूंद बूंद।"

इस प्रकार आत्म की जीवन व्यापिनी भावात्मक अनुभूति को जन जन में प्रसारित करती हुई महादेवी वर्मा सेवा, सहानुभूति और अदम्य प्रेरणा की प्रतिमूर्ति बनकर अपने प्रगीतों में उभरती हैं तथा अपने अदम्य साहस से सर्वस्व न्योछावर कर मिट जाती है। आंसुओं की वर्षा में कल्पना और पीड़ा तथा रहस्य और करुणा का समाहार हो जाता है तो अश्रु छाया और आलोकित नेत्र-लोक में संस्कृति मूल्यों की अवधारणा प्रकाशित होने लगती है।

6.4.1 महादेवी वर्मा के प्रगीतों में प्रणय भाव एवं वेदना

महादेवी वर्मा ने अपने प्रगीतों में स्थान-स्थान पर अपने प्रिय को प्रस्तुत किया है। इस प्रेयसी का आराध्य चिर-चेतन तथा परम तत्व ब्रह्म ही है और अलौकिक प्रिय के प्रति अपनी प्रणयानुभूति की मौलिक और मधुर अभिव्यक्ति देने वाली इस विरहिणी ने इसे लौकिकता से जोड़कर देखने या अनुभूति शून्य भावना मानने वालों के आक्षेपों को निराधार भी सिद्ध किया है–

"जो न प्रिय पहचान पाती।
दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत सी तरल धन।"

इनके प्रगीतों में मार्मिक एवं व्यापक वेदना भी इनके जीवन दर्शन तथा साधना पथ के अनुरूप ही ढल जाती है। आत्मचेतना धीरे-धीरे ब्राह्मी चेतना का स्वरूप धार होती है इसीलिए तो कभी कभी वे स्नेह क्षणों को अनुभूत करते हुए कहती हैं–

"कौन तुम मेरे हृदय में?
कौन मेरी कसम में नितमधुरता भरता अलक्षित?"

कभी कभी प्रेम की यह पीड़ा बर्दाश्त नहीं हो पाती तो इसमें करुणा और वेदना की सजलता का पुट भरकर वे मिलन को तिरस्कृत कर विरह को ही प्रेम का एक मात्र साध्य एवं साधन मानकर कहने लगती हैं–

"क्या अमरों को लोक मिलेगा, तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव अरे यह मेरा मिटने का अधिकार?"

इस प्रकार स्पष्ट है कि उनके प्रगीतों में निहित प्रणय एवं वेदना साधारण प्रेम एवं वेदना नहीं है। वे सब तो उस प्रेम के पोषक और संवर्धक बनकर रह जाते हैं। सुख-दुख, विरह-मिलन, अमृत-विष सभी का उस प्रेम की महाधारा में विलय हो जाता है और वे सब भी प्रेममय हो जाते हैं। जल बिंदु से ये प्रेम के महासागर में परिणत होते दिखाई पड़ते हैं।

6.4.2 महादेवी वर्मा के प्रगीत और जड़ चेतन का एकात्म्य भाव

महादेवी वर्मा की यह विशेषता है कि वे प्रकृति में अपने व्यक्तित्व को समाहित कर उसी के माध्यम से अपनी मन:स्थिति का चित्रण बड़ी सुंदरतापूर्वक करते हैं। अराध्य की उपस्थिति प्रकृति में और प्रकृति का एकात्म्य व्यक्ति से करवा देने की विशेषता महादेवी के प्रगीतों में बखूबी मिलती है–

"प्रिय सांध्यगगन, मेरा जीवन
यह क्षितिज बना धुंधला विराग,
नव अरुण-अरुण मेरा सुहाग
छाया सी काया वीतराग।"

महादेवी प्रकृति में समाहित है और प्रकृति महादेवी में समाहित है। कभी तो वे- "मैं बनी मधुमास आली" कहकर अपना परिचय देती हैं तथा कभी "मैं नीर भरी दुख की बदली" कहकर अपने स्वरूप से परिचित कराती हैं। यहां उनके प्रगीत प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करते हुए दिखते हैं। प्रकृति का मानवीकरण करने में महादेवी अपने प्रगीतों में पूरी तरह सफल हुई हैं। मानव आचरणों का साक्षात दर्शन प्रकृति में करते हुए भी वे 'बसंत-रजनी' रूपी नायिका को आमंत्रण देती हुई कहती हैं–

"धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ बसंत रजनी।"

प्रगीतों में कहीं तो प्रकृति को श्रृंगार बनाकर सामने लाती हैं। कहीं प्रियतम की ओर संकेत करने वाली सहचरी के रूप में सामने लाती हैं। उस परम प्रिय की आत्मिक छाया भी इसमें दिखाई देती है। यही प्रकृति जीवन का अनिवार्य अंग भी है–

"फैलते हैं सान्ध्यनभ में भाव ही मेरे रंगीले,
तिमिर की दीपावली हैं रोम मेरे पुलक गीले।"

बसंत रात्रि रूपी नायिका को महादेवी तारों के वेणी-बंधन तथा चंद्रमा के शीर्ष-फूल से सुसज्जित ही नहीं देखती अपितु वर्षा में भी नायिका का मनोरम रूप "रूपसि तेरा घन केश

पाश। श्यामल श्यामल कोमल कोमल" देखते हुए आनंदित होती हैं। अपने प्रगीतों में गहन और विशाल दृष्टि से वे प्रकृति के कण कण को अनुभूत करती हैं।

प्राकृतिक प्रतीकों के अदभुत प्रयोग से व्यक्तित्व का स्पष्टीकरण यथा उषा की लालिमा में प्रिय का सौंदर्य–

"उषा के छू आरक्त कपोल किलक पड़ता तेरा उन्माद"

तथा सूर्य की प्रथम किरण में उस परम सत्ता का आभास सभी कुछ जैसे महादेवी की कल्पना-शक्ति के विराटत्व को रूपायित करते हैं। अत: अपने प्रगीतों में वे प्रकृति प्रेम को उद्दीप्त करती हैं और परम-प्रिय के रूप में स्वयं भी ढल जाती हैं। साधन बनी प्रकृति महादेवी की विराट तक पहुंचने की यात्रा में पूरा साथ निभाती है।

6.4.3 महादेवी के प्रगीतों में सौंदर्यानुभूति

महादेवी वर्मा अपने अहम रूप यौवन पर गर्व करने वाली नारी के रूप में प्रगीतों में दिखाई पड़ती हैं जो कि प्रिय पुरुष को विराट मानकर भी अपने अकेले और सूनेपन को उसकी अनंत करुणा के सामने तुच्छ नहीं समझती। भावुकता, कल्पनाशीलता और आंतरिक शक्ति का समाहार करते हुए वे मार्मिकता से अपनी इसी सौंदर्यानुभूति का चित्रण करती हैं। प्रकृति की संतान पुरुष और नारी, जीवन और जगत तथा इनकी विविध स्थितियां परिस्थितियां महादेवी की कल्पनाशील सौंदर्य दृष्टि से बच नहीं पाती और यह दृष्टि, सुंदरता के यथार्थ तथा उसके अंतर्जगत को उघाड़ कर रखने में पूर्णत: सफल होती हैं। नारी की वेदना, त्रास, दमन पीड़ा उसकी साधना, आत्म मंथन, उसका आत्मिक रहस्य और आध्यात्मिक उपासना, उसका सतीत्व एवं समर्पण इत्यादि सभी कुछ उन्हें आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देता है तथा संघर्ष करने के लिए बल प्रदान करता है। छायावादी कवयित्री महादेवी अपने प्रगीतों में नारी के आत्मिक सौंदर्य की भाव-लहरियों में पुरुष सौंदर्य का मर्यादित बखान करती हैं–

"रजत रश्मियों की छाया में धूमिल घन सा वह आता,
इस निदाध से मानस में करुणा के स्रोत बहा जाता।"

इनके प्रगीतों में अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा और विस्मय की करुणा का मार्मिक सौंदर्य दिखाई पड़ता है। मिलन के लिए आतुर विरहिणी स्वयं को बेबस और बेचैन महसूस करती है–

"हाथ में लेकर जर्जर बीन
इन्हीं बिखरे तारों का जोड़
लिए कैसे पीड़ा का मार
देव आऊं अनंत की ओर।"

और अपने अनंत प्रिय से मिलन की कल्पना उसे आनंद की ओर उन्मुख भी कर देती है–

"जब असीम से हो जायेगा, मेरी लघु सीमा का मेल
देखोगे तुम देव! अमरता खेलेगी मिटने का खेल।"

और अंतत: इस महागर्विता का समर्पण होता है तथा विराट प्रिय की अस्मिता में समर्पित होकर समात्मभाव के शिखर तक पहुंच जाती है–

"चित्रित तू मैं हो रेखा क्रम
मधुर राग तू, मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय
प्रेयसी प्रियतम का अभिनय क्या।"

इस प्रकार महादेवी अपने प्रगीतों में असीम सत्ता के परम सौंदर्य एवं प्रेम में समाहित होकर अद्‌भुत एवं अमर सौंदर्य की स्थापना करती हैं।

6.4.4 महादेवी वर्मा के प्रगीतों में मूल्य चेतना

भारतीय संस्कृति की एकता की भावना, समत्व भाव की सांस्कृतिक पहचान और महानता को जीवंत एवं क्रियाशील बनाए रखने का महत्वपूर्ण प्रयास महादेवी वर्मा ने अपने प्रगीतों में किया है। भारतीय नारी की आधुनिक अस्मिता, पवित्रता, दृढ़ता, आत्मसम्मान आदि उनके प्रगीतों में हर स्थान पर दिखाई पड़ते हैं। महादेवी वर्मा मुक्ति की आकांक्षा का वह दीप जलाने वाली शक्ति के रूप में सामने दिखाई पड़ती है जो परतंत्रता के शक्तिशाली झंझावातों में भी सजग प्रहरी बनकर आजादी के लक्ष्य तक पहुंचता है। यही दीप अंतस को प्रकाशित करता हुआ समस्त सामाजिकता की युग चेतना का दीप बन जाता है। निराशा, अवसाद और परतंत्रता का अंधकार इससे दूर भाग जाता है। यही उनकी संकल्प की अनुभूति है।

सांध्यगगन के सात रंगों में सराबोर महादेवी फूल, दीपक, सरिता और नीर भरी दुख की बदली बनकर भी लोक मंगल की भावना से अभिभूत जान पड़ती है। वे प्रथमत: विश्व सुख की कामना करती हैं तत्पश्चात स्वयं की ओर देखती हैं। आत्म त्याग से विश्व सुख, लोकमंगल का विधान करना चाहती हैं। सृष्टि का यह अमिट विधान, एक मिटने में सौ वरदान कहती हुई नीर भरी बदली को भी वे त्याग की प्रेरणा देती हैं–

"प्यासे की जान ग्राम, झुलसे का पूछ नाम
धरती के चरणों पर नभ के धर शत प्रणाम,
गल गया तुषार-भार बनकर वह छवि शरीर
मिट चली घटा अधीर।"

अपने 'हे चिर महान' नामक प्रगीत में वे हिमालय के प्रति एकसूत्रता तथा एकात्मत के भावों को उजागर करते हुए समात्मभाव स्थापित करती हैं–

"मेरे जीवन का आज मूक
तेरी छाया से हो मिलाप।"

कवयित्री ने नैतिक मूल्यों की दृढ़ता से अपने प्रगीतों में स्थापना की तथा साथ ही इनकी रक्षा का पवित्र संकल्प भी लिया। ये संसार की हर बाधा को और रुकावट को अपना विरोधी मानकर चलीं तथा इनका जमकर विरोध किया। जब ये मुक्त रूप से चलती थीं तो बाधाएं स्वत: एक ओर हट जाती थीं–

"घिरती रहे रात!
न पथ रुंधती ये गहनतम शिलाएं,

न गति रोक पातीं पिघल मिल दिशायें,
चली मुक्त मैं ज्यों मलय की मधुर बात।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा के प्रगीतों में भाव सौंदर्य की दृष्टि से जितना वैविध्य दिखाई पड़ता है उतना किसी अन्य छायावादी कवि के काव्य में नहीं है। उनके प्रगीतों का भाव सौंदर्य अद्‌भुत है।

6.5 पाठांश

6.5.1 जाग तुझको दूर जाना

चिर सजग आंखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना!
जाग तुझको दूर जाना!
अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कंप हो ले!
या प्रलय के आंसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले;
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया
जाग या विद्युत-शिखाओं में निठुर तूफान बोले!
पर तुझे है नाश पथ पर चिह्न अपने छोड़ आना!
जाग तुझको दूर जाना!
बांध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले?
विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबो देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले?
तू न अपनी छांह को अपने लिए कारा बनाना!
जाग तुझको दूर जाना!
वज्र का उर एक छोटे अश्रुकण में धो गलाया,
दे किसे जीवन-सुधा दो घूंट मदिरा मांग लाया!
सो गई आंधी मलय की बात का उपधान ले क्या?
विश्व का अभिशाप क्या अब नींद बनकर पास आया?
अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना?
जाग तुझको दूर जाना!
कह न ठंडी सांस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी;
हार भी तेरी बनेगी माननी जय की पताका,
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी!
है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियां बिछाना!
जाग तुझको दूर जाना!

प्रसंग–प्रस्तुत पंक्तियां छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा की श्रेष्ठ कविता 'जाग तुझको दूर जाना' से उद्धृत है।

हिंदी साहित्य के छायावाद के चार प्रमुख स्तंभों में से एक कवयित्री महादेवी वर्मा को काव्य वेदना की प्रतिमूर्ति माना जाता है। व्यक्तिगत सुख-दुख का ताना-बाना कविता के रूप में प्रस्तुत कर छायावाद को अमरत्व प्रदान करने में महादेवी सफल सिद्ध हुई हैं। प्रस्तुत कविता 'जाग तुझको दूर जाना' मानव जीवन की सार्थकता को प्रस्तुत करती है। थके हुए राहगीर की भांति मनुष्य को लंबा जीवन जीना है। विश्राम करते रहना पथिक को जड़ बना सकता है, इसलिए जीवन संदेश के रूप में प्रस्तुत कविता गतिमान जीवन की प्रेरणा स्वरूप है।

इस कविता में महादेवी थके हुए राहगीर को आगे बढ़ने का संकेत देती हुई जीवन में आशावादी दृष्टिकोण का संचार करती हुई दिखाई पड़ती हैं–

व्याख्या–सदैव सजग रहने वाली आंखें आज उनींदी क्यों हैं? आज जीवन के किस ताने बाने में तू उलझकर अलसाए बैठा है। हे पथिक अब चेतनावस्था में लौट आ, तुझे एक लंबी यात्रा तय करनी है।

आज भले ही हिमालय के हृदय में कितने ही कंपन क्यों न हो रहे हों। या प्रलय अपनी झकझोर देने वाली वायु से इस आसमान को चाहे कितना ही आंदोलित कर ले। नभ का अंधकार चाहे प्रकाश को अपने अंदर समेट कितना ही गहन तिमिर प्रस्तुत कर दे। घने तूफान उठ रहे हों, बिजलियां चमक रही हों किंतु तुमको इस नाश पथ पर भी अपने चरणों के निशान छोड़ते हुए जाना है। इसलिए हे पथिक पथ की बाधाओं से न घबराते हुए तुम्हें अपनी मंजिल की ओर अग्रसर होना है।

क्या ये मोम के सरल बंधन जैसी दिखने वाली बाधाएं तुझको बांधकर रख सकती हैं, रंगीन तितलियों के पंख जैसा आनंद क्या तेरे पथ की बाधा बन सकता है। भ्रमर की गुंजायमान क्या विश्व-क्रंदन को भुला देने में समर्थ है? फूलों पर पड़ी ओस की शीतल वारि बूंदें क्या तुझे सराबोर कर डुबा सकती हैं? अपनी छाया को ही तू अपने लिए बंधन मत बनाना। हे राहगीर त्वरित गति से जाग, तुझको दूर जाना है।

अपने वज्र हृदय को तूने एक आंसू के कण से धोकर गला दिया। किसको जीवन रूपी अमृत पान कराने के लिए तू दो घूंट आनंद की मदिरा मांग कर ले आया है। क्या तेरे हृदय में उठने वाली आंधी मलय पर्वत से आने वाली वायु की शीतलता से रुक गई है। तू सो रहा है, क्या यह विश्व का अभिशाप बनकर तेरी निद्रा के रूप में प्रस्तुत हो रहा है। तू अमरता का पुत्र है, अपने हृदय में जड़ रूपी मृत्यु को मत बसा। जाग तुझको दूर तक जाना है।

शांत होकर अपनी संघर्ष की गाथा को अब भूल मत। आज अग्नि के समान तेजस्वी होकर अपने नेत्रों में अश्रुओं को स्थान देना होगा। इस संघर्ष की बेला में यदि असफलता मिलेगी तो भी वह जय पताका की भांति सुखकर होगी। अमरत्व प्राप्त दीपक के नीचे पड़ी पतंगे की राख भी क्षणिक होती है। किंतु तुझे दीपक के समान महान बनकर अंगारों की शैय्या पर नरम कलियों का बिछौना बनाकर अपने तन को कठोर बनाना है। हे मुसाफिर जाग! तुझको दूर जाना है।

विशेष

1. मानव को जीवन में सतत् प्रवाहमान होने की प्रेरणा दी गई है।
2. संघर्षो एवं बाधाओं को न देखते हुए गति ही जीवन का अमूल्य मार्ग है।
3. प्रकृति के माध्यम से रूपक प्रस्तुत किया है।
4. संपूर्ण कविता में रूपक का सुंदर उदाहरण दृष्टव्य है।

6.5.2 मैं नीर भरी दुख की बदली

मैं नीर भरी दुख की बदली
स्पंदन में चिर निस्पंद बसा,
क्रंदन में आहत विश्व हंसा
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झारिणी मचली।
मेरा पग-पग संगीत भरा
श्वासों से स्वप्न– पराग झरा
नभ के नव रंग बुनते दुकूल,
छाया में मलय-बयार पली!
मैं क्षितिज– भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिंता का भार बनी अविरल
रज– कण पर जल-कण हो बरसी,
नव जीवन– अंकुर बन निकली!
पथ को न मलिन करता आना,
पथ चिह्न न दे जाता जाना
सुधि मेरे आंगन की जग में
सुख की सिहरन हो अंत खिली!
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना, इतिहास यही–
उमड़ी कल थी, मिट आज चली।

प्रसंग–प्रस्तुत पंक्तियां महादेवी वर्मा की कविता 'मैं नीर भरी दुख की बदली' से ली गई हैं। इस कविता में कवयित्री ने अपनी वेदना को संसार के सुखों के रूप में प्रस्तुत किया है। स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देने का भाव इस कविता में दिखाई पड़ता है।

व्याख्या–मैं एक ऐसी बदली के समान हूं जिसके हृदय में वेदना रूपी जल का संचय है। मेरे स्पंदन अर्थात हलचल में चिर शांति का वास है। मेरी पीड़ा को देखकर आहत विश्व भी

हंसता है। मेरे नेत्रों में दीपक से जलते हुए दृश्यमान हैं तथा पलकों से सदैव सरिता प्रवाहमान दिखाई पड़ती है। अर्थात पीड़ा और वेदना की गहनता सदैव मुझे छलनी करती रहती है मैं जल से भरी बदली के समान मैं भी सदैव अश्रुपूरित रहकर वेदना में जलती रहती हूं।

संगीत मेरे प्रत्येक कदम पर मेरा स्वागत करता है। पीड़ा गान सदैव कंठ से निकलते हैं। उच्छ्वासों से सदैव पीड़ित होकर भी आनंदानुभव करती है। आसमान के नवीन रंग के लिए आंचल का निर्माण करते हैं मेरे छाया के तले मलय पर्वत से आने वाली वायु मांसों के रूप में अवस्थित रहती है। अर्थात कवयित्री पीड़ा में भी हास का अनुभव करती है।

मैं क्षितिज पर धूमिल धूसर रंग की भांति घिरकर अविरल चिंता के भार को महसूस करती हूं। अर्थात पीड़ा भी सुखकर महसूस होती है। मिट्टी के कणों पर बूंद बनकर जब मैं बरसती हूं तो नवनिर्माण की ओर कदम बढ़ते हैं अर्थात कवयित्री अपने दुख को भी सबके सुख में बदलकर चलने में विश्वास रखती है।

मैं नहीं चाहती कि मेरा मार्ग कोई भी मलिन कर दे अर्थात रुकावट बनकर गति शून्य कर दे मैं न ही किसी अन्य के पदचिह्नों पर चलने की सोच रखती हूं। मैं इस संसार में अपने आगमन को निरर्थक न मानकर अपने दुख को सुख में बदलकर प्रस्तुत करने को उद्यत हूं।

मैं एक छोटी-सी बदली हूं अर्थात मेरा अस्तित्व अति लघु है। इस पूर्ण संसार रूपी आसमान में मेरा एक कोना भी नहीं हैं। मेरा इतिहास केवल इतना ही है कि मैं कल उमड़ी थी और आज मेरा अंत होने वाला है। अर्थात इस संसार की नश्वरता मुझे भी समाप्त कर देगी। मैं अपने दुख और पीड़ा को संसार के सुखों में परिवर्तित कर एक दिन छिप जाऊंगी।

विशेष

1. महादेवी ने अपनी पीड़ा को संसार के सुख के रूप में बदलकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जो उनकी मौलिक अनुभूति है।
2. समस्त कविता में रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है।
3. प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने का कौशल छायावादी विशेषता है।
4. महादेवी का जीवन दर्शन अभिव्यक्त हुआ है।

गतिविधि

महादेवी वर्मा की गद्यात्मक और पद्यात्मक रचनाओं में क्या साम्य और वैषम्य पाया जाता है। अपने विचारों को व्यक्त करते हुए एक निबंध लिखिए।

क्या आप जानते हैं?

महादेवी वर्मा को उनके सशक्त व्यक्तित्व व कृतित्व के कारण कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने उन्हें "हिंदी के विशाल मंदिर की सरस्वती" की उपाधि दी है।

6.6 सारांश

महादेवी वर्मा का हृदय करुणा एवं संवेदना से सर्वथा ओत-प्रोत दिखाई पड़ता है। यह उनके पद्य ही नहीं अपितु गद्य में भी सर्वत्र दिखाई पड़ता है। महादेवी स्वयं इसे अपने बाल्यकाल से ही अपने अंतर्मन में स्थित मानती है उनका कथन है कि "बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण, उनके संसार को दु:खात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय परिचय हो गया था।"

महादेवी दर्शन विशेषत: भारतीय दर्शन की अच्छी जानकार थीं। भारतीय दर्शन में दु:खवाद की जड़े भी विद्यमान है। वैदिक वाङ्मय के पश्चात भारतीय दर्शन और साहित्य में दु:खवाद के दर्शन होते ही रहे हैं।

महादेवी के वेदना के स्वरूप और उसके विकास का विश्लेषण करते हुए उनके द्वारा अपनी कृति 'यामा' की भूमिका में कही गई। उनकी बात का उल्लेख करना अवश्य प्रासंगिक होगा क्योंकि उनकी दु:ख विषयक मान्यताएं और 'दु:ख' का अर्थ साधारण जन की मान्यता से एकदम अलग हटकर है।

महादेवी वर्मा के लिए वेदना केवल नफरत का विषय ही नहीं है अपितु वह प्रेम का विषय भी है। उनके लिए वेदना का महत्व तीन कारणों से है- प्रथमत: वेदना अंत:करण को शुद्ध करती है। दूसरी वह प्रिय को और अधिक निकट लाती है तथा तीसरे प्रियतम की शोभा भी उसी पर आधारित रहती है।

जीवन में वेदना का भी उतना ही महत्व है जितना आनंद का। इसके बिना वे विस्तृत जग के आंगन को सूना मानती हैं। कई कई स्थानों पर तो वे प्रेम की पीर में करुणा और वेदना की सजलता का पुट भरकर मिलन का तिरस्कार करती भी दिखाई पड़ती हैं।

अत: महादेवी की वेदना कोई साधारण जन की वेदना नहीं जो कि पीड़ाजन्य हो। उनकी वेदना तो निर्माणात्मक वेदना है जो प्रेम की पोषक एवं संवर्द्धक है।

महादेवी की वेदना में निराशा के तो कहीं दर्शन होते ही नहीं, आशावादिता ही सर्वत्र दिखाई पड़ती है। यही आशावादिता ही प्रिय से मिलने की आतुरता को और अधिक बढ़ाती है तथा उस आतुरता से आनंद की अनुभूति कराती है।

छायावादी कवियों की परंपरानुसार महादेवी वर्मा ने भी अपने काव्य की समृद्धि के लिए प्रतीकात्मक संकेत भाषा का आश्रय लिया है। वे छायावादी प्रतीकों के साथ-साथ मौलिक प्रतीकों का प्रयोग भी सकुशल रूप में करती हैं। आंतरिक वेदना की मुखर अभिव्यक्ति बना "दीपक" प्रतीक तो महादेवी वर्मा की पहचान के रूप में पाठकों के हृदय में ठहर सा गया है।

महादेवी के काव्य में प्रतीक योजना की दृष्टि से अनुशीलन करने पर दृष्टिगत होता है कि इनके काव्य में प्राप्त प्रतीक दो प्रकार के होते हैं- परंपरागत तथा स्वनिर्मित।

संतों द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों के साथ ही सूफियों द्वारा प्रयुक्त कई प्रतीकों को महादेवी के काव्य में देखा जा सकता है।

महादेवी वर्मा के ऋतु तथा लौकिक भावों संबंधी प्रतीक भी मौलिक एवं सराहनीय हैं। कवयित्री इन प्रतीकों का प्रयोग रूपक, उपमान तथा लक्षणा के रूप में अलग अलग ढंग से

भी करती हैं। साकी, प्याला, मदिरा आदि ऐसे प्रतीक हैं जो कि महादेवी ने सूफी काव्य से ग्रहण किए हैं।

आध्यात्मिक और भावात्मक प्रतीकों का बाहुल्य महादेवी वर्मा की सूक्ष्म और तीव्र कल्पना शक्ति का तो परिचायक है ही साथ ही वह उनकी मनोवैज्ञानिक पकड़ को भी स्पष्ट करता है। लौकिक प्रतीकों से वे अलौकिक को व्यक्त कर देती हैं।

महादेवी वर्मा ने परंपरागत प्रतीकों का प्रयोग तो किया ही है साथ में कुछ प्रतीकों को उन्होंने स्वयं निर्माण भी किया है। दीप को साधनारत आत्मा के रूप में प्रस्तुत करना, सांध्यगगन को लौकिकता के प्रति विराग के रूप में प्रस्तुत करना, यामिनी को सर्वात्म साधिका के रूप में चित्रित करना, सरिता को करुणा की धारा के अर्थ में प्रयुक्त करना उनकी अपनी ही मौलिकता का परिणाम है।

महादेवी वर्मा ने प्रतीकों का प्रयोग तीन प्रकार से किया है– रूपक, उपमान और लक्षणा।

हृदय को अमर अभिव्यक्ति करने वाले इन चारों महाकवियों– प्रसाद, पंत, निराला एवं महादेवी के गीत अमर हो गये। इन चारों में से महादेवी वेदना के गीत मधुरतापूर्वक गाने में सर्वाधिक सफल सिद्ध हुई हैं, और यही कारण है कि उन्हें 'आधुनिक मीरा' भी कहा गया है। साधना का दिव्य दीपक आलोकित कर सदैव यात्रा में रहने वाली महादेवी 'अचल पथिक' बन जाती हैं।

महादेवी वर्मा ने अपने प्रगीतों में स्थान-स्थान पर अपने प्रिय को प्रस्तुत किया है।

इनके प्रगीतों में मार्मिक एवं व्यापक वेदना भी इनके जीवन दर्शन तथा साधना पथ के अनुरूप ही ढल जाती है। आत्मचेतना धीरे-धीरे ब्राह्मी चेतना का स्वरूप धार होती है इसीलिए महादेवी वर्मा की यह विशेषता है कि वे प्रकृति में अपने व्यक्तित्व को समाहित कर उसके माध्यम से अपनी मनःस्थिति का चित्रण बड़ी सुंदरतापूर्वक करती हैं। अराध्य की उपस्थिति प्रकृति में और प्रकृति का एकात्म्य व्यक्ति से करवा देने की विशेषता महादेवी के प्रगीतों में बखूबी मिलती है।

नारी की वेदना, त्रास, दमन पीड़ा उसकी साधना, आत्म मंथन, उसका आत्मिक रूप और आध्यात्मिक उपासना, उसका सतीत्व एवं समर्पण इत्यादि सभी कुछ उन्हें आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देता है तथा संघर्ष करने के लिए बल प्रदान करता है।

सांध्यगगन के सात रंगों में सराबोर महादेवी फूल, दीपक, सरिता और नीर भरी बदली की बदली बनकर भी लोक मंगल की भावना से अभिभूत जान पड़ती है। वे प्रथमतः निज सुख की कामना करती हैं तत्पश्चात स्वयं की ओर देखती हैं। आत्म त्याग से विश्व में लोकमंगल का विधान करना चाहती हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महादेवी जी अपनी वेदना और दुख के अंतस में सर्वजन के सुख का अनुभव करती है। महादेवी वेदना की प्रतिमूर्ति हैं।

6.7 मुख्य शब्दावली

- **पाहुन** : पाहुना, अतिथि, मेहमान, दामाद।
- **अनुप्राणित** : प्रेरित, समर्थित, पोषित, पुष्ट किया हुआ, जिसे जीवन या स्फूर्ति दी गई हो।
- **निर्वाण**: बुझा हुआ, मृत, जो अस्त हो गया हो, अचल, स्थिर।
- **संयत** : संबद्ध, अविच्छिन, अविरल, जोड़ने का साधन, नियत स्थान।
- **प्रतीक** : चिह्न, प्रतिरूप।
- **संपुट** : कटोरे जैसी कोई वस्तु, अंजलि, फूंकने का मिट्टी का बना हुआ पात्र, रत्न-मंजूषा।
- **प्रणय** : प्रेम, प्रीति, प्रीतियुक्त प्रार्थना, विश्वास।
- **द्वैत** : दो होने का भाव, भेददृष्टि, भेद भावना, द्वैतवाद, अज्ञान, मोह
- **अद्वैत** : द्वैत या भेद का अभाव, जीव-ब्रह्म या जड़ चेतन की एकता, ब्रह्म, अद्वितीय।

6.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. वेदना।
2. दुख में।
3. सुख का।
4. तीन।
5. दुख।
6. विरह को।
7. (i) सार्वकालिक और सर्वजनीन।
   (ii) चतुर्दिक परिस्थितियों से अनुप्राणित।
8. 'मैं' और 'तुम' को।
9. वेदना भाव का विकास क्रम- क्रंदन, सजल नयन, दीर्घ नि:श्वास और निस्तब्धता।
10. जीवन।
11. 'चिह्न' या 'प्रतिरूप'।
12. कामायनी।
13. दो प्रकार के- (i) परंपरागत, (ii) स्वनिर्मित।
14. नैराश्यपूर्ण वातावरण का।
15. दीपशिखा।

16. तीन प्रकार से- रुपक, उपमान और लक्षणा।

17. 'आंतरिक स्पर्श से पुलकित भावों की' कविता।

18. 'सामंजस्य' में।

19. आत्म त्याग से।

20. 'हे चिर महान' प्रगति में।

6.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. महादेवी जी ने अपनी कृति 'यामा' में वेदना तत्व को किस प्रकार से अभिव्यक्त किया है? स्पष्ट कीजिए।
2. करुणात्मक वेदना का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए?
3. परंपरागत प्रतीक कौन से होते हैं?
4. महादेवी वर्मा के प्रगीतों में प्रणय भाव एवं वेदना के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
5. महादेवी वर्मा के प्रगीतों में मूल्य-चेतना को स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. महादेवी के काव्य के मूल तत्व 'वेदना' पर एक विस्तृत निबंध लिखिए।
2. छायावादी कविता में महादेवी वर्मा द्वारा प्रयोग किए गए प्रतीकों का क्या स्थान है? विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
3. महादेवी के प्रगीतों की विशेषताएं बताइए।
4. सप्रसंग व्याख्या कीजिए-
   (क) "बांध लेंगे क्या तुझे ..... जाग तुझको दूर जाना।"
   (ख) "हार भी तेरी बनेगी ..... अमर दीपक की निशानी।"
   (ग) "मैं नीर भरी दुख की बदली ..... पलकों में निर्झारिणी पगली।"
   (घ) "विस्तृत नभ का कोई कोना ..... उमड़ी कल थी मिट आज चली"

6.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. महादेवी वर्मा, *अतीत के चलचित्र*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, भारत 1997.
2. गंगाप्रसाद पांडेय, *महीयसी महादेवी*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, भारत 1973.
3. नामवर सिंह, भारत, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, भारत 2004.

इकाई 4 सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय

4.0 परिचय

'अज्ञेय' के बहाने साहित्य को जानना एक वृहद-प्रक्रिया है। 'अज्ञेय' ने कविता को प्रयोग के तहत बदलने का प्रयास किया। इससे पूर्व छायावाद-प्रगतिवाद के काव्य-स्वरों का अपना महत्व आवश्यक है लेकिन काव्य को एक नवीन भाव बोध से जोड़कर रखना पहल करने वाले व्यक्ति के लिए संभव होता है और यह क्षमता अज्ञेय के व्यक्तित्व में निहित थी। सन् 1943 में उनके द्वारा संपादित 'तारसप्तक' प्रकाशित हुआ, जिसके अंतर्गत ऐसे सात कवि थे, जो नए तो थे ही साथ ही कविता से भी परिवर्तन की मांग रख रहे थे। अतएव परिवर्तनकामी कवियों ने कविता को भाव एवं भाषा के स्तर पर बदलना ही नहीं चाहा अपितु आगत नई संवेदना व शैलियों का भी स्वागत किया। इसके अगुवा अज्ञेय माने गए थे। पाठ्यक्रम में अज्ञेय जैसे कवि को रखने का मतलब अध्येताओं को कविता के इस नए प्रयोगधर्मी कवि की जानकारी देना रहा है। यहां 'प्रयोगधर्मी' शब्द लिखने पर भी संकोच होता है क्योंकि अपने समय में 'प्रयोग', 'प्रयोगशील' जैसे शब्दों से अज्ञेय भी बचते रहे और उन्होंने परिणामस्वरूप यह प्रतिक्रिया दी कि 'हम प्रयोगधर्मी नहीं हैं, किंतु इतना होने पर भी तत्कालीन आलोचक वर्ग एवं आज की हिंदी से जुड़ा समाज उन्हें 'प्रयोगवादी' तो कहता ही है।

अज्ञेय का व्यक्तित्व उन्हें प्राप्त संस्कारों एवं बाह्य पारिवारिक परिवेश से निर्मित है। अज्ञेय को यायावर पिता की नौकरी का परिवेश प्राप्त हुआ, उनके पिता पुरातत्व विभाग में कार्यरत थे जिन्हें अलग-अलग स्थानों पर तबादले के कारण जाना पड़ा। अज्ञेय पिता के साथ जगह-जगह घूमते रहे एवं नई जगहों में जाकर अन्वेषी प्रवृत्ति के रूप में स्वयं को ढालते रहे। इस प्रकार अज्ञेय की घुमक्कड़ी ने उन्हें जगह-जगह के अनुभव प्रदान किए। भगवान बुद्ध के निर्वाण स्थल कुशीनगर में उनका जन्म हुआ। बौद्ध जीवन से प्रभावित जीवन का परिचय उन्हें आरंभिक काल में हो गया। अज्ञेय के जीवन के कई आयाम प्राप्त होते हैं। आरंभिक काल जहां बचपन एवं युवावस्था में संस्कार प्राप्त हुआ। पिता का उनके प्रति व्यवहार भी प्रगतिन्मुखी रहा। उनकी इच्छाओं को पिता ने कभी अधूरा नहीं रखा और एक दूरदर्शी, निर्देशक, कुशल पिता की उनकी भूमिका रही। शिक्षा के संबंध में भी उन्हें किसी दबाव के तहत नहीं पढ़ाया गया बल्कि उनकी रुचि के अनुकूल घर पर भी हिंदी से अलग भाषाओं की शिक्षा दी गई। उनके व्यक्तित्व को खोलने का काम शिक्षा एवं परिवार द्वारा पूर्व में ही हो चुका था। अस्तु, उनका मनोबल एवं ऊर्जा का रास्ता उन्हें इस रूप में प्राप्त हुआ। दूसरी बात अज्ञेय ने अपनी शिक्षा उपरांत कई जगहों पर नौकरी की और छोड़ी, जो व्यक्तित्व को नहीं जंचा वह अपनाया ही नहीं गया। उससे किनारा कर लिया, जीवन के रास्तों में अज्ञेय ने बतौर संपादक भी कार्य किया, आकाशवाणी से जुड़े व यहां से उनकी विदेश यात्राएं आरंभ हुईं जहां उन्हें साहित्य जगत से जुड़ने का मौका मिला। संवेदनाओं का ढांचागत रूप तो पहले भी न था किंतु ऐसे वातावरण को पाकर नई काव्य शैली एवं वातावरण से रूबरू होने का अवसर प्राप्त हुआ। 'अज्ञेय' को 'अज्ञेय' का व्यक्तित्व प्रदान करने में तीसरा एवं महत्वपूर्ण कारण यह रहा कि उन्हें आजादी से पहले का समय देखने का अवसर मिला जहां इनके भीतर का क्रांतिकारी रूप निकल कर आया। शिक्षा अधूरी छोड़कर ये क्रांतिकारियों से जा मिले। जेल में भी इन्होंने दिन काटे एवं ऐसे उथल पुथल के समय में इन्होंने व्यक्तित्व की गंभीरता को बनाए रखा तथा इनकी कम बोलने वाली दृष्टि ने इन्हें पर्याप्त चिंतन, मनन का अवसर प्रदान किया।

वास्तव में अज्ञेय एक जिम्मेदारी के साथ साहित्य में आए, यही वजह है कि बहुत से आयाम इनके व्यक्तित्व से निकलते हुए दिशा ज्ञान कराते हैं।

बहरहाल, साहित्य में उनका स्थान तो उनकी आलोचनाओं से ही स्पष्ट हो जाता है। एक व्यक्ति जो अपने जीवन के आरंभिक दिनों में ही बेहद जागरूक रहा हो, जिसकी आरंभिक शिक्षा उसकी रुचि के अनुकूल रही हो, परिवार की भ्रमणशीलता नव-नव सामाजिक वातावरण देने की साक्षी रही हो, भारतीय भाषाओं के ज्ञान के साथ-साथ विदेशी भाषा से जिसका परिचय हो, भारतीय संस्कृति से जिसका जुड़ाव हो, वह व्यक्ति एक बुनियादी मजबूती को लेकर सामने आया। यही वजह है कि अज्ञेय के व्यक्तित्व ने नए पन को स्वीकार करने में जरा भी देर नहीं की व सार्थक नए प्रयोगों का स्वागत किया।

अज्ञेय का जन्म 7 मार्च सन् 1911 को हुआ था। उनका जन्म स्थान गोरखपुर से लगे हुए देवरिया जिले के 'कसिया' नामक ग्राम में था। 'कुशीनगर' इसका पुराना नाम है। इस स्थान पर भगवान बुद्ध को निर्वाण प्राप्त हुआ था। इनका पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन था।

इनकी आरंभिक शिक्षा घर पर हुई जहां इन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी व फारसी का ज्ञान प्राप्त किया। इसका कारण स्कूल जाने के प्रति अज्ञेय की अभिरुचि न थी। उनके विद्रोही स्वभाव ने स्कूल को नियमों का स्थल माना जहां बचपन में ही किसी बच्चे को नियम कानून में बांध कर एक टाइप का बना दिया जाता है। उनके स्वभाव के अनुकूल उन्हें घर का वातावरण भी मिला हुआ जहां उनके मन की बात पूरी हो गई और स्कूल जाने की जिद न की गई। यह अज्ञेय के लिए सौभाग्य की बात थी। अज्ञेय को पढ़ाने के लिए घर पर ही शिक्षक आया करते थे कई बार तो उनके द्वारा शिक्षकों के साथ ठीक व्यवहार न करने के कारण शिक्षक हटाए गए। वे बाल्यावस्था से ही निर्भीक व दबंग स्वभाव के थे। उनका दिमाग बचपन से ही बहुत तेज था जिसे कोई अपने अनुसार ढालने की कोशिश करे, ऐसा स्वभाव न था। उन्होंने 'शेखर: एक जीवनी' की भूमिका में अपने बाल्यकाल के संस्मरण को लिखा है। बचपन में उन्हें 'मुन्ना' कहा जाता था, इस तरह देहात से भी बाहर के वीराने में इनका जन्म हुआ।

अज्ञेय के पिता श्री हीरानंद वात्स्यायन पुरातत्व विभाग में एक उच्च पदाधिकारी थे। पिता की नौकरी जिस-जिस जगह पर होती वहां वे जाते रहते। इस प्रकार इन्हें श्रीनगर, नालंदा, पटना, लखनऊ, मद्रास, बड़ौदा, लाहौर इत्यादि जगहों पर रहने का अवसर मिला।

अज्ञेय को बंधनमुक्त शिक्षा पसंद नहीं थी। जब इन्हें पढ़ाने शिक्षक आया करते तब ये तरह-तरह से उनका विरोध जताते परंतु जब कोई बंधन की स्थिति न रहती तब ये स्वाध्याय से पढ़ते। उनकी स्मरणशक्ति तीक्ष्ण थी। 1925 में उन्होंने हाई स्कूल व 1927 में इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1929 में बी.एस.सी. लाहौर के 'फॉरमेन' कॉलेज से उत्तीर्ण की। एम.ए. की पढ़ाई वे पूरी न कर सके। 1929 में अज्ञेय ने एम.ए. प्रथम वर्ष (अंग्रेजी) में प्रवेश लिया। इन्होंने भाषा के साथ साहित्य व साहित्य के साथ विज्ञान विषय का अध्ययन किया।

अज्ञेय के काव्य-विषयक चिंतन के कई बिंदुओं पर चर्चा पाठ्यक्रम के अंतर्गत रखी गई जहां पर उनकी काव्य-यात्रा के विविध-सोपान परिलक्षित होते हैं। इस प्रक्रिया के तहत प्रयोगवाद से नई-कविता तक की यात्रा आती है। वे प्रेरणास्रोत कवि के रूप में रहे हैं। वे अपने समय की प्रतिक्रियाओं-आलोचनाओं से काफी ऊंचे उठे कवि थे। यहां पर उनकी कविताओं का आकलन यह स्पष्ट करने का प्रयास करेगा कि उनका काव्य व्यक्ति से लेकर समाज तक की महत्ता को कैसे दर्शाता है। पाठक को यह देखने के लिए अवश्य जागरूक होना पड़ेगा कि अज्ञेय अपनी पूरी काव्य-यात्रा के दौरान खुद भी किस कदर व्यक्तित्व विकास अथवा व्यक्तित्वांतरण की स्थिति को पहुंचते हैं।

अज्ञेय सन् 1936 में पत्रकारिता से जुड़े, सैनिक, विशाल भारत, दिनमान प्रमुख पत्र हैं जिनमें अज्ञेय ने संपादक / संपादन मंडल के रूप में कार्य किया। इन्होंने सेना में भी नौकरी की, किंतु उसे भी छोड़ दिया। मेरठ में 'साहित्य परिषद' बनाने का प्रयास भी इनके द्वारा किया गया। आकाशवाणी में भी नौकरी की। 1955 में इन्हें यूरोप यात्रा का अवसर प्राप्त हुआ जहां उनकी प्रतिभा को निखरने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ। अज्ञेय के काव्य-संग्रह जो प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं अग्रलिखित हैं–

भग्नदूत : यह अज्ञेय का पहला काव्य संग्रह है जो 1933 में प्रकाशित हुआ, इस संग्रह की कविताओं में तुकबंदी दिखाई देती है।

चिंता : इस संग्रह का प्रकाशन 1941 में हुआ, पुस्तक दो भागों में विभक्त है विश्वपथिक और एकायन।

इत्यलम् : यह संग्रह 1946 में प्रकाशित हुआ। संग्रह 5 खंडों में विभक्त है। पहला खंड भग्नदूत है जिसका परिचय ऊपर दिया गया है, अन्य चार खंड हैं - बंदी स्वप्न, हिय हारिल, वंचना के दुर्ग और मिट्टी की ईहा।

हरी घास पर क्षण भर : सन् 1946 में इसका प्रकाशन हुआ। इसमें हरी घास मुक्त जीवन की स्थिति का प्रतीक है।

बावरा अहेरी : इस संग्रह का प्रकाशन 1954 में हुआ, 'बावरा अहेरी' नामक कविता के आधार पर ही इस संग्रह का यह नामकरण किया गया।

इंद्रधनु रौंदे हुए थे : यह संग्रह 1957 में आया। इस संग्रह में भाव की अपेक्षा विचार तत्व अधिक मिलते हैं।

अरी ओ करुणा प्रभामय : 1959 में यह काव्य संग्रह आया जो चार भागों में विभक्त है।

आंगन के पार द्वार : कवि का यह काव्य संग्रह 1961 में आया। 'असाध्य वीणा' कवि की प्रसिद्ध कविता इसी संग्रह में विद्यमान है। इस रचना को 1964 में 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार प्राप्त हुआ।

कितनी नावों में कितनी बार : इसमें अज्ञेय ने बाह्य यात्राएं न करके आंतरिक यात्राओं को प्रश्रय दिया है। इस काव्य संग्रह को 1978 में भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला।

सागर मुद्रा : इसमें कवि की सन् 1967 से 1969 तक की 78 कविताएं संकलित की गई हैं।

पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं : सन् 1970 से 1973 तक की रचनाएं इस संग्रह में संकलित हैं।

महावृक्ष के नीचे : यह अंतिम काव्य संग्रह 1977 में प्रकाशित हुआ।

7.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- प्रयोगवादी काव्य और अज्ञेय के व्यक्तित्व से परिचित हो पाएंगे;
- नई कविता के क्षेत्र में अज्ञेय के योगदान का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- काव्य के क्षेत्र में अज्ञेय द्वारा किए गए नवीन प्रयोगों का विवेचनात्मक वर्णन कर पाएंगे;
- अज्ञेय की काव्य-भाषा की विवेचना कर पाएंगे।

7.2 प्रयोगवादी–काव्य और अज्ञेय

प्रयोगवादी काव्य में अज्ञेय की भूमिका को निम्न प्रकार से जाना जा सकता है-

7.2.1 प्रयोगवादी कविता की पृष्ठभूमि

साहित्य एक गतिशील चेतना है। समय-समय पर विविध परिस्थितियों ने आकर साहित्य को प्रभावित किया है। कभी यह परिवर्तन समाज के बाह्य कारणों से होता है तो कभी काव्य जगत की मांग को लेकर यह परिवर्तन होता है। समय इस बात का साक्षी है कि हिंदी काव्य जगत विविध परिस्थितियों, जरूरतों के आधार पर गतिशील हुआ है। सन् 1943 ई. से प्रयोगवाद का प्रारंभ होता है इससे पूर्व का समय प्रगतिवाद का है और थोड़ा पीछे चले जाएं तो आधुनिक कविता की पृष्ठभूमि में छायावाद तक जाया जा सकता है। छायावादी कविता का समय 1918 से 1936 ई. तक माना जाता है। द्विवेदी युगीन कविता के उपरांत छायावाद का आरंभ माना गया है। यह वह समय था जब एक ओर देश में राजनैतिक उथल-पुथल थी। आजादी के प्रयास किए जा रहे थे। देश में इस काल के कवियों की शृंखला में चार नाम उल्लेखनीय हैं- प्रसाद, पंत, महादेवी एवं निराला। छायावादी कविता की अपनी एक शैली है। रहस्यवाद वहां पर प्रधान है व इसकी अभिव्यक्ति के माध्यम अन्योक्ति विधान, अप्रस्तुत योजना व लाक्षणिक वक्रता रहे हैं। छायावादी कवियों पर वैयक्तिक होने के आरोप लगते रहे, इन्हें कल्पनाजीवी समझा जाने लगा क्योंकि छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियां कल्पनाशीलता, भावुकता, व्यक्तिवादिता, प्रकृति एवं सौंदर्य के प्रति लगाव के रूप में दिखाई दी। अस्तु, सामाजिक वास्तविकताओं का चित्रण इनके काल में परिलक्षित नहीं होता है जबकि उस समय समाज आजादी के लिए विभिन्न प्रकार की यंत्रणाओं तक को सहन कर रहा था। यह बात अलग है कि छायावादी कविता ने हिंदी काव्य जगत को एक ऐसा धरातल सौंपा जिसमें भाव एवं शैली की प्रबल अभिव्यक्ति थी। आत्मलीन होने के बावजूद उनका काव्य सत्यं शिवं सुंदरम् की कसौटी पर खरा उतरता है, किंतु अपने समय का चित्रण यह वाद नहीं करता है। अनेक समीक्षकों ने छायावाद पर अपनी अपनी प्रतिक्रिया दी है, मगर छायावाद अपना अलग महत्व छोड़ते हुए हिंदी काव्य जगत में स्थापित रहा। यह अट्ठारह वर्ष का समय बहुत छोटा समय था। इधर समाज में अन्य जागरूक एवं संवेदनशील व्यक्तित्व मौजूद थे जिन्होंने महसूस किया कि काव्य की दिशा बदलनी चाहिए क्योंकि काव्य स्वान्तः सुखाय ही न होकर परजनहिताय भी होता है। जहां साहित्य समाज का दर्पण है वहीं वह समाज को प्रभावित एवं प्रेरित भी करता है, वह जनमानस के भावों का वाहक होता है, उसका माउथपीस तक हो जाता है। यही भाव छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप समाज एवं साहित्यिक जगत में पनप चुके थे। बुद्धिजीवी इस बात का अनुभव कर रहे थे। इस तरह छायावादी कविता के आगे का प्रारूप सामाजिक स्थितियों को लेकर इससे आगे के काव्य में आया जो 'प्रगतिवाद' के नाम से पुकारा जाने लगा। 1936 से 1943 तक प्रगतिवाद का समय रहा।

प्रगतिवादी कवि सर्वहारा वर्ग के कवि थे जिनके काव्य में वर्ग संघर्ष के चित्र उभरकर आते हैं। कार्ल मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित अवधारणा इस समय की कविताओं की विशेषता रही है। काव्य की उड़ान इस युग में स्थूल जीवन की परिस्थितियां देखकर रुक गई। जन-जीवन की वाणी को प्रश्रय मिला। पूंजीवादी व्यवस्था के ठाठ बाट और दूसरी तरफ शोषितों की दयनीय स्थिति ने जनवादी यथार्थ को उपस्थित किया। सुंदरता की जगह कुरूप चित्र भी

दिखने लगे। मानवतावाद की प्रतिष्ठा हुई, इस धारा के कवियों में पंत, निराला, दिनकर, रामविलास शर्मा, नरेंद्र शर्मा आदि का नाम उल्लेखनीय है।

इस प्रकार यह छायावादोत्तर काल विसंगतियों भरा तथा समस्यापूरित काल था। यह समय राष्ट्रीय आंदोलनों का रहा। दूसरी ओर अंग्रेजी सभ्यता के प्रसारण स्वरूप नवीन शिक्षा प्रणाली, रहन सहन, आचार विचार की प्रमुखता वाला समाज भी इस समय में जागरूक व मौजूद था जिसके विचार प्रगतिवादी कविता की आवाज में मौजूद नहीं थे। नवीन विचार रखने वाला बुद्धिजीवी, समाज को अपने विचारों की दिशा देना चाहते थे ऐसे में साहित्यिक चेतनाएं भी परिवर्तन की आकांक्षी थीं। समाज आजादी की लड़ाई लड़ रहा था तो संवेदनशील व्यक्तित्व भी साहित्य के बदलाव की दिशा तलाश रहे थे। ऐसे समय में अज्ञेय के द्वारा सन् 1943 में 'तारसप्तक' का संपादन हुआ जिसके माध्यम से काव्य-जगत नवीन दिशा की ओर बढ़ने का उपक्रम करने लगा।

तारसप्तक का आगमन एवं प्रयोगवाद

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि सन् 1943 में 'तारसप्तक' का संपादन हुआ। 'तारसप्तक' से तात्पर्य अज्ञेय द्वारा संपादित की गई उस पुस्तक से है जिसमें सात कवियों की कविताओं को शृंखलाबद्ध किया गया है। उक्त प्रश्न उठना स्वभाविक है कि तारसप्तक द्वारा 'प्रयोगवाद' का जन्म किस तरह माना गया? यूं तो तारसप्तक में सात कवियों की नवीन रचनाएं प्राप्त होती हैं मगर इसके संपादकीय अंश में अज्ञेय द्वारा इन कविताओं के लिए 'प्रयोग', 'प्रयोगशीलता' आदि शब्दों का प्रयोग कई-कई बार किया गया। इसके पाठक ने इस प्रकार से प्राप्त इन नई कविताओं को 'प्रयोगवाद' की कविताएं कहना शुरू कर दिया व इन सात कवियों को 'प्रयोगवादी' की संज्ञा दी जाने लगी। यह अज्ञेय की प्रतिक्रिया नहीं थी, बल्कि यह तारसप्तक के पाठकों एवं आलोचकों की प्रतिक्रिया थी। इन सात कवियों के नाम इस प्रकार हैं– भारत भूषण अग्रवाल, रामविलास शर्मा, नेमिचंद जैन, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर एवं स्वयं अज्ञेय।

यह समझने की बात है कि काव्य-जगत में प्रतिष्ठापित 'प्रयोगवाद' नाम आलोचकों-पाठकों का दिया हुआ नाम है। किसी सोची-समझी स्थिति के अनुसार पूर्व में इस काल का नामकरण न होकर प्राप्त संपादकीय विचारों के आधार पर यह नाम काव्य में आ गया।

7.2.2 प्रयोगवाद के प्रति अज्ञेय की प्रतिक्रिया

अज्ञेय द्वारा 'दूसरे सप्तक' की भूमिका में यह 'प्रयोगवाद' नाम की अस्वीकृति व्यक्त की गई। 'हमें प्रयोगवादी न कहा जाए, हमने अन्वेषण किया है प्रयोग नहीं, यह बात अज्ञेय द्वारा साहित्यिक जगत में भी अनेक स्थानों पर कही गई किंतु यह 'प्रयोगवाद' नाम पाठक एवं साहित्य जगत के बीच प्रयोग किए जाने पर इतना रूढ़िगत हो गया कि इनकी कविताओं के लिए किसी अन्य नाम की संभावना ही नहीं रह गई। अज्ञेय ने इस बात को भी रखा कि प्रयोग केवल उन्हीं के द्वारा नहीं हुए हैं अपितु साहित्य-समाज समय-समय पर प्रयोग करता है फिर उन्हीं लोगों की कविता के लिए 'प्रयोगवाद' और उन्हें 'प्रयोगवादी' क्यों कहा जा रहा है? वह प्रयोगवाद एवं प्रयोगवादी नाम को अस्वीकार करते हैं व इसका विरोध करते हैं। सप्तक परंपरा को काव्य के आंदोलन के रूप में समझा जाने लगा

[illegible] कहे जाने वाले सभी कवियों ने स्वयं को 'अन्वेषी', 'राहों के अन्वेषी' [illegible] के उपरान्त के साथ अज्ञेय का दूसरा सप्तक भी आया। जिनमें नई राहों [illegible] स्पष्ट झलकती थी। जिन पर चर्चा करना समय के साथ अहं बन गया और [illegible] को स्वीकार करना है अथवा अस्वीकार यह बात पीछे रह गई साथ ही [illegible] जगत में चल पड़ा जिसका बार-बार विरोध करना भी अनौचित्य सा हो [illegible]

[illegible] ने अपने साथी साहित्यकारों को लेकर काव्य में नए-नए अभियान का क्रम [illegible] जिससे कविता के क्षेत्र में भाव एवं प्रेषणकला में नए-नए प्रयोग तो दिखाई दे [illegible] एक बात और भी बताना महत्वपूर्ण होगा कि तारसप्तक में आए कविजन अन्य [illegible] से भी जुड़े थे फिर उन सबको ही प्रयोगवादी नहीं कहा गया। भवानी प्रसाद [illegible] विलास शर्मा की कविताओं को किसी ने प्रयोगवादी नहीं कहा, लेकिन नेमिचंद [illegible] और भारत भूषण अग्रवाल विचारों से साम्यवादी होने पर भी तथा मुक्तिबोध के [illegible] होने पर भी आलोचकों ने इन्हें प्रयोगवादी की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। [illegible] द्वारा दिए गए इस तर्क का भी कोई महत्व नहीं रह गया और 'प्रयोगवाद' नाम [illegible] जगत में आ ही गया। 'प्रतीक' पत्रिका (जुलाई 1947) में प्रयोगवाद का विकसित [illegible] दिखाई देता है एवं दूसरे सप्तक (1951) में प्रयोगवाद का विकास हुआ।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि 'प्रयोगवाद' के अगुवा अज्ञेय थे। प्रयोगवाद कहीं बाहर से [illegible] वाद नहीं है। वरन यह अपने ही यहां की सामाजिक, साहित्यिक परिस्थितियों से उपजा हुआ एक अभियान है। अपनी पूर्ववर्ती काव्य परंपरा से अलग अन्वेषण के रास्ते को निश्चित रूप से तय करने वाला यह वाद है। हम देखते हैं कि इससे पूर्व संबंधों के खुलेपन पर चर्चा संकोच के कारण अभिव्यक्त थी मगर प्रयोगवाद को इस चित्रण में कोई संकोच नहीं रहा। कविता का बौद्धिकता प्रबल रूप यहीं पर आकर दिखाई देता है। अंत: संघर्ष, सूक्ष्म संवेदनाएं, [illegible] विकासोन्मुखी प्रवृत्तियां इसी प्रयोगवाद की देन है। विदेशी साहित्य का प्रभाव नई खोज का आगमन है। अभिव्यक्ति संबंधी प्रयोग एवं नवीन भाषागत उपकरणों को पकड़ने वाला प्रयोगवादी काव्य साहित्य के बदलने की गूंज पैदा करता है जिसमें अज्ञेय बाधा रूप से आगे बढ़े हैं। निश्चित ही अज्ञेय प्रयोगवाद के सारे सवालों से जुड़े साहित्यकार एवं प्रयोगवाद के [illegible]कर्ता हैं।

उपर्युक्त विवेचन कविता के विविध धरातलों की चर्चा करता है। प्रयोगवाद की स्थितियां कवि मानस में एक साहित्यिक परिवेश में किस कारण उत्पन्न हुई यह देखकर प्रयोगवाद को भली-भांति समझने का अवसर पाठक को प्राप्त होगा। अज्ञेय वास्तव में काव्य जगत के दिशा [illegible] हैं।

7.2.3 प्रयोगवाद एवं उसकी प्रवृत्तियां

प्रयोगवाद 'तारसप्तक' के संपादन के पश्चात आलोचकों द्वारा उस समय की कविता को दिया गया एक नाम है। अतएव यहां पर प्रयोगवादी कहे जाने वाले कवियों की काव्य प्रवृत्तियों को आधार मानकर विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है–

आत्मसंघर्ष एवं आत्म निरीक्षण

प्रयोगवादी कहे जाने वाले कवि काव्य में नयापन लाने को तत्पर थे। इस प्रक्रिया में उन्होंने आत्मनिरीक्षण पर सर्वप्रथम ध्यान दिया। उन्होंने कवि मन के भीतर चलने वाली हलचल, संतुष्टि-असंतुष्टि, अदम्य क्षमताओं को पहचानने का प्रयास किया। अज्ञेय भी इसी मंशा के कवि हैं व मुक्तिबोध भी इसी बात पर बल देते हैं। आत्मनिरीक्षण अनुभूति से अधिक अभिव्यक्ति की सफलता का हेतु है जिसके माध्यम से कवि के अंतस की गड्ड-मड्ड भावानुभूतियां सुलझे हुए रूप में बाहर निकलना चाहती हैं क्योंकि ऐसी स्थिति में कवि का अहं तिरोहित हो जाता है व अभिव्यक्ति अपनी ठोस स्थिति को छोड़कर लचीली स्थिति में प्राप्त होती है। मुक्तिबोध में यह आत्मसंघर्ष तीक्ष्ण रूप में प्राप्त होता है। उनकी कविताएं व्यक्त होने के उपरांत भी बौद्धिक गति से तीव्र आक्रोश व्यक्त करती हैं। दूसरी तरफ 'तारसप्तक' में आए कवि भारत भूषण अग्रवाल तो आत्मनिरीक्षण से भी आगे निकल जाते हैं और स्वयं अपने यथार्थ की असलियत दिखा देते हैं– 'एक दीखने वाली मेरी इस देह में। दो 'मैं' हैं। एक मैं। और एक मेरा पिट्ठू।'

साम्यवादी विचार

प्रयोगवादी अधिकांश कवि साम्यवादी विचारधारा के कवि रहे हैं। मुक्तिबोध, नेमिचंद जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे व अज्ञेय में यह भावना अधिक मुखर रही है लेकिन सभी के मार्क्सवादी प्रभाव अपने अलग-अलग ढंग से निःसृत हुए हैं। मुक्तिबोध अपने समकालीन लेखकों से अलग नजर आते हैं। वे स्वयं भी स्वीकार करते हैं कि उनको मार्क्सवाद ने प्रभावित किया। ऐसे कवि जिन्होंने साम्यवादी विचार रखे वह प्रयोगवाद के प्रति दिखावे की स्थिति नहीं थी। सामाजिक दायित्व की पूर्ति इन साम्यवादी विचारों से प्राप्त होती है। कवि का कर्म महज कल्पना व सौंदर्य की प्रतीति कराना ही नहीं है वरन वह दायित्व बोध से जुड़ा है और वह अपने भीतर के सरोकारों से जुड़ा है इस कारण जो समाज कवि को परी लोकों के किसी खोया-भटका व्यक्ति समझाता है ऐसे पाठकों-आलोचकों एवं सामाजिकों को नेमिचंद जैसे कवि सावधान भी करते हैं कि कवि में ऐसी चीजें खोजना व्यर्थ है। कवि का जीवन के प्रति अपना एक रवैया है जहां वह स्वतंत्र रूप से दबावरहित होकर निष्पक्ष अपनी बात रख सकता है यह स्थिति काव्य में तभी उत्पन्न होती है जब कवि को अंतर्बाह्य से कोई दबाव न हो और वह सोद्देश्य लेखन करे। प्रयोगवाद इस दिशा की ओर भी अपनी खोज रखता है।

नवीन सौंदर्य बोध

जीवन के संघर्ष से अलग जिस जगह विश्राम एवं आनंद की प्रतीति मानी है वह स्थल है नवीन सौंदर्य बोध। मुक्तिबोध के काव्य में इस तरह की भावुकता नहीं मिलती है न ही उनका ध्यान इस ओर जाता है। गिरिजाकुमार माथुर का सौंदर्य-बोध भावनाओं के स्तर पर है, नेमिचंद जैन सौंदर्य के नए मायने रखते हैं। प्रभाकर माचवे की कविता 'मैं और खाली चा की प्याली' में सौंदर्यानुभूति का स्वाभाविक रूप है। प्रयोगवाद का सौंदर्य सामाजिक जीवन से जुड़ा है। अज्ञेय के यहां भी सौंदर्य चेतना से संबद्ध चित्र सामाजिक जीवन से निरपेक्ष नहीं है। 1949 में प्रकाशित अज्ञेय की काव्य रचना 'हरी घास पर क्षण भर' में सौंदर्य बोध के नए आयाम प्राप्त होते हैं। शमशेर बहादुर सिंह की काव्य के प्रति सौंदर्यवादी दृष्टि रही है। ये दूसरे सप्तक के कवि हैं। इनकी दृष्टि सौंदर्य के साथ जीने की, सौंदर्य का उपभोग करने की रही है।

रूढ़िवादिता का विरोध

रूढ़ि से विरोध प्रयोगवादियों की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। ग्राह्य एवं त्याज्य की प्रक्रिया से ये कवि भली-भांति अवगत थे। साहित्य को 'प्रयोग' से जोड़ने की प्रवृत्ति मोह भंग की क्रिया है लेकिन प्रयोगवादी किसी मोह में न पड़कर उसे रूढ़ि का नाम देते हैं और रूढ़ियों को तोड़कर आगे बढ़ने का क्रम रखते हैं। अज्ञेय का काव्य स्वयं रूढ़ियों को तोड़ने की बात करता है इसके साथ साथ वे अन्य आधुनिक कवियों से भी यह अपेक्षा रखते हैं कि वह नई राह की तलाश करें। परंपरागत स्थापनाएं काव्य के विकास-क्रम को अवरुद्ध करती हैं। अत: नई दिशाओं के प्रति प्रयोग हो। प्रयोगवादी यह मानते हैं कि काव्य में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति दोनों स्तर पर नयापन लाने की चेष्टा की जाए।

आधुनिक बोध

प्रयोगवादी उस परंपरा का विरोध करते हैं जिससे सामाजिक उन्नयन में बाधा पहुंचती हो। आधुनिक बोध काव्य के लिए नई भावावस्था नहीं है मगर अपने पास-पास की चीजों को ग्रहण करने की स्थिति एवं मानसिकता में बदलाव जरूरी है जिससे समाज विकसित एवं व्यक्ति का आत्मोन्नयन हो, कवि बासी एवं उबाऊपन का काव्य न परोसे। प्रयोगवादी कवि संस्कारों के परिष्कार की बात के साथ-साथ धार्मिक मूल्यों की बात करने में भी कोई संकोच नहीं करते।

'हर देवतापन हमको।
नपुंसक बनाता है।
हर पैशाचिक पशुत्व।
नए जानवर बढ़ाता है।

आधुनिकता बोध से तात्पर्य अनुभूति की पूर्ण अभिव्यक्ति से है, जो कुछ भी कवि मनन करता है वह उसी ढंग से व्यक्त भी हो, किसी प्रकार का सामाजिक आवरण वहां न रहे। आधुनिकता बोध की प्रक्रिया काव्य में अनायास नहीं होती, कविजन मानते हैं कि अनुभूति की प्रक्रिया चिंतन के तहत बराबर पकती रहती हैं, जो मात्र कवि की भावनाएं नहीं बल्कि इससे भी आगे बहुत कुछ हैं।

सत्य की निरंतर खोज

अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में कहा था, 'प्रयोग दोहरा साधन है, क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है, जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अच्छी तरह जान सकता है और अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है।' इस प्रकार अज्ञेय प्रयोग द्वारा सत्य उद्‌घाटन की बात करते हैं यह सत्य संवेदना एवं शिल्प किसी भी विधि द्वारा निर्गत हो सकता है। काव्य के माध्यम से जीवन-सत्य जानने का प्रयास काव्य की जिम्मेदारी को और भी बढ़ा देता है। सत्य से किसी बड़े अर्थ को पाने की चेष्टा में अनेक रास्ते तय करना प्रयोग करना ही है। निरंतरता से तात्पर्य है कि सत्य का कोई अंत नहीं, वह न खत्म होने वाली प्रक्रिया है। इस प्रकार अपने काव्य प्रयासों द्वारा किसी महत उद्देश्य को पाने की यात्रा प्रयोगवाद की विशेषता है।

7.2.4 प्रयोगवाद : काव्य भाषा

सप्तकीय कविता लीक से हटकर प्राप्त होती है। कुछ ही अंशों में वहां परंपरा आई है। वाक्यों के विविध प्रयोग, हिंदीतर भाषा के शब्द, नए प्रतीक, बिंब, नए उपमान यह सब प्रयोगवाद कविता की विशेषताएं हैं। एक तो सभी कवि प्रयोगशील हैं दूसरे परंपरा विद्रोही भी हैं। नवीन सार्थक प्रयोगों का समर्थन करते हैं व इसके लिए उनके द्वारा हिंदी काव्य की सीमाएं निर्धारित नहीं की गई है। अस्तु वहां नयापन समय की मांग भी पूरी करता है और काव्य के बदलने की करवट भी प्रदान करता है। इसके अलावा अज्ञेय ने विदेशी साहित्य से प्रभावित रचनाओं को लाने में भी कोई संकोच नहीं किया है। इस कारण प्रयोगवादी कविता वास्तव में अपनी पिछली कविताओं से भिन्न लगती है। छंद की दृष्टि से भी यहां नवीन प्रयोग मिलता है। काव्य पंक्तियों में वाक्यों को बिंदु के सहारे छोड़ने का क्रम, कोष्ठक प्रयोग, प्रश्न मुद्रा, संस्कृत की तत्सम शब्दावली, नवीन शब्द प्रयोग (मुखर तपती वासनाएं, शिलित रोमांस, स्वीकारी आसूं आदि), डैश के प्रयोग से अपनी बात समझाना, नवीन व ताजगी भरे प्रतीक व उपमान मिलना आम बात है। इस काल में बिंबों के एंद्रियारूप प्राप्त होते हैं, जापानी 'हाइकू' पद्धति का भी यहां अज्ञेय के द्वारा प्रयोग हुआ है जो छोटी संवेदनाओं को बांधने में उतनी ही सक्षम है जितनी बड़ी संवेदना को बड़ा अर्थ देने में। अतएव प्रयोगवादी प्रवृत्तियों के अध्ययन के उपरांत नई कविता की ओर बढ़ना अपेक्षित है।

7.3 नई कविता को अज्ञेय की देन

सन् 1950 तक हिंदी कविता जगत में प्रयोगवादी कविता का चमत्कार प्रधान, शिल्पवादी मुहावरा उदित हुआ। देश में चहुं ओर आजादी का प्रकाश फैल गया। इन्हीं स्वप्नों, उमंगों से भरकर स्वतंत्र भारत की कविता नई संवदेना और शिल्प के साथ नई दिशाओं की ओर अग्रसर होने लगी। परंतु जब प्रयोगवादी कविता सैद्धांतिक अतिवाद में परिवर्तित होने लगी तब इस नए विकास को नया नाम देना अनिवार्य हो गया। इस नवीन काव्य-प्रवृत्ति को सर्वप्रथम अत्यंत गहन चिंतन के उपरांत अज्ञेय जी ने 'नई कविता' नाम देने का अपना प्रस्ताव रखा। इस समय की कविता को 'नई कविता' नाम देना इसलिए सही सिद्ध होता है क्योंकि इस समय की कविता, कविता की परंपरा से आगे, नये मूल्यों, मन:स्थितियों, संवेदनाओं, प्रत्ययों और बोधों की कविता थी। नई कविता का यह युग नवीन संवेदना को व्यक्त करता था। सन् 1951 में अज्ञेय द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' का प्रकाशन हुआ। इसी वर्ष को 'नई कविता' के जन्म का वर्ष भी कहा जाता है। अत: अज्ञेय और मुक्तिबोध प्रयोगवाद की भावना से हटकर 'नई कविता' के प्रवर्तक कवि बने। ऐतिहासिकता की दृष्टि से हिंदी काव्य संसार में आधुनिकता का आगमन इन कवियों के व्यापक प्रयत्नों का ही एक सफल प्रयास था।

7.3.1 नई कविता एवं उसकी प्रवृत्तियां

नई कविता के विषय में जानकारी होना सबसे आवश्यक है तभी नई कविता की प्रवृत्तियों को समझा जा सकेगा। नई कविता का आरंभ कब से हुआ? इस विषय में तत्कालीन आलोचक भी एकमत नहीं है। स्वयं नई कविता के कवि भी इसे अलग-अलग समय से मानते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा 'नई कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन समय से नई कविता

का आगमन मानते हैं। इस पत्रिका का प्रकाशन वर्ष 1954 ई. रहा। 1959 में 'तीसरा सप्तक' संपादित होकर आया। अज्ञेय ने प्रयोग एवं प्रयोगशीलता नाम को पीछे रखते हुए इस समय की कविता के लिए 'नई कविता' कहना अधिक संगत माना। कुछ विद्वान तो नई कविता व प्रयोगवाद को एक ही विचारधारा वाली अलग-अलग नामों की कविता मानते हैं। कुछ प्रयोगवाद को एक दिशा के काव्य का प्रथम सोपान और नई कविता को उसकी प्रतिक्रिया मानते हैं। नई कविता के प्रति कवियों का झुकाव इतना अधिक रहा कि डॉ. जगदीश गुप्त द्वारा संपादित 'नई पत्रिका' 1954 के बाद की काव्य रचनाओं को ही नई कविता के अंतर्गत माना जाने लगा। डॉ. जगदीश गुप्त, धर्मवीर भारती, इंद्रनाथ मदान उसे प्रवृत्तियों के आधार पर अपनी पिछली कविताओं से कुछ मुक्त कविता-धारा मानते हैं। यह समय साहित्यकारों की आलोचना-प्रत्यालोचना का साम्य प्रतीत होता है। जगदीश गुप्त तो यह मानते हैं कि 'नई कविता' का नाम भी अज्ञेय का ही दिया हुआ है जबकि अज्ञेय स्वयं दूसरी तरफ 'प्रयोगवादी', 'प्रयोगवाद' इस प्रकार के नामों से बचने का प्रयास एवं अपना विरोध जताते रहे हैं। कुछ बातें 'नई कविता' के साथ और भी जुड़ी हैं। डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी ने स्वयं को नई कविता का प्रथम हस्ताक्षर घोषित किया। उनके बाद लक्ष्मीकांत वर्मा के सहयोग से 'नये पत्ते' (1954) का प्रकाशन हुआ। इस तरह नई कविता के अगुवा बनने का प्रयास कई कवियों द्वारा किया गया। इसका कारण यह भी है कि यह अपनी पिछली 'प्रयोगवादी कविता' से प्रभावित कविता ही रही और अपनी विचारधारा के लिए कोई निश्चित सीमा-रेखा न खींच सकी। अतएव नई कविता की आलोचना एवं उसका प्रचार साहित्य-जगत में मिलता है जो भी हो 'नई कविता', 'नए पत्ते' एवं 'निष्कर्ष' नामक पत्रिकाओं द्वारा नई कविता को पर्याप्त आधार मिला, नई कविता मूल रूप से प्रयोगवाद द्वारा उपजी किंतु कई संदर्भों को वह छोड़ती चली गई। 'नई कविता' का धरातल प्रयोगवाद से बड़ा एवं बहुआयामी है। इसे स्वातंत्र्योत्तर कविता की संज्ञा से भी पुकारा जाता है। यहां नई कविता की प्रवृत्तियों पर चर्चा करना अधिक उचित होगा। इससे यह काव्य धारा अधिक स्पष्ट रूप में समझ में आएगी। नई कविता की प्रवृत्तियां निम्नवत हैं-

स्वातंत्र्योत्तर आशा

नई कविता ने आजादी के बाद का भारत देखा। देश की लड़ाई के साथ साथ अंतर्राष्ट्रीय युद्ध का दौर द्वितीय विश्व युद्ध भी देखा। समाज व देशों के गिरते उठते माहौल के साथ कविता ने जीना सीखा और मजबूती पाई। बाहर के समाज की स्थितियां कवि अथवा जनमानस के स्वप्न पूरे करने लायक स्थिति में हो अथवा न हो कवि ने अपनी आशा को बनाए रखा है, भविष्य के प्रति सकारात्मक रूप कविताओं में प्राप्त होता है। उदाहरण देखिए–

भोर से पहले तुम्हारे द्वार
तुम मुझे देखा न देखो
कल उगूंगा मैं।

रिश्तों के प्रति सकारात्मक व नकारात्मक भूमिका

स्वातंत्र्योत्तर नई कविता पारिवारिक सामाजिक संबंधों की चर्चा उठाती है। संबंधों में आस्थावादी अथवा अनास्थावादी होना व्यक्तिगत मसला है किंतु अपनी पुरानी कविता से बिल्कुल ही

भिन्न तरह का मनोभाव यहां पर दिखाई पड़ता है जहां पर पिता, पुत्र, प्रेयसी तक के लि बेमायना हो जाते हैं और एक रिश्ता संरक्षित रूप से मिलता है वह है 'मां का रिश्ता' कई-कई कवियों ने इस रिश्ते पर बराबर बात की है और इस रिश्ते से कभी भी किसी कवि को कोई शिकायत अथवा शंका नहीं है। कई प्रकरणों के प्रति अनास्था रखने के बा यह आस्था बनी रहना नई कविता के लिए स्वस्थ स्थिति का संकेत है। भावनाएं बचाने के प्रयास कवियों के द्वारा किया गया है। अंत: बाह्य संघर्षों को झेलती हुई यह नई कविता मां की बात करती है तब काव्य संवेदनामय हो जाता है-

'मां
एक बार की जननी
और आजीवन ममता है।'

वैज्ञानिक प्रभाव

यह समय युद्धों का है, हथियारों का है, वैज्ञानिक प्रयोगों का है। तकनीकी विकास की स्थिति समाज पर भी असर कर रही हैं। नई वैज्ञानिक शब्दावली से समाज का व्यक्ति परिचित हो रहा है ऐसी स्थिति में कभी तो उन शब्दों का इस्तेमाल भी हुआ मिलता है जिन शब्दों से पिछले युग का मानव परिचित ही नहीं था। नई कविता की यही अहं विशेषता है। यांत्रिकता से जुड़े काव्य-रूप को देखिए-

'इलेक्ट्रान' - रश्मियों में बंधे हुए अणुओं का / पूंजीभूत / एक महाभूत में।

इसके अतिरिक्त विज्ञान के विकास की प्रतिक्रिया भी काव्य में व्यक्त है। वैज्ञानिकीकरण ने कविता भावों पर सबसे पहले हमला बोला है। भाषा भावहीन दिखाई देती है। विज्ञान के यंत्रीकरण ने पूंजीवादी सभ्यता को भी जन्म दिया है और तब सामाजिक विषमता बढ़ गई है यह जिक्र भी कविता में होता है।

संघर्ष की ध्वनि

नई कविता के नए संघर्षों को देखकर लगता है कि हर युग के अपने अलग संघर्ष हैं तथा हर संघर्ष को झेलने व पार करने की अपनी अलग-अलग अदम्य क्षमताएं हैं। पहले तो नई कविता में बेतहाशा भीड़ है– उसकी भागमदौड़ है। यह परिस्थितियां पहले की कविताओं में नहीं थी, यहां पर नवीन समस्याएं देखने में आती हैं। कविता जीवंत है, जड़ वस्तुएं भी चेतन बनी हुई अपने दर्द को बता जाती हैं। प्रकृति का क्षरण पर्यावरण का चित्र प्रस्तुत करता है तो कहीं आजादी के बाद की मानसिकता व्यक्त हुई है। नई कविता दुनिया का मानचित्र प्रस्तुत करती हुई-सी कहती है– 'यूरोप / बड़बड़ा रहा है बुखार में। अमेरिका / पूरी तरह भटक चुका है अंधकार में। एशिया पर / बोझ है गोरे इनसान का। इस प्रकार देश-देशांतर के संघर्ष नई कविता में प्राप्त होते हैं। यह कविता युगानुरूप अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती है।

7.3.2 नई कविता : काव्य भाषा

नई कविता में अभिव्यक्ति की छटपटाहट है, भाव से अधिक यहां भाषा एवं शिल्पगत प्रयो हुए हैं। गद्य का कलात्मक रूप देखने में आता है। जगदीश गुप्त ने नई कविता की भाषा प भी अपने विचार प्रकट किए हैं। उनका मानना है कि नई कविता में गद्य एवं पद्य की भा

अंतर करना मुश्किल है। नई कविता की भाषा आम आदमी की भाषा बनी हुई है। अज्ञेय यहां पर भी भाषा के नएपन की बात रखी। भवानी प्रसाद मिश्र तो यहां तक कहते हैं कि 'जिस तरह हम बोलते हैं/ उस तरह तू लिख'। अतएव ज्ञात होता है कि नई कविता की भाषा बोलचाल की भाषा है, जिसमें अनुभूति का समझ में आना मुख्य विचार है। नई कविता की भाषा खड़ी बोली के खड़ेपन पर अपने को विलग रखती है। उपमानों के क्षेत्र में भी नई कविता बदलाव लाने को तत्पर है क्योंकि उसे आकार देने वाले साहित्यकार परंपरा ग्रहीत उपमानों को बासी कहकर उनकी उपादेयता खत्म कर देते हैं तब स्वतः ही कविजन नए उपमानों की तलाश में जुट जाते हैं और कविता नए उपमानों से अधिक सौंदर्यत्व ग्रहण की हुई मिलती है। अपनी पिछली कविताओं की भाषा-योजना से एक बात बिल्कुल अलग नई कविता में देखने में आती है कि यहां के कवि एक धारा के होते हुए भी अपने लेखन में एक दूसरे से अलग भाव व शब्दावली प्रदान करते हैं जिससे बिंब निर्माण का विस्तृत वातावरण भी तैयार हो जाता है। नई कविता ने छंद के बंधन को अस्वीकार किया है। मुक्त छंद की यहां पर प्रबलता है। अनुभूति के संप्रेषण में छंद बाधक न रहें, कविजनों की यही मंशा रही है। गिरिजाकुमार माथुर तो यहां तक मानते हैं कि मुक्त छंद काव्य का साधक ही है क्योंकि उसकी उपस्थिति में काव्य को संगीत की लयात्मकता में ढालने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती है। नई कविता में माथुर जी ने संगीत-नाद को लय हेतु आवश्यक माना। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कविता में लय की बात करते हैं परंतु इसका आगमन, कविता के कलेवर में तभी होता है जब कवि के शब्दों की लय, उसके अर्थ की लय एक सशक्त रूप में प्रस्तुत हो। इस प्रकार संगीत से उत्पन्न नाद एवं अर्थ से उत्पन्न लय दो प्रकार के लय के मानने वालों से नई कविता परिचित होती है। ये दो स्थितियां तो नई कविता को दूसरी कविताओं से अलग ठहराती ही है।

नई कविता के सशक्त हस्ताक्षर कुंवर नारायण, जगदीश गुप्त, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मुक्तिबोध, शमशेर, अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, नरेश मेहता, विजय-नारायण देव साही, कीर्ति चौधरी आदि हैं। भवानी प्रसाद मिश्र को भी नई कविता में शामिल किया जाता है परंतु नवीन प्रवृत्ति इनके काव्य में कम ही प्राप्त होती हैं इस प्रकार नई कविता के कवि सन् 50 के आस पास के वे कवि रहे जो नई काव्य प्रवृत्तियों को काव्य में लाने हेतु प्रयासरत रहे। भले ही उनमें से मुक्तिबोध, शमशेर जैसे कवि मार्क्सवादी कहलाए, अज्ञेय, नरेश मेहता, माथुर आदि कवि प्रयोगवादी भी कहलाए, दूसरे व तीसरे सप्तक में स्थान प्राप्त कवि भी नई कविता की प्रवृत्तियों से जुड़ाव एवं प्रभाव रखते देखे गए। मगर ये सभी नई कविता के कवि भी कहे गए।

उपरोक्त विस्तृत विवेचन द्वारा स्पष्ट हो गया होगा कि प्रयोगवादी कविता एवं नई कविता दो अलग-अलग काव्य धारा के नामकरण अलग-अलग क्यों व किस कारण है। नई कविता एवं प्रयोगवाद को समझने के लिए यदि कवियों के पृथक-पृथक काव्य संग्रह को पढ़ने का अवसर प्राप्त हो, तब अध्ययन पूर्ण एवं सहजरूपेण समझ में आएगा।

7.3.3 नई कविता और अज्ञेय की उड़ान

अज्ञेय नई सर्जना की तलाश में भटके, उड़े लेकिन रुके नहीं। विजय देवनारायण साही जी के शब्दों में– "उन्होंने नई कविता को पुनः संभव बनाया।" उन्होंने जीवन की संवेदनाओं को

राग-रस से सींचा और फिर मुड़कर नहीं देखा। क्योंकि उन्हें सामने उदित होता जीवन के प्रकाश बुलाता रहा। टेरती आंखों की जीवित ज्योति का उन्होंने सहर्ष स्वागत किया। इसी कारण अज्ञेय 'वर्तमान की चिंताओं से बेचैन व्यंग्य के कवि' हैं, वर्तमान के कवि हैं अतीत के नहीं। उन्होंने बीहड़ राहों पर चलकर हर दल-दल को पार किया, इसी का प्रमाण है कि "कटी पर ये संकेत, एकोन्मुख संकेत लहू के" अपना विशेष अर्थ रखते हैं। 'इशारे जिंदगी के' कविता की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

"जिंदगी हर मोड़ पर करती रही हमको इशारे जिन्हें हमने नहीं देखा।
क्योंकि हम बांधे हुए थे पट्टियां संस्कार की
और हमने बांधने से पूर्व देखा था।–हमारी पट्टियां रंगीन थी।"

अज्ञेय अपने समाज की सर्जनात्मकता की शक्ति को पहचान कर उसे स्वयं 'डी-कंस्ट्रक' करते हैं। इसलिए उनके चिंतन का केंद्र रहा– 'आधुनिक मानव की स्वाधीनता और सर्जनात्मकता'। चिंतन की इसी भावना के वशीभूत हो वह काव्य की लय को छोड़ गद्य की गद्यात्मकता की ओर अग्रसर हुए। उन्होंने गद्य की अपनी लयात्मकता को अपनाया और वक्रता में वैशिष्ट्य की निष्पत्ति की। 'असाध्य वीणा' का प्रियवद अज्ञेय 'कितनी नावों में कितनी बार' चढ़ा-उतरा। उनकी यह रचना-प्रक्रिया की कशमकश कवि की जागरुकता का प्रमाण रही है।

एक समय में छायावादी कविता विद्रोह की कविता थी फिर बाद में प्रगतिवादी और फिर नई कविता। नई कविता का यह परिवर्तन पहले से अधिक गहरा और व्यापक था। 'नई कविता' के संदर्भ में जितने गहरे आक्षेप अज्ञेय जी ने झेले उतने शायद ही किसी कवि को हिंदी कविता के क्षेत्र में किसी भी काल में झेलने पड़े हों, परंतु उन्होंने कभी भी इन आक्षेपों की चिंता नहीं की और न ही अपने पथ से कभी विचलित हुए। नई कविता के कवि ने यह महसूस किया था कि छायावाद में 'करुणा का विलास है–उनकी तकलीफ नहीं।' इन परिस्थितियों में नई कविता का कवि करुणा की सामाजिक व्यवस्था करने में प्रवृत्त होने लगा। नई कविता कल्पना-प्रवण-भावुकतापूर्ण, आदर्शवादी व्यक्तिवाद के विरुद्ध यथार्थवादी व्यक्तिवाद की बगावत थी। इसी बौद्धिकता के कारण नई कविता में यथार्थवादी चेतना और युगबोध प्रबल होने लगा। नई कविता का कवि जीवन की नवीन चुनौतियों, प्रश्नों, विसंगतियों, विडंबनाओं और विद्रूपताओं के प्रति बेखबर नहीं रहा। अज्ञेय ने अपनी कविताओं में नई कविता के इन सभी प्रतिमानों का अत्यंत गहनता के साथ वर्णन किया है। नई कविता के प्रत्येक कवि का उद्देश्य संपूर्ण जीवन को भीतर-बाहर से समझना और समझाना रहा है। अज्ञेय ने अपनी कविताओं में किसी भी विषय को नहीं छोड़ा। वह हर मनःस्थिति और परिस्थिति को मूर्त सत्ता में पकड़ता है और लेखनी के माध्यम से चित्रित कर देता है।

नई कविता के कवि का मन सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों तथा यौन कुंठाओं को चित्रित करने में अग्रसर रहता है। कल्पना कवि के लिए एक वैज्ञानिक अस्त्र है जिसके माध्यम से वह किसी वस्तु या स्थिति का अंकन करता है। डॉ. नामवर सिंह कहते हैं कि– "इसका इंद्रिय बोध अनुभूत और सुनिश्चित होने का विश्वास दिलाता है। ये कविताएं लयात्मक होते हुए भी भावोच्छवसित नहीं हैं, बल्कि आत्मसजगता से नियंत्रित और संयमित हैं।" नई कविता में अनुभूति की प्रामाणिकता को परखने की कठिनाई भी कम नहीं थी। जीवन की व्यवस्थाओं

के बीच आपसी टकराव और संघर्ष बढ़ गया था। कवि का सामाजिक दायित्व बढ़ गया था और दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। अज्ञेय जी अपने काव्य में 'अनुभूति की [illegible]' की चर्चा उठाने में अनुभूति की सच्चाई तथा गहराई की बात करना नहीं भूलते। उनकी दृष्टि में समस्त सृजनात्मक व्यापकता का मूल अनुभूति की व्यापकता एवं गहराई में ही होता है। इस प्रकार कामायनी में जो 'अनुभूति दर्शन' में परिवर्तित हो जाती थी, उसे अज्ञेय फिर से 'दर्शन' से अनुभूति में परिवर्तित करते हैं। इस दृष्टि से अज्ञेय की कविता 'असाध्य वीणा' दृष्टव्य है जिसमें कवि ने कला-सृजना प्रक्रिया में अनुभूति की निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया है। अज्ञेय जी 'अच्छा खंडित सत्य' नामक कविता में कहते हैं कि- "अच्छे अनुभव की भट्ठी में तपे हुए कण दो कण। अंतर्दृष्टि के। झूठे नुस्खेवाद, उपलब्धि परायी के प्रकाश से। रूप-शिव, रूप-सत्य की सृष्टि के।" इस प्रकार अज्ञेय में अनुभव, ईमानदारी के रूप में, बौद्धिक संगठन है। 'ईमानदारी' ने नई कविता को रोमांटिक सीमाओं से बाहर लाने में काफी सफलता प्राप्त की है।

नई संवदेना को पुरानी भाषा व्यक्त नहीं कर पाती। इन परिस्थितियों में भाषा को अपर्याप्त पाकर कवि संघर्ष करता है। अज्ञेय जी का कथन है कि-"काव्य के जो भी गुण बताए जा सकते हैं अंततोगत्वा भाषा के ही गुण हैं।" (सीढ़ियों पर धूप में-भूमिका) उन्होंने 'तारसप्तक' के कवि वक्तव्य में भी यही कहा था कि- "काव्य सबसे पहले शब्द हैं। और सबसे अंत में भी यही बात कही जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि धर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं। शब्द का ज्ञान-शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृति बनाती है। ध्वनि, लय, छंद, आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते हैं और इसी में विलय होते हैं। इतना ही नहीं सारे सामाजिक संदर्भ भी यहीं से निकलते हैं। इसी में युग-संपृक्ति का और कृतिकार के सामाजिक दायित्व का हल मिलता है–या मिल सकता है।" बड़ा कवि 'रससिद्ध' होता है परंतु उससे भी बड़ा कवि 'वाकसिद्ध' कवि होता है। अज्ञेय जी ने इस वाक् पर अपना पूरा ध्यान दिया है। 'शब्द और सत्य' कविता में अज्ञेय ने कहा है– "प्रश्न यही रहता है: दोनों जो अपने बीच एक दीवार बनाए रहते हैं। मैं कब, कैसे, उनके अनदेखे। उसमें सेंध लगा दूं। या भरकर विस्फोटक। उसे उड़ा दूं। कवि जो होंगे हो, जो कुछ करते हैं करें ....प्रयोजन मेरा बस इतना है ये दोनों जो सदा एक दूसरे से तनकर रहते हैं.......कब, कैसे, किस आलोक-स्फुरण में। इन्हें मिला दूं–दोनों जो हैं बंधु, सखा, सहचर मेरे।"

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि नई कविता में सामंजस्य से अधिक द्वंद्व, तनाव, संघर्ष और विसंगति-बोध है। अज्ञेय की कविता में इन सभी तत्वों को देखा जा सकता है।

7.4 अज्ञेय के काव्य-प्रयोग

अज्ञेय का काव्य गंभीर रूप से सन् 1933 में 'भग्नदूत' से प्राप्त होता है। तब से अनवरत इनकी कविताएं, सन् 1999 तक (महावृक्ष के नीचे, काव्य संग्रह तक) प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त काव्य से इतर विधाओं पर भी इन्होंने अपना रचना कर्म किया किंतु 'प्रयोगधर्मिता' की स्थिति कविताओं में ही अधिकाधिक प्राप्त होती है। अज्ञेय का नाम तारसप्तक से जुड़ा है जिसमें अज्ञेय द्वारा सात नए कवियों की कविताओं को संगृहीत कर संपादन कार्य किया गया है। यह सन् 1943 में आया। इसके अतिरिक्त दूसरा, तीसरा व चौथा सप्तक भी क्रमशः

प्रकाशित हुआ, किंतु 'तारसप्तक' के संपादक के स्वतंत्र उद्गारों ने अज्ञेय को प्रयोगधर्मिता का अगुवा करार दिया। 'तारसप्तक' महज कविताओं का संग्रह नहीं था बल्कि इसका संपादकीय अंश वक्तव्यों भरा था, जिसने काव्य की दिशा ही बदल दी।

अज्ञेय ने काव्य के बुनियादी सवालों पर बातचीत रखी, उनका 'तारसप्तक' में वक्तव्य इस प्रकार है, 'सभी कालों दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है किंतु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए, जिन्हें अभी नहीं छुआ गया है या जिन्हें अभेद मान लिया गया है।' कवि प्रयोग करना चाहता है लेकिन वह प्रयोग नए अन्वेषणों पर आधारित हो। इस रूप में सप्तक में सातों कवियों की यही मंशा रही। अज्ञेय ने ईमानदारी के साथ अपनी बात रखी और नएपन के लिए तैयारी की, जहां रूढ़ि न थी। काव्य के धरातल में नवीन प्रयोग करने की दिशा में भावानुभूति एवं अभिव्यक्ति दोनों में ही प्रयोगधर्मिता परिणामस्वरूप दिखाई देने लगी।

अज्ञेय ने तारसप्तक के वक्तव्य में "'प्रयोग', 'प्रयोगवादी', 'नए राहों के अन्वेषी' शब्दों का इस्तेमाल किया है। उनका एक अन्य प्रकाशित वक्तव्य है, 'इस वर्ग के कवियों का विश्वास है कि जीवन की ही तरह काव्य भी एक चिरगतिशील सत्य है जिसकी वास्तविक साधना, शोध, अन्वेषण एवं प्रयोग है। अतएव वस्तु और शैली दोनों ही क्षेत्र में ये काव्य के पूर्ववर्ती उपादनों को संदेह से देखते हैं और नवीन उपकरणों को आग्रहपूर्वक ग्रहण करते हैं।" इस प्रकार भाव एवं शिल्प दोनों में इन कवियों ने प्रयोग किया है। सर्वप्रथम अज्ञेय ने काव्य को सत्यान्वेषण का जरिया माना व उसका कद एवं जिम्मेदारी दोनों ही बढ़ा दी। इस रूप में कवि व्यक्तित्व का गंभीर एवं परिमार्जित होना सहज ही आवश्यक हो गया। प्रगतिवाद तक कविता को इस दृष्टि से नहीं देखा गया था। इससे पिछली कविताओं के युग या तो बाह्य परिस्थितियों के परिणाम की प्रतिक्रिया थे अथवा सहज कवि की संवेदनाएं। काव्य को बौद्धिक स्तर पर देखने का प्रयास 'प्रयोगवाद' से ही आरंभ हुआ। अज्ञेय एवं सातों सप्तक के कवि 'प्रयोगवादी' नाम से छुटकारा पाने की कोशिश करते हुए भी 'प्रयोगवादी' नाम से स्वयं को अलग नहीं कर पाए। अतएव प्रयोगवाद में प्राप्त रचनाएं- तारसप्तक की रचनाएं एकदम अलग तेवर के साथ सामने आई जहां परंपरा विद्रोह तो था ही साथ ही काव्य को सत्यान्वेषण एवं आत्मान्वेषण की कसौटी पर खरे उतारकर व्यक्त किया था। जीवन व काव्य को देखने का एक अलग ही नजरिया था। पाठक के प्रति चिंता एवं दायित्व बोध इन कविताओं में नया है। इस प्रकार ऐसी कविताओं को पढ़ने वाला पाठक भी पहले से अलग प्रकार का रहा, जो बौद्धिक स्तर पर कवि जनों के स्तर से कविता को समझ सकें इसी प्रकार के प्रयोग शिल्प के स्तर पर भी हुए। अज्ञेय ने 'शब्द' के अर्थ को पकड़ने का प्रयास किया व शब्द से नए अर्थ की मांग की। जहां काव्य का नवीन संसार खुल सके व शब्द किसी रूपाकार की व्यवस्था करने के बजाए संकेतों से ही अपने संदर्भ को रख दे। वास्तव में अज्ञेय इस बात के लिए सदैव सजग रहे कि अनुभूति के प्रकटीकरण के लिए कलात्मक उपादानों की कमी का अनुभव अब किसी कवि को न हो और यदि यह स्थिति आती है तब इसी प्रकार की स्थितियां नए प्रयोग को जन्म देती हैं। उसी कारण प्रयोग करते हुए कवित

विभिन्न स्तरों पर प्रकट होती है। अधूरे वाक्यों को छोड़ते हुए कहीं कविता विस्तृत भाव दीप जाती है तो कहीं संवादमयी मुद्रा में प्रश्नाकुलता प्रकट करती है। कोष्ठक प्रयोग, अंग्रेजी शब्द, तत्सम शब्दों का प्रयोग कविता को नयापन देने के साथ-साथ संवेदना को अधिक स्पष्ट बनाता है जो कवि की पहली शर्त हो सकती है। नवीन उपमान, नवीन प्रतीक अपनी युगीन प्रतिबद्धता सिद्ध करते हैं। अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता कला के उपादानों को नवीन ढंग से पेश करती है। उनके द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुत उपादान भी नए, औचित्यपूर्ण, मौलिक, प्रभाव साम्य, गुण साम्य पर आधारित है। 'उपमा' का नवीन प्रयोग इस प्रकार है- 'बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा', एवं अन्य प्रयोग 'खिड़की के आगे वह झुकी डाल-सी'। अज्ञेय ने प्रयोग की दिशा में भाव की अपेक्षा शिल्प-पक्ष की सार्थकता का जोर दिया। कविता बोलचाल की भाषा के निकट आ गई, उसे पूर्ण बनाने की प्रक्रिया में मुहावरें, लोक-भाषा भी स्थान लेने लगे, जैसे 'जाट रे जाट तेरे सिर पर खाट प्रजातंत्र की'। अज्ञेय के काव्य संग्रह 'महावृक्ष के नीचे' तक में भी आम आदमी की भाषा, सड़क की भाषा दिखाई देती है। यानि कि अज्ञेय ने अपने रचना कर्म में आरंभ से अंत तक प्रयोगधर्मिता को बल दिया है।

वैयक्तिकता

अज्ञेय एक जागरूक साहित्यकार रहे हैं। समाज एवं व्यक्ति के दायित्व को समझते हुए उन्होंने सर्वप्रथम 'व्यक्ति' को महत्व दिया। स्वयं के प्रति दायित्व को महत्वपूर्ण मानने के कारण ही उनके काव्य में निजता एवं वैयक्तिकता के आयाम दिखाई देते हैं। निजता के ऊपर वे किसी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं करते हैं। स्वतंत्र व्यक्तित्व ही समाज के लिए उपयोगी बन सकता है, ऐसा वे मानते रहे हैं। अपनी कविताओं में वे लिखते रहे हैं कि व्यक्तित्व की स्थिरता व्यक्तित्वालोकन में बनती है। वह स्वयं को द्वीप मानते रहे हैं जो स्थिर रहता है। व्यक्तित्व की दृढ़ता और उसकी निजता के प्रति अज्ञेय सचेत रहते हैं। 'नदी के द्वीप' नामक कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

यदि ऐसा कभी हो
यही स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा, कीर्तिनाशा
घोर काल प्रवाहिनी बन जाए
तो हमें स्वीकार है वह भी, उसी में रेत होकर
फिर छनेंगे हम, जमेंगे हम, कहीं पर पैर टेकेंगे
कहीं फिर भी खड़ा होगा नए व्यक्तित्व का आकार

अज्ञेय कवि के साथ-साथ चिंतक भी रहे। उनका चिंतन व्यक्तिवाद से प्रभावित रहा है। अज्ञेय ने अपने काव्य में व्यक्ति अहं और उसकी आत्मशक्ति को प्रमुखता दी है। उनकी कविता की प्रसिद्ध पंक्तियां हैं-

यह दीप, अकेला, स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

अज्ञेय के काव्य में निजी अनुभवों, भावों एवं विचारों की कड़ी दिखाई देती है। उनकी आरंभिक रचनाओं में व्यक्तिवादिता के स्वर मौजूद हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि समाज व्यक्ति को प्रभावित करने हेतु तत्पर रहता है जिससे व्यक्ति सत्ता आहत होती है जो ठीक नहीं है। यदि व्यक्ति स्वयं ही समाज के प्रति समर्पण भाव दिखाए तब ठीक है क्योंकि ऐसा करने से व्यक्ति का अहं भी तुष्ट होता है और आत्मदान का मार्ग भी बना रहता है। कवि व्यक्ति पर समाज के अवांछित बोझ को नहीं लादना चाहता है। 'भग्नदूत' की कविताएं कुछ इसी मनःस्थिति को प्रस्तुत करती हैं। कवि निजता के स्वीकार में अपनी कविताओं में दबंगता व आक्रोश के साथ भी प्रस्तुत होता है। परंतु ऐसा नहीं है कि वे समाजोन्मुख नहीं है। उनका यह अहं 'मैं' से 'हम' तक जाता है।

सामाजिकता

अज्ञेय के काव्य में आई व्यक्तिवादिता अहं भावना समाज के भीतर घुलती चली गई है। उनका व्यक्तिवाद सजग है, सामाजिक दबाव से परहेज रखता है मगर बगैर किसी दबाव के वह समाज के प्रति समर्पित रहने का भी इच्छुक है। यह बात अवश्य है कि सामाजिक लेबल लगी रचनाएं इन्होंने नहीं दी हैं मगर सामाजिकता का नकार इनके यहां नहीं है। कई-कई बार अज्ञेय का अकेलापन समूह में विलय हो जाने की मंशा रखता है जिसके आगे मानव कर्तव्य क्षेत्र पड़ा है। अज्ञेय ने अपनी सामाजिक प्रवृत्ति को कई जगह मुखर स्वर दिया है जहां पर उनकी सामाजिकता देश-प्रेम व मानवता तक पहुंच जाती है। अज्ञेय शोषित समाज के प्रति सहानुभूति का रवैया रखते हैं उनकी कविताओं में शहर एवं गांव के ऐसे तमाम चित्र भरे पड़े हैं जहां पर शोषित वर्ग की लंबी कतार है। उनकी सहज बयानी व कटूक्तियों में यह सामाजिकता उभर आती है। कृषक, कचरा ढोने वाले, मजदूर, खनिक, गधे हांकने वाले, रेड़ी उठाने वाले, रिक्शा खींचने वाले और भी ऐसे लोग जो मेहनत ज्यादा करते हैं, कमाते कम हैं और भोजन से अधिक डांट खाते हैं वे सभी वर्ग कवि की नजर से छिपे नहीं हैं तब अज्ञेय की सामाजिक भावना के लिए किसी प्रकार के प्रश्न की कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती है।

सामाजिक सरोकार की स्थिति में अज्ञेय ने व्यक्ति की सुरक्षा, उसके कल्याण, आत्मकल्याण, उसकी प्रगति की कामना की है। 'आंगन के पार द्वार', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूं' की कविताएं कवि के बाह्य संसार को समेट कर लाती हैं, जहां कवि से पहले अज्ञेय का इनसानी रूप दिखाई दे जाता है, कुछ इस प्रकार देखिए-

क्योंकि यों उसकी मार से मैं तिलमिला उठा हूं,
इसलिए मैं उसके साथ नहीं चीखा-चिल्लाया हूं।
मैं उस कोड़े को छीनकर तोड़ दूंगा।
मैं इनसान हूं और इनसान वह अपमान नहीं सहता।

– 'क्योंकि मैं उसे जानता हूं', पृ.-26'

प्रणयानुभूति

अज्ञेय प्रणय को उसके नैसर्गिक रूप में स्वीकार करते हैं। प्रणय को छिपाना उनकी दृष्टि में अपराध है। गहरी एवं सशक्त अनुभूति इनके प्रणय चित्रों में प्राप्त होती है। यही कारण है कि

उनके काव्य में प्रणय के चित्र यौनाकर्षण से लेकर मानसिक प्रेम अवस्था तक के हैं। 'हरी घास पर क्षण भर' तक पहुंचते हुए कवि की प्रणय भावना में परिष्कार आ जाता है। वहां प्रणय की किशोरावस्था समाप्त हो जाती है और प्रणय मानव के लिए जीवन का सार व जीवन सत्य बन जाता है। अज्ञेय की प्रणयानुभूति में नर-नारी का परस्पर आकर्षण है जो रूप की आसक्ति से आगे निकल जाता है। अतएव अज्ञेय ऐंद्रिय एवं उदात्त दोनों प्रकार के प्रेम के पक्षधर रहे हैं। चूंकि अज्ञेय रोमांटिक संवेदनों के कवि हैं इस प्रकार नर-नारी के संबंधों का जिक्र आत्मियत तक स्वीकार किया गया है। इस रूप में अज्ञेय की कविताओं में रीतिकालीन मांसलता व छायावाद कालीन गहनता प्राप्त होती है। उन्हें शब्दों से परहेज नहीं है। अनुभूत सत्य को लाना उन्हें संतुष्ट करता रहा है। आधुनिकता बनाम नगरीय जीवन के प्रणय-चित्र भी उनके यहां आश्रय पाते हैं। शहरी सभ्यता का प्रारूप यहां देखने को मिलता है। उन्मुक्त, बंधनहीन व खुलेपन का आभास इनकी प्रणयानुभूति के अंतर्गत देखने को मिल जाता है। प्रेयसी की स्मृतियों को इन्होंने रूप चित्रण में न लेकर भाव-चित्रण में व्यक्त किया है, जहां एहसास की विविध स्थितियां हैं। उनकी 'पलकों का कांपना' कविता में प्रस्तुत भाव देखिए-

और सब समय फरमाया है
बस उतना क्षण अपना
तुम्हारी पलकों का कांपना।

वेदनानुभूति

प्रणय की शक्ति को स्वीकार करने वाले अज्ञेय वेदना में भी अपार शक्ति को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार वेदना वह शक्ति है जो मानव को दृढ़ता प्रदान करती है और व्यक्ति के व्यक्तित्व को परिष्कृत करती है। इस धारणा से प्रभावित अज्ञेय ने अनेक कविताएं लिखी हैं। एक कविता में अज्ञेय ने अहं को पिता तथा वेदना को मां तक कहा है। वेदना के प्रति कवि का स्वीकार भाव है। 'हरी घास पर क्षण भर' की कविताओं में यह भाव उभर कर आता है–

दुख सबको मांजता है,
और
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने
किंतु जिनको मांजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें,

वस्तुतः कवि स्वीकार करता आया है कि दुख व्यक्ति के शक्तित्व को संस्कारित करता है। दुख जीवन जीने की कला सिखाता है जिसे नकारना जीवन-सच को नकारना है। व्यक्ति का व्यक्तित्व वेदना में ही निखर कर आता है जिसके माध्यम से व्यक्ति स्वयं संस्कारित एवं परिष्कृत होकर मानवीय भावों से संयुक्त हो जाता है।

दर्द में जीवन की शाश्वत सच्चाइयों को खोजने का प्रयास अज्ञेय ने किया। इस रूप में वेदना कवि के काव्य में जीवन दर्शन लेकर उपस्थित हुई है जिसके पीछे कर्म करने की अक्षय ऊर्जा निहित है। वेदना व्यक्ति को निष्क्रिय और कमजोर नहीं बनाती। अज्ञेय इस धारणा को

मानने वाले कवि रहे हैं, उन्होंने वेदना के प्रति नकारात्मक व उपेक्षात्मक रुख नहीं अपनाया वरन यह सच्चाई स्वीकार करने की हिम्मत की कि दुख व्यक्तित्व का परिशोधन करता है, जीवन अनुभवों का संशोधन करते चलता है, दर्द का अवमूल्यन वहां पर नहीं है वरन उसको मूल्य की ऊंचे अर्थों में समझा गया है।

अज्ञेय के काव्य में यह वेदनानुभूति व्यक्तिगत एवं व्यापक दोनों रूपों में प्राप्त होती है। स्वयं की परिधि का उल्लंघन करते हुए यह दर्द मानव का दर्द बन जाता है। 'आज मानव दर्द की शराब पी रहा है' जैसे वक्तव्य इसी ओर इशारा करते हैं। 'क्योंकि मैं उसे जानता हूं' संग्रह की 'मोड़ पर की गीत', 'दास व्यापारी,' 'बुलबुल', 'औपन्यासिक', 'मैत्री और रात' शीर्षक कविताओं में कवि परोक्ष-अपरोक्ष रूप से दर्द की बात उठाता चलता है। 'आंगन के पार द्वार' की कविताएं भी दर्द भरे कवि के जीवनदर्शन को उकेर कर लाती हैं। इस तरह अज्ञेय अपनी वेदना के पृथक धरातल पर गीतमान रूप से दिखाई देते हैं।

सौंदर्यानुभूति

अज्ञेय ने अपने काव्य में प्रणय एवं सौंदर्यानुभूति को बराबर का स्थान दिया है। कलात्मक रूप से सौंदर्य चित्रों का वर्णन इनके यहां प्राप्त होता है। सौंदर्यानुभूति के विविध आयाम इनके यहां प्रकृति चित्रण के दृश्यों में प्राप्त होते हैं इसके अतिरिक्त नारी सौंदर्य की छवियां भी प्राप्त होती हैं। अनुभूति पक्ष में एवं अभिव्यक्ति पक्ष में सौंदर्य का सागर इनके यहां देखा जा सकता है। यहां तक कि 'ये उपमान मैले हो गए हैं' कहकर परंपरागत भाषा से भी इन्होंने खासा परहेज रखा है। 'नखशिख' कविता में भी अज्ञेय ने पारंपरिक उपमानों को नए संदर्भ में प्रस्तुत किया है। इससे सौंदर्यीकरण ताजगी लिए हुए एवं नवीन रूप में प्राप्त होता है। एक अन्य उदाहरण देखिए-

अगर मैं कहूं
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरछरी बाजरे की?
या शरद के सांझ के सूने गगन की पीठिका पर
दोलती कलगी अकेली
बाजरे की।

सौंदर्य की अभिव्यंजना हेतु जिस रूपाश्रित जगत का इन्होंने आश्रय लिया है उसमें से अज्ञेय गहरे उतरते चले गए हैं जैसे 'बावरा अहेरी' संग्रह की 'देहबल्ली' कविता में ये कुछ इस प्रकार आगे बढ़ते चलते हैं-

देह-बल्ली। रूप को। एक बार बेझिझक। देख लो
पिंजरा है। पर मन इसी से उपजा है,
जिसकी उन्नति शक्ति। आत्मा है।

अज्ञेय के काव्य संग्रह 'इत्यलम्' में सौंदर्य की नवीनता दिखाई देती है। 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'इंद्रधनु रौंदे हुए थे' की रचनाएं सौंदर्य बोध के विकसित रूप को

प्रस्तुत करती हैं। रूपात्मक सौंदर्य को ग्रहण करते हुए कवि ने क्रमशः अपने काव्य-मात्र में आत्मा के सौंदर्य की बात उठाई है। इस कारण उनकी सौंदर्य चेतना स्थूल से सूक्ष्म होती गई है। दूसरी बात, यह भी महत्वपूर्ण है कि सौंदर्य चेतना के फलक पर वे अपने समय के किसी भी 'वाद' से आक्रांत होकर नहीं चले। सौंदर्य के जो आयाम उनके द्वारा खोजे गए उसके पीछे सांचे पर ढले न रहने का क्रम अहं तर्क था। जहां अपने समय के नगरीकरण, औद्योगिकीकरण एवं 'वाद' विशेष से परे वे नवीन मानव मूल्यों को एक पहचान देना चाहते थे जहां उनकी सौंदर्यानुभूति अपने बल पर खड़ी दिखाई दे। यही वजह है अज्ञेय के काव्य में सुंदर सौंदर्य के चित्र हैं। कहीं विशुद्ध सौंदर्य तो कहीं सौंदर्य के पीछे जीवन के तनाव एवं भटकाव से मुक्ति के प्रयास भी किए गए हैं। समग्र रूप में अज्ञेय का सौंदर्य बोध श्रेय एवं प्रेम गुणों से अभिभूत है जिसमें उनकी छोटी-छोटी कविताएं भी शामिल हैं। एक छोटी कविता का उदाहरण यहां पर प्रस्तुत है-

धूप
मां की हंसी के प्रतिबिंब सी शिशुवदन पर।
हुई भासित।

प्रकृति चित्रण

जैसा कि अज्ञेय की रचनाओं के शीर्षकों को देखकर सहज ही पता लगता है कि अज्ञेय प्रकृति से अपना संबंध बनाए हुए हैं। 'हरी घास पर क्षण भर' काव्य संग्रह से लेकर 'महावृक्ष के नीचे तक' की सभी रचनाएं प्रकृति बोधक शीर्षकों का बोध लिए हुए हैं। प्रतीकात्मक रूप में लिए गए ये प्रकृतिपरक शीर्षक कवि की अभिरुचि को सामने लाते हैं। ऐंद्रियबोध जगाते हुए बिंब प्रस्तुत करने में कवि काफी सफल रहे हैं। इनके यहां प्रकृति आलंबन से अधिक उद्दीपन का कार्य करती है। 'सागर', 'बावरा अहेरी, 'सांझ, 'धूप', 'घास', 'हरियाली', 'महावृक्ष', 'आंगन', 'इंद्रधनु', 'भोर' इत्यादि शब्दों का इनके काव्य में खास महत्व है, जिनके सहारे कवि का कथ्य सफलता के साथ संप्रेषित हो पाया है। इनके यहां प्रकृति कहीं पर प्रेयसी भाव लिए है, कहीं वह विरह पीड़ा को अभिव्यक्त करती है तो कहीं प्रकृति अपने अनुरागमय प्रवाह में है। एक छोटा सा उदाहरण कवि की बड़ी बात कहने को यहां पर सटीक लगता है-

मैं देख रहा हूं झरी फूल से पखुंरी,
मैं देख रहा हूं अपने को ही झरते।

कहने का तात्पर्य है कि अज्ञेय के काव्य में प्रकृति का संवेदनात्मक एवं अनुरागमय अंकन बड़े इत्मीनान से हुआ है जिससे कवि की प्रकृति के प्रति आसक्ति का पता चलता है। प्रकृति के मानवीकृत बिंब भी इनके यहां देखने को मिल जाते हैं। यहां पर एक अन्य उदाहरण देना उचित लगता है जिसके माध्यम से प्रकृति के प्रति उनकी आत्मीयता एवं सूक्ष्म दृष्टि का ज्ञान होता है-

यह पगडंडी चली लजीली
इधर-उधर अटपटी चाल से नीचे को, पर
वहां पहुंचकर घाटी में - खिलखिला पड़ी।

अज्ञेय अपनी संवेदना प्रकट करना भली-भांति जानते हैं। कवि कल्पना के प्रकटीकरण में संशय व संकोच नहीं करता है। प्रकृति के सहारे भोगातुर की अभिव्यंजना भी इनके यहां प्राप्त होती है जिसमें कवि किसी वाद से प्रभावित न होकर अपनी मौलिकता के साथ प्रकट होता है। प्रकृति सौंदर्यमय होकर, प्रतीक रूप में, मधुर भावों के साथ यहां दिखाई देती है। जो भी प्रकृति-चित्र प्राप्त होते हैं उनमें ताजगी एवं सरसता है। उनका काव्य प्रकृति का संग्रहालय सा प्रतीत होता है जिसमें ऊबाऊपन नहीं है। प्रकृति भाव-उद्दीपन, आह्लाद, परिवेश चित्रण, काल्पनिक-मानसिक स्थिति का जायजा देने के साथ-साथ करुणा पूरित अंचल को भी साथ लेकर आती है जहां पर कवि व्यक्तित्व समझने का अधिक अवसर प्राप्त हो जाता है।

आस्था एवं जिजीविषा

"आस्था न कांपे, मानव मिट्टी का भी देवता हो जाता है", यह कहने वाले अज्ञेय जीवन में मजबूती की पकड़ के हिमायती हैं। यूं तो नई कविता में आस्था एवं जिजीविषा का स्वर उभरा है और यह एक प्रमुख विशेषता के रूप में भी सामने आया है परंतु अज्ञेय ने इस आस्था को मानव अस्तित्व एवं समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक माना है। उनकी काव्य यात्रा ही स्वयं आस्था एवं जिजीविषा की काव्य यात्रा है। जहां आधुनिक जीवन के अनुभव, संत्रास, संघर्ष, भटकाव से आगे बढ़ने-बढ़ाने का क्रम है। जहां आस्था एवं जिजीविषा रखने वाले लोगों की जीत का जश्न है। इस रूप में अज्ञेय का काव्य प्रेरणीय है। 'हरी घास पर क्षण भर' फलक पर यह आस्था जमने लगी थी। कवि किसी वर्ग, जाति के प्रति आस्था व जिजीविषा का दृष्टिकोण नहीं रखते हैं बल्कि वे हर श्रम करने वाले के साथ हैं। उनका इस तरह का काव्य ऊर्जा का स्रोत है जो गांव, शहर, श्रमिक, मजदूर सबको आस्था के साथ उसकी सही पहचान देने की कोशिश करता है। 'महावृक्ष के नीचे' संग्रह की कविता में आकर कवि आस्था का दीप जलाए रखता है। इस रूप में आशावाद उनके यहां दिखाई पड़ता है, जहां पर वे अंधकार में छोटी सी रोशनी की तथा संहार की अवस्था में एक छोटी सी 'फूल चुही' निकलने की आशा तक बंधाए रखते हैं। 'साल दर साल' शीर्षक कविता का एक अंश देखकर अज्ञेय की आस्था एवं जिजीविषा को समझने का प्रयास किया गया है। यथा–

'अगले बरस फिर
कहीं किसी गांठ में
दरार से
एक नई कोल
फूल आएगी
जिस पर मंडराएगी, उतरेगी
पिद्दी-सी फूल चुही।'

कहने का आशय है कि अज्ञेय हर स्थिति में आस्थावादी बने रहना चाहते हैं। जीवन के ाति जीने की कला उनसे यह भी कह डालती है–

जल जाएंगे नगर समाज सरकारें....
नहीं मरेगा विश्वास।

सत्यान्वेषण-आत्मान्वेषण

अज्ञेय, आरंभ से ही अपने-आप को नई राहों का अन्वेषी मानते रहे हैं। इस खोज में उन्होंने अपने आपको अलग रखने का प्रयास भी किया है परंतु आरंभिक दिनों में अहं की स्थिति भी उनके व्यक्तित्व-कृतित्व में देखने को मिल जाती है। वे आत्म गौरव से भरे हुए भी हैं जिस कारण प्रेम के आगे झुकना भी उन्हें स्वीकार नहीं होता है किंतु समय के अंतराल में अनुभव व चिंतन ने उनके व्यक्तित्व को बदल डाला। अज्ञेय एक समय में अहंवादी फिर क्रमशः प्रेम के प्रति नतमस्तक, जीवन-चिंतक, सामाजिक उत्तरदायित्व से भरपूर दिखाई देते हैं। इसका कारण उनके व्यक्तित्व में निहित आत्मान्वेषण का गुण ही है। निरंतर रचनाशील व्यक्तित्व एवं गहन चिंतन ने उन्हें सत्यान्वेषण एवं आत्मान्वेषण के ऐसे रास्ते पर खड़ा कर दिया जहां जिंदगी के इशारों को वे समझने लगे। कवि का यह स्वीकार देखिए-

बढ़े चाहे बोझ जितना
शास्त्र का, इतिहास का,
रूढ़ि के विन्यास का या सूक्त का-
कम नहीं ललकार होती जिंदगी की।

जीवन-सत्य पाने की ललक ने कवि की अनुभूतियों को बदल डाला, इसी जीवन सत्य की राह में कई सत्य, अर्द्धसत्य उन्हें मिले। 'आंगन के पार द्वार' काव्य-संग्रह की कविताएं कुछ इसी सत्य की खोज करती चलती हैं मगर अंतिम सत्य न जाने कितने द्वारों के पार रहता है। ऐसी स्थिति में अज्ञेय अन्वेषक होने के साथ-साथ जिज्ञासु भी दिखाई देते हैं। आत्मान्वेषण-सत्यान्वेषण का भान कराती कविताएं, दार्शनिक व रहस्यवादी पुट लिए हुए हैं। 'आंगन के पार द्वार' के अतिरिक्त 'कितनी नावों में कितनी बार', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूं', 'सागर मुद्रा,' 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं', 'महावृक्ष के नीचे' काव्य संग्रह की कविताएं इसी संदर्भ में आती हैं।

क्षणवाद

प्रत्येक क्षण इस्तेमाल करने की भावना क्षणवाद को जन्म देती है और जब कवि इस धारणा से स्वयं को अलग मानता हो कि पुनर्जन्म जैसी भी कोई चीज़ होती हो तब वर्तमान में प्राप्त जीवन के क्षणों के इस्तेमाल की कवायद शुरू हो जाती है जो क्षणवाद का प्रेरक कारण है। भले ही यह अपरोक्ष रूप से क्यों न हो। वर्तमान को पूर्णतया भोगने की अवस्था ही क्षणवाद की स्थिति है। वर्तमान के प्रति आस्थावादी रहना, मूल्यवादी दृष्टिकोण है और यही अज्ञेय के क्षणवाद की भी अवधारणा है। क्षणवाद की स्थिति को समझते हुए अज्ञेय अपने कवि-कर्म में निष्ठावान होकर आगे बढ़े हैं। इस प्रकरण को उठाते हुए अज्ञेय की कई काव्य पंक्तियां 'जिओ और जीने दो' की बात करती हैं। 'ब्रह्म-मुहूर्तः स्वस्तिवचन' शीर्षक कविता में कवि का मंतव्य कुछ इस रूप में सामने आता है-

जिओ उस प्यार में
जो मैंने तुम्हें दिया है,
उस दुःख में नहीं जिसे
बेझिझक मैंने पिया है।

अज्ञेय में साथी के अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव है। इसमें क्षण का असीम महत्व होता है। वहां केवल वर्तमान को महत्व दिया जाता है।

अज्ञेय अपनी अनुभूति के प्रति भी सजग रहे हैं। अनुभूति के क्षण का महत्व भी उन्होंने समेट कर रखा है। सच्चाई यह है कि अनुभूति की प्राथमिकता क्षणवाद का एक अहं हिस्सा है।

रहस्यवाद

अपनी काव्य-यात्रा में अज्ञेय 'आंगन के पार द्वार' की कविताओं से रहस्यवादी कहलाने लगे। कवि की काव्य संवेदना किशोरावस्था से प्रौढ़त्तर होते-होते आगे के काव्य संग्रहों में होती चली गई। अज्ञेय का रहस्यवाद पारंपरिक रहस्यवाद नहीं है। कहीं-कहीं पर वह भाव से अधिक बौद्धिक है। वह जटिल भी नहीं है। रहस्यवाद से जुड़ी अज्ञेय की अपनी अलग मान्यताएं रही हैं। वे अंततः सत्ता को जगाने वाले कवि हैं। यह रहस्यवाद प्रकृति चित्रण अथवा बाद के संग्रहों में आए प्रेम-निवेदन द्वारा व्यक्त होता है। हारिल, दीप, चितेरे, देहबल्ली आदि शब्दों का प्रयोग ऐसे प्रसंगों में प्राप्त होता है। भारतीय वेदांत, बौद्ध-दर्शन का प्रभाव अज्ञेय के रहस्यवाद में दिखाई देता है। 'चक्रांत शिला' कविता में रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। मानव की प्रगति एवं मानव की करुणा ने उनके रहस्यवाद के भाव को पुष्ट किया है जिसमें आध्यात्मिकता के स्वर मुखरित हुए हैं। प्रतीकों के माध्यम से इस रहस्यवाद को भाषा मिली है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

1. *तिनका पथ की धूल स्वयं तू*
   है अनंत की पावन धूलि
   किंतु आज तूने नभ पथ में
   क्षण में बद्ध अमरता हू ली।

2. *बना दे, चितेरे*
   मेरे लिए एक चित्र बना दे।

स्पष्ट है कि अज्ञेय काव्य का वर्ण्य विषय विविधतापूरक है। यद्यपि वर्ण्य विषय परंपरागत है परंतु दृष्टि नवीन एवं मौलिक है। अज्ञेय की काव्य के विषय में प्रयोगशील प्रवृति ने ही उन्हें विशिष्ट बना दिया है। यही उनका महत्व है। उनकी काव्य यात्रा लंबी है जिसमें एक ओर छायावाद तदोपरांत नवीन कविता, साठोत्तरी कविता फैली हुई है दूसरी ओर उनका काव्य उनके प्रखर व्यक्तित्व की उपस्थिति को साहित्य में दर्ज कराता आया है।

प्रयोगधर्मिता के परिणाम

किसी भी क्षेत्र में नयापन प्रतिक्रियाओं की संभावनाओं को पैदा करता है, अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता ने भी हिंदी जगत में प्रतिक्रियाओं को जन्म किया। काव्य को नई दिशा देना कोई सरल प्रक्रिया न थी। यह अज्ञेय एवं उस काल के प्रयोगवादी कहे जाने वाले कवियों की गंभीर सोच का परिणाम था। सबसे अहं बात जो उद्देश्य के संदर्भ में हैं अज्ञेय की 'प्रयोग' की प्रवृति ने उन्हें प्रयोगवादी को अगुवा करार दिया। स्वयं अपनी कविताओं को 'प्रयोग', 'अन्वेषण', 'राहों के अन्वेषी' मानने के कारण अज्ञेय को अपने विषय में व अपने काव्य चिंतन के विषय में सफाई देनी पड़ी। दूसरे सप्तक में उन्होंने कहा कि हम वादी नहीं हैं हमें प्रयोगवादी न कहा

गए। तत्कालीन हिंदी आलोचकों ने उनकी कविता को 'प्रयोग' कहकर पुकारा किंतु अज्ञेय ने अपने पाठकों को भी इसकी जानकारी दी कि यह कविता का नयापन है, प्रयोग नहीं। इसी तरह उन पर कुछ अन्य आरोप भी लगाए. 'तारसप्तक' के सातों कवि अलग-अलग विचारधारा से संबद्ध थे जिन्हें स्वयं को 'प्रयोगवादी' कहलवाना उचित नहीं जान पड़ा। इस बारे में भी अज्ञेय ने तर्क दिए किंतु उनकी प्रयोगधर्मिता सर्वोपरि रही और वे प्रयोगवादी बन गए।

समग्र विवेचन के उपरांत कहा जा सकता है कि अज्ञेय का काव्य चिंतन एवं उनकी प्रयोगधर्मिता अन्य काव्य-सर्जकों एवं उनके सहयोगियों में सर्वोपरि है। प्रयोगधर्मिता के तहत आत्मान्वेषण, आस्था-मानवास्था, जिजीविषा, सत्यान्वेषण जैसे तत्व उभर कर निकले। प्रणय, पीड़ा एवं सौंदर्य की उनके यहां अस्पर्शित अनुभूतियां प्राप्त होती हैं और उनकी काव्य-भाषा उनके अन्वेषण का परिणाम है जिससे पिछली जड़ताएं दूर होती हैं। अज्ञेय ने दूसरे कवियों के द्वारा की गई प्रयोग की रीति स्वीकार की। सबके अलग-अलग दृष्टिकोण होने के बावजूद कविता के लिए अज्ञेय व उनके सहयोगियों ने संघर्ष किया। उनकी कविताओं का नयापन साहित्य जगत को अलग स्पंदन प्रदान करता है। वे आधुनिकता के पक्षधर हैं। उनकी प्रयोग की डगर सत्य की खोज है जहां कवि का भीतर उसके बाहर अंकित हो सके अतः स्पष्ट है कि अज्ञेय राह में चलने वाले राहगीर नहीं है बल्कि वे तो कविता के धरातल तक प्रयोग करने वाले यायावर कवि हैं जिनसे काव्य-जगत को नई दिशा का ज्ञान होता है। नए कवियों को प्रेरणा मिलती है और काव्य नएपन के साथ जीवित भी रहता है और ताजगी भी बनी रहती है।

अज्ञेय परंपरावादी कवियों से दूर नई भावनाओं एवं संवेदनाओं को ग्रहण करने वाले कवि रहे हैं। उनके काव्य में अपने पीछे के युग की कोई भी प्रवृत्ति परंपरा-ग्रहण के रूप में नहीं दिखाई देती है। कुछ प्रवृत्तियां जो उनके पीछे के कवियों में रही हैं मसलन, छायावाद अथवा प्रगतिवाद में आई भावनाओं को उन्होंने भी महसूस तो अवश्य किया किंतु बदलते परिवेश एवं निजगत- व्यक्तिगत प्रवृत्तियों - मानसिकताओं के कारण उनका स्वरूप उनके काव्य में नवीन रूप में देखने को मिलता है।

पाठक के मस्तिष्क में यह सवाल अवश्य उपस्थित होगा कि अज्ञेय के काव्य में आई कुछ विशेषताएं पूर्व के कवियों के काव्य में भी प्रायः मिलती ही हैं जैसे- वैयक्तिकता, सामाजिकता, रहस्यवाद। इतने पर भी कवि को अलग दर्जे में रखना कितना उचित है? परंतु यहां पर यह समझ लेना आवश्यक होगा कि अज्ञेय के किसी भी काव्य-संग्रह को उठा लेने पर अध्यनोपरांत ज्ञात होता है कि उनका मानसिक एवं भाषिक स्तर इस कवि को अलग पंक्ति का कवि करार देता है जहां नए भाव-स्तर आने से कविता को बदलाव के रुख के साथ-साथ एक महत्व भी प्राप्त होता है।

किसी भी कवि के काव्य के पीछे उसका परिवेश, उसकी अंतः प्रेरणा काम करती है, उसके बाद संप्रेषण कला आती है। अज्ञेय के काव्य में क्षणवाद जैसी स्थितियां आकर कवि की सूक्ष्म दृष्टि को स्पष्ट करती है। अज्ञेय का रचनाकाल चौथे दशक का रहा है। यह समय भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक उथल-पुथल का समय रहा है। आजादी से पहले का दशक रहा है। युगीन प्रवृत्तियों का प्रभाव अज्ञेय में भी पड़ा

किंतु उन्होंने नवीन मार्ग का अन्वेषण किया। अपने समय की किसी भी काव्य धारा में बँध कर लिखना उनके व्यक्तित्व को रास नहीं आया। देश-विदेश में घूमने की अपनी यायावरी प्रवृत्ति ने भी उनके काव्य वैशिष्ट्य को अलग आयाम देने का प्रयास किया।

अज्ञेय के काव्य अध्ययन से जैसा कि स्पष्ट विदित होता है कि कवि रूप में अज्ञेय का प्रथम काव्य संग्रह 'भग्नदूत' सन् 1933 में आया। उस समय छायावाद से प्रभावित रचनाएं भी काव्य-क्षेत्र में देखने में आ रही थीं तथा मार्क्स प्रभावी रचनाएं भी लिखी जा रहीं थीं। हिंदी कविता के इतिहास में यह समय मुख्यतया प्रगतिवादी रचनाओं का रहा है। अज्ञेय के इस प्रथम संग्रह की काव्य-कृतियां छायावाद की आंशिक छाया लिए हुए हैं, इससे आगे अपने काव्यक्रम को बढ़ाते हुए उन्होंने निरंतर कविताएं लिखीं व 1977 में उनका अंतिम काव्य संग्रह प्राप्त होता है। चालीस वर्ष से भी अधिक समय तक कविता लिखने के क्रम में जो विशिष्टताएं प्राप्त होती हैं।

7.5 अज्ञेय की काव्य भाषा

जिस प्रकार अज्ञेय की काव्य-यात्रा ने लगभग चार दशक पूरे किए उसी के अनुरूप उनकी काव्य भाषा का प्रारूप समय अनुभव एवं नवीन प्रयोग करने की प्रवृत्ति के कारण विभिन्न तेवरों में काव्य जगत के समक्ष आया है। आरंभ से ही अज्ञेय खुले दिमाग से साहित्य क्षेत्र में अवतरित हुए। वे किसी 'वाद' में नहीं फंसे रहे न ही उन्हें कभी 'वादी' कहलाने की चाह थी, इसी मंशा से उन्होंने भाषा के स्तर पर भी रूढ़ियों से इतर जाकर अपनी अभिव्यक्ति दी। इस कारण उन्हें 'प्रयोगवादी' भी कहा गया। वे कई बार इस 'प्रयोगवादी' नाम से बचते रहे व कई जगह उन्होंने इस नाम के प्रति स्वयं को जोड़ने वालों के प्रति टिप्पणी भी की। 'मुझे वादी न कहा जाए', स्पष्ट रूप से यह कहने पर भी यह 'वादी' शब्द उनका पीछा न छोड़ पाया और वे कविता में प्रयोग करते हुए 'प्रयोगवादी' कहलाए जाने लगे, उन्होंने बराबर इस शब्द से विरोध रखा क्योंकि वे किसी 'वाद' विशेष में रहकर कविता नहीं करना चाहते थे लेकिन यह 'प्रयोगवादी' नाम उनके साथ जुड़ गया किंतु वे इससे भी आगे निकल गए और अपने काव्य को एक ऐसे मुकाम पर लेकर आए जहां कवि रूप में आज भी उनका नाम एक अलग व्यक्तित्व की उपस्थिति रखता है। संवेदना के साथ-साथ उनका भाषिक प्रयोग अपना अलग महत्व रखता है जहां से हिंदी काव्य को नई दिशा प्रदान होती है।

अज्ञेय द्वारा प्रयुक्त व्यावहारिक भाषा

वर्ण्य-विषय एवं भाव गंभीरता के आधार पर अज्ञेय की भाषा के कई रूप देखे जाते हैं। अज्ञेय अपनी काव्य अनुभूतियों के कई स्तर तक जाते हैं। उन्होंने अपनी काव्य अनुभूतियों को कई स्तरों से उठाया। सामाजिक, सरल, सामान्य एवं सामाजिक पहलुओं की संवेदना हेतु जिस भाषा का प्रयोग किया है वह है अज्ञेय की सरल व्यावहारिक भाषा, जिसे कहने में अभिव्यक्ति संबंधी कोई व्यवधान या आयोजन-नियोजन की स्थिति न रहे। इसे बोलचाल की भाषा का रूप भी कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में अज्ञेय ने जिस लोकभाषा का प्रयोग किया उसकी शब्दावली आमजन की भाषा है जिसे समझने के लिए अधिक जोड़-जुगत नहीं लगानी पड़ती। इस तरह की भाषा में कहीं कोष्ठकों का प्रयोग किया गया है तो कहीं 'कि' कहकर बात दोहराई गई

है. कहीं-कहीं पर तो शब्दों का दोहराव करके बात की अहमियत रखी गई है। शब्दों की आकृति, क्रिया की आकृति, बिंदु प्रयोग करके कविता को छोड़ देना और पाठक को जागरूक बना देना कि वह कविता की गहराई को माप सके, इस प्रकार के प्रयोग अज्ञेय के यहां से शुरू होते हैं। कुछ उदाहरण हैं–

1. *एक सहमा हुआ सभारा*
   और दर्द, और दर्द और दर्द।

2. *जो भी पाया, दिया*
   देखा, दिया
   जो संजोया दिया जो खोया दिया।

3. *ज्योति के भीतर ज्योति, ज्योति के भीतर ज्योति*

एक अन्य उदाहरण देखिए जिसमें सरल भाषा में अपनी अनुभूति कवि ने व्यक्त की है–

खोज में जब
निकल ही आया।
सत्य तो बहुत मिले।
कुछ नये कुछ पुराने मिले।

संस्कृतनिष्ठ परिनिष्ठित शब्दावली

गहन विषय लेखन के समय अज्ञेय की कविता संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में दिखाई देती है। 'आंगन के पार द्वार' संग्रह की भाषा इसी तरह की है। वैसे भी अज्ञेय के संपूर्ण काव्य में संस्कृत शब्दावली का प्रयोग अधिकतर हुआ है। कविताओं के शीर्षक तक संस्कृत शब्दावली में मिलते हैं। उदाहरणार्थ – 'ध्रुपदः शं', तं तु देशं न पश्चमि', 'ओ निरसंग ममेतर', 'ब्रह्म मुहूर्तः स्वस्ति वचन,' 'रोपमित्री और निरस' इत्यादि। 'आंगन के पार द्वार' काव्य संग्रह में तो कठिन संस्कृत शब्दावली प्राप्त होती है। उदाहरण के तौर पर उत्कृष्ट, उदग्र, उदीषा, सुगंध, स्थैर्य, चक्रांत, श्यांता इत्यादि ऐसे कई शब्द हैं जो कवि के संस्कृत भाषा के ज्ञान एवं रुझान को उजागर करते हैं।

'सागर मुद्रा' काव्य-संग्रह की कविता का उदाहरण प्रस्तुत है– कृंत/स्मर/मृतान्/ स्मर/क्रतो/स्मर।

अज्ञेय के यहां तत्सम शब्दावली आकर उनके भाषिक ज्ञान का परिचय देती है। वास्तव में वे एक सजग शिल्पी हैं जो भाषा के बुनियादी रूप को अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण उपकरण मानते हैं। अज्ञेय के तत्सम शब्द अन्य कवियों के तत्सम शब्दों से बिल्कुल अलग है जो उनकी निजी खोज है।

देशज शब्द संपदा

अज्ञेय के यहां देशज शब्दों की भी भरमार है। इस रूप में एक सरल भाषा इनके यहां प्रयुक्त हुई है। हिय, दीठ, नयन, पूनो, प्रिया, कलौंस, वल्ली, खादर, औचक, चौखटा, ठीकरा, तई, तलैया, पालागन इत्यादि शब्दों के साथ-साथ एक अलग तरह की स्थानीय क्रिया जैसे – तकना, दिपना, झिपना, हरसाना आदि इनके काव्य में प्राप्त होती है। इस प्रकार के देशज शब्दों के

माध्यम से काव्य की संवेदना में कहीं कोमलता का एहसास होता है तो कहीं पर देशज शब्द अपने पूरे परिवेश के साथ उपस्थित होकर ताजगी भरे बिंब के रूप में दिखाई देते है-

सो रहा है झौंप अंधियाला
नदी की जांघ पर
डाह से सिहरी हुई यह चांदनी
चोर पैरों से अझक कर, झांक आती

नवीन शब्द प्रयोग

अभिव्यक्ति के धरातल पर जिस बदलाव की चेतना ने अज्ञेय को आकर्षित किया वह है नवीन शब्द प्रयोग। नवीनता के प्रति आग्रह ने उन्हें यहां भी नहीं छोड़ा है। यह भी अलग बात है कि अज्ञेय न तो किसी 'वाद' विशेष का बनकर रहे न ही भाषा की एकरूपता में डरे रहे। परंपरागत होकर उस एकरूपता में बंधना अज्ञेय के स्वभाव से विपरीत स्थिति रही है। यही वजह है कि अपनी अनुभूतियों में भी उन्होंने भाषा के प्रसंग को उठाया है और अपनी बात साफ तौर पर रखकर अपने व्यक्तित्व को बरकरार रखा है तथा काव्य क्षेत्र में भाषिक स्तर पर नए रास्ते तैयार किए हैं। काव्य की जीवंतता, परिवर्तनशीलता भविष्य के प्रति दायित्ववान बनने में है। यह दायित्व परंपरा से विद्रोह के बाद आता है जहां मौलिकता स्वयंमेव आ जाती है। 'अर्थ दो, अर्थ दो, मत हमें रूपाकार इतने व्यर्थ दो,' यह कहने वाला कवि सफल अभिव्यक्ति की ओर इशारा करता है जहां अनुभूति का कोई अंश भीतर बाकी न रहे और शब्द अपनी अर्थवत्ता के साथ प्रस्तुत हों। शब्दों के प्रति वे सजग रहे हैं, शब्द यदि सार्थक नहीं है तो ऐसे में बिना शब्दों की भाषा से ही वे संतुष्ट हैं जहां मौन ही सार्थक रूप में मुखर होता है–

अच्छा/सार्थक/मौन/व्यर्थ के - श्रवण-मधुर भी छंद से अज्ञेय की अपेक्षाएं स्वयं के कवि व्यक्तित्व से जितनी अधिक रही है उतनी ही पाठक से भी है, वह कवि वजूद के साथ-साथ गंभीर पाठक की भी अपेक्षा रखते हैं, कविता उनके लिए मात्र शौक या नाम कमाने का जरिया न होकर सचेतस व्यक्तित्व का जिम्मेदारी भरा कर्म है, जहां स्वयं व अपने पाठक से लापरवाही का रवैया उन्हें कतई पसंद नहीं है-

चाहता हूं आप मुझे
एक-एक शब्द पर सराहते हुए पढ़ें।
पर प्रतिमा-अरे, वह तो
जैसे आप से आप स्वयं गढ़ें।

शब्दों के प्रति सजग कवि अपने पाठक को इतने पर भी पूरी गुंजाइश देता है कि वह शब्द का अर्थ निकालने को स्वतंत्र है। काव्य में अंग्रेजी शब्दों के परहेज को कवि ने पूरी तरह तोड़ा है। अभिव्यक्ति का कोई भी अंश अधूरा न रहे मुख्य उद्देश्य कवि का यही है जिसमें यायावर कवि ने ग्लोबलाइज शब्दों का प्रयोग किया है जो उस समय हिंदी में आसानी से पचाऊ थे और उनका महत्व संदर्भों के आधार पर स्पष्ट हुआ है। अंग्रेजी के शब्द अपेक्षाकृत कम है। उर्दू मुहावरों का प्रयोग कवि ने अपनी काव्य भाषा में किया है। उदाहरण दृष्टव्य है- दामन पाक रखना (इद्धनु रौंदे हुए थे), मुलम्मा छूटना (हरी घास पर क्षण भर), दांव पर चढ़ना (बावरा अहेरी) कुल मिलाकर अज्ञेय के यहां नवीन शब्द प्रयोग से मौलिकता उद्घाटित हुई है।

प्रतीक योजना

प्रतीक की अर्थशक्ति अत्यंत विस्तृत होती है। अव्यक्त को व्यक्त करने का माध्यम प्रतीक है। प्रतीकों का प्रयोग हिंदी काव्य जगत में फर्र रूपों में देखने को मिलता है। प्रतीक परंपरागत एवं नवीन दोनों रूपों में प्राप्त होते हैं। यहां तक कि छायावाद काल के अपने ढेरों प्रतीक हैं। कभी-कभी प्रतीक अपने काल्य-विशेष का भी परिचय देते हैं। ऐसा तब होता है जब कवि किसी विशेष प्रकार की अनुभूति के लिए एक काल में एक प्रकार के प्रतीक का प्रयोग करते हैं और कभी प्रतीक किसी कवि विशेष की मौलिक रचनात्मकता प्रस्तुत करते हैं। प्रतीक शब्दार्थ की अपेक्षा अपने इंगित अर्थ पर बल देते हैं। अज्ञेय काव्य में आए प्रतीक आकर्षक एवं गहरे हैं। उनका हरेक काव्य संग्रह प्रतीकों की भाषा बोलता है। सत्यान्वेषण, प्रेमानुभूति, रहस्यानुभूति जैसे क्षणों में प्रतीकों का अधिकाधिक प्रयोग हुआ है। इस प्रकार प्राकृतिक प्रतीक, परंपरागत प्रतीक, पौराणिक प्रतीक, यौन प्रतीक, वैयक्तिक प्रतीक, वैज्ञानिक जींस के प्रतीक इत्यादि अज्ञेय काव्य में देखे जा सकते हैं। अनुभूति को सफल बनाने हेतु प्रतीकों का इस्तेमाल अज्ञेय के यहां, कई उदाहरणों द्वारा स्पष्ट होता है। 'हरी घास पर क्षण भर' काव्य संग्रह में कवि ने वैयक्तिक एवं परंपरागत प्रतीकों का प्रयोग किया है वहीं 'इंद्रधनु रौंदे हुए थे' काव्य संग्रह में पौराणिक प्रतीक मिलते हैं। वहां आए द्रोण, एकलव्य आदि पात्र राजनीतिज्ञ एवं बौद्धिक व्यक्तियों का अर्थ देते हैं। उनका एक निम्न प्रतीक सार्थक एवं ताजगी भरा है–

अगर मैं कहूं
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी बाजरे की।

अज्ञेय काव्य में प्रतीकों का व्यापक जमावड़ा है, 'बावरा अहेरी, सागर, दीपक, घास, नदी, द्वीप, मछली, कांच, मरू, कडुआ, धुआं, किरण, बुलबुले, कली, चादर, बरसात, गलीचा, तारा, चिड़िया, पत्ती, दीया, शिशु, जुगनु, यंत्र गरुड़, सांप, नंदन वन ऐसे कई प्रतीक हैं जो उनके व्यक्तित्व का द्योतन करते हैं और ऐसे प्रतीक नवीन भाव बोध जगाने में सहायक हुए हैं। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' संग्रह का एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत है–

स्वयं पथ-भटका हुआ
खोया हुआ शिशु
जुगनुओं को पकड़ने को दौड़ता है
किलकता है
"पा गया, मैं पा गया।

प्रतीकों के आयोजन द्वारा अज्ञेय के काव्य में अनुभूति उद्देश्यपूर्ण ढंग से व्यक्त हुई है। अप्रस्तुत को प्रस्तुत करने का प्रयास, व्यंग्य का तेवर सौंपना, कल्पना को रूपाकार देना एवं सौंदर्य चेतना को बरकरार रखने में प्रतीकों का इनके यहां महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

बिंब योजना

शब्द-चित्र बिंब का पर्याय है। कवि के भीतर निहित संवेदना की गहराई और इतमीनान का परिचय शब्द-चित्रों के माध्यम से होता है। अपने प्रकट रूप में बिंब सर्वप्रथम ऐंद्रिय बोध जगाने में सक्षम होते हैं। ऐसी स्थिति में दृश्य बिंबों की एक लंबी शृंखला दिखाई देती है

किंतु शब्द-चित्रों के अधिक निकट जाने पर यह ऐंद्रियता कई रूपों में प्रकट होती है। अज्ञेय के काव्य में भी ऐंद्रिय बिंब मिलते हैं। छोटी-छोटी कविताएं इनके यहां बिंब-बोध कराती हैं-

ताल पुराना। कृपा दादुरः। - गुडुप।

यह एक छोटा उदाहरण है लेकिन पाठक इसे पढ़कर कुछ देर तक श्रव्य बिंब का एहसास पा सकता है। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' काव्य संग्रह में ऐसी ही छोटी कविताओं के अंश ऐंद्रियता के कई ढंग प्रस्तुत करते हैं जहां सौंदर्य एवं कवि कल्पना के साथ-साथ यथार्थ का किरकिरापन देती कई कविताएं मौजूद हैं। जिस घ्राण विषयक बोध के चित्र छायावाद की कविता में बहुतेरे मिलते हैं, वही घ्राण बोध की स्थिति अज्ञेय के यहां भी मिलती है जो नवीन रूप में है और उनके समय के काव्य-विषयों के बीच एक नया एहसास दे जाती है। मतलब कि बहुत सारे नए अनुभवों के बीच कवि ने वह कोना बचाए रखा है जहां कवि की संवेदनशीलता बगैर किसी आवरण के प्रस्तुत हो सके-

मौन-पुराना नगर, सांझ,
घंटा-ध्वनि की लहरों पर तिरती
सुमन गंध।

अपने काव्य संग्रहों में आए प्रतीकों के माध्यम से कवि एक विचारधारा का परिचय देते हैं। उनका शिल्प प्रतीकों से मजबूत व सफल बनता है। प्रतीकों का नए संदर्भों से जुड़कर प्रस्तुत होना अज्ञेय काव्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

अलंकार योजना

अलंकार काव्य सौंदर्य के महत्वपूर्ण उपकरण हैं। कितनी भी जटिलतम अनुभूतियां हों, अभिव्यंजना में अलंकारों की उपस्थिति निहित रहती ही है। भले ही किसी कवि के काव्य में कम अलंकारों की संख्या मिले और किसी का काव्य अलंकारों से बोझिल हो। अज्ञेय के यहां अनुभूतियां कवि की संवेदनशीलता का परिणाम रही हैं और अभिव्यक्ति उनकी प्रखर बुद्धि की परिचायक बनी है। अलंकारों का प्रयोग अज्ञेय काव्य में भी कम नहीं दिखता है। मानवीकरण, यमक, रूपक, विशेषण-विपर्यय, उपमा अलंकार यहां मुख्य हैं। उपमा अलंकार अधिकाधिक दिखाई देता है। प्रकृति चित्रण, सौंदर्य चित्रण की छोटी कविताओं में अलंकार छिटके पड़े मिलते हैं जैसे-

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल लाल कनियां

कवि के यहां आए अलंकार सहज, अकृत्रिम व सार्थक हैं। औचित्य की पूर्ति इनके द्वारा होती है। शब्द-ध्वनियों का सूक्ष्म बोध जगाने में अनुप्रास के उदाहरण अन्यतम हैं। शब्द के अर्थ की गहनता का संकेत इस श्रेणी के काव्य के माध्यम से होता है।

मिथक योजना

व्यक्ति जो कुछ भी अनुभव करता है अथवा देखता है उसका उसके मानस पटल पर एक बिंब तैयार हो जाता है। इस बिंब या छवि को आद्य बिंब की श्रेणी में रखा जा सकता है। मिथक इन्हीं आद्य बिंबों की उपज से निःसृत होते हैं। व्यक्ति के अनुभव एवं संस्कार इसका नियोजन करते हैं। ऐसी स्थिति से शब्द या बिंब अपने वास्तविक अर्थ से बड़ा अर्थ सौंपते हैं। मिथक का संबंध हमारी संस्कृति व संस्कार से होता है लेकिन मिथक, शब्द व बिंब का हू-ब-हू प्रतिरूप न होकर पिछली पहचान को ध्यान में रखकर उससे जुड़े नए अर्थों की खोज लेने का उपक्रम है। अज्ञेय ने मिथक सृजन में विशेष रुचि दिखाई है। उन्होंने वेद पुराण की ओर जाकर जिस संदर्भ की चर्चा की है वहां उनका मिथक प्रयोग मिलता है। प्राचीन एवं नवीन का बहुत बड़ा अंतर व्यंग्यात्मक रूप में इन मिथकों द्वारा सूचित है। कहीं पर भाषा की पौराणिकता जब कविता में संप्रेषित होती है तब एक बड़ा प्रसंगिक अर्थ इन मिथकों से खुलता चला जाता है जहां संप्रेषण के लिए अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती है जैसे उनके काव्य में एकलव्य, राम, रावण, उर्मिला, गांधारी, कृष्ण, राधा, मनु देवता आदि आए हैं जो अपने साथ पूरा वातावरण अथवा चरित्र साथ लेकर चलते हैं, जहां मूल शब्द बड़ा अर्थ प्रदान करता है।

मिथक वास्तव में कवि की जागरुकता के परिचायक हैं, इन्हें कवि ने अपनी मनःस्थिति एवं बाह्य परिस्थिति के अनुसार ग्रहण किया है। सामाजिक संदर्भ, राजनैतिक प्रसंग, मनोवैज्ञानिक संदर्भों में इनकी व्याख्या स्थितियों को सामने लाती है। 'क्योंकि मैं उसे जानता हूं' काव्य संग्रह में 'अहं राष्ट्री संगमनी जनानाम्' कविता है, दूसरी कविता का शीर्षक 'तं तु देशं न पश्यमि' है, ये कविताएं मिथकीय प्रयोग के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। मिथक प्रयोग की दृष्टि से अज्ञेय का काव्य महत्वपूर्ण है।

लय योजना

कवि की संवेदना जितनी गहरी एवं तीव्र होगी कविता उसी प्रकार की अभिव्यक्ति में ढलकर व्यक्त होगी। यह स्थिति लय निर्माण करती है जहां छंदों के बंधन से मुक्ति होती है। अज्ञेय का कलाकार हृदय भी काव्य में लय की स्थिति को स्वीकार करता है, जहां नियमों में बंधने की स्थिति नहीं होती है। लयात्मक ठहराव एवं स्पीड अर्थात त्वरित गति की स्थिति अज्ञेय के यहां प्राप्त होती है।

उड़ गई चिड़िया
कांपी, फिर
थिर
हो गयी पत्ती।

यह कविता जितनी छोटी व सरल दिखाई देती है उतनी है नहीं। कवि की अनुभूतिजन्य संवेदना का धरातल यहां पर स्पष्ट होता है। दूसरे, कई अर्थों को देने वाली यह कविता भावनाओं के उतार-चढ़ाव को भी महसूस कराती है यह स्थिति लय की है। अज्ञेय ने अच्छी संख्या में छोटी कविताएं लिखीं, भाव एवं भाषा की कसावट ऐसी कविताओं में

देखने को मिलती है। जापानी कविता लिखने की पद्धति 'हाइकू' से भी वे प्रभावित रहे थे उन्होंने छोटी-छोटी 'हाइकू प्रभावित' कविताएं लिखीं। अज्ञेय की कविताओं में आई लय पाठक से जुड़ने का कार्य करती है। एक संगत की शैली में कवि कई बार अपनी कविताओं में प्रस्तुत होते हैं इसको और भी सरल बनाने के लिए अज्ञेय ने कहीं कोष्ठक प्रयोग किए हैं, कहीं वाक्यों की आवृत्ति की है, कहीं प्रश्नवाचक मुद्रा में सवाल किए हैं, कहीं 'अरे' यह कहकर बात शुरू की है। कवि की संवेदना के स्तर कई जगह पर आकर बातचीत जैसे लगते हैं। यह नियमों से अलग हटकर भी कविता को कविता बनाए रखने का भिन्न तरीका है जहां संप्रेषण भी बाधक नहीं होता है और प्रयोग भी नए ढंग से हो जाता है। उदाहरण प्रस्तुत है–

हां, पर मानव तुम हो किसके लिए?

मूल्यांकन

समग्र मूल्यांकन करने पर ज्ञात होता है कि अज्ञेय का काव्य हिंदी काव्य जगत में अपना विशिष्ट स्थान रखता है जहां अभिव्यक्ति के लिए निरंतर खोज चलती रहती है और नवीन प्रयोग कविता को देश-काल की परिधि से आगे निकाल ले जाते हैं जहां पाठकों का नवीन आकर्षण उनके काव्य के प्रति बना रहता है वहीं लीक से हटकर वे भाषा के ठोस माध्यम द्वारा सशक्त काव्य सर्जक बन जाते हैं।

7.6 पाठांश

7.6.1 नदी के द्वीप

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियां, अंतरीप, उभार, सैकत-कूल
सब गोलाइयां उसकी गढ़ी हैं!
मां है वह। है, इसी से हम बने हैं।
किंतु हम हैं द्वीप! हम धारा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।
किंतु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे! प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे। बह जाएंगे।

प्रसंग : प्रस्तुत कविता 'नदी के द्वीप' शीर्षक से अवतरित है जो कवि के काव्य-संग्रह 'हरी घास पर क्षण भर' में निहित है। इसके रचनाकार अज्ञेय हैं। इस कविता में कवि ने अपने व्यक्तित्व के लिए द्वीप की संज्ञा दी है। वे आगे कहते हैं–

व्याख्या : हम नदी के द्वीप की तरह हैं जिस प्रकार द्वीप का निर्माण नदी की धारा के आधार पर बनता है उसी प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण भी नदी रूपी धारा के आधार पर निर्भर है। वे कहते हैं कि मैं यह बात नहीं कहता हूं कि समाजरूपी नदी व्यक्ति रूपी द्वीप को छोड़कर अलग बहने लगे, बल्कि द्वीप का तो अस्तित्व ही समाज रूपी नदी की धारा के कारण है क्योंकि समाज रूपी नदी ही व्यक्तित्व रूपी द्वीप का निर्माण करती है। जिस प्रकार नदी की धारा का प्रवाह कहीं किनारे रचता है, कहीं गली, कहीं अंतरीप, कहीं उभार, कहीं बालू का किनारा और कहीं गोलाइयों का निर्माण करता है, नदी के बहाव व मिट्टी के कटने, रुकने से ये सभी स्थितियां बनती हैं उसी प्रकार मानव व्यक्तित्व के विविध प्रकार भी समाज के संस्कार के उपरांत निर्मित होते हैं। इस रूप में कवि यह मानता है कि नदी द्वीप व द्वीप वासियों की मां है यदि नदी अपने सहज प्रवाह में कोई प्रतिक्रिया नहीं रचती तब द्वीप का भी निर्माण नहीं हो सकता था।

अगली पंक्ति में कवि कहते हैं कि व्यक्तित्व का अस्तित्व द्वीप की तरह है जिस तरह से द्वीप स्थिर है उसी प्रकार व्यक्तित्व भी अपने आप में स्थिर है, वह धारा की तरह प्रवाहमान नहीं है। जिस तरह नदी के प्रति द्वीप अपना स्थिर समर्पण प्रदान करता है उसी प्रकार समाज के प्रति हमारा भी समर्पित भाव है किंतु व्यक्तित्व रूप में हम बहेंगे नहीं, विचलित नहीं रहेंगे, डगमगाएंगे नहीं क्योंकि जो बह जाते हैं, जो व्यक्तित्व डगमगा कर अस्थिर हो जाते हैं उनका अस्तित्व उस रेत की तरह होता है जो पानी से मिलकर गायब हो जाती है, घुलमिल जाती है। कवि यह मानते हैं कि यदि हम बहेंगे तो हमारा कोई वजूद नहीं रहेगा। ऐसी अस्थिर स्थिति में पैर उखड़ने पर बाढ़ की स्थिति भी आ सकती है, जिसमें गिरने के बाद सहना होगा तदोपरांत ही व्यक्तित्व पूरा ढह ही जाएगा।

अतएव कवि व्यक्तित्व व समाज के अस्तित्व को बनाते हुए व्यक्तित्व को समाज से जुड़ा हुआ, समाज के लिए कर्तव्यरत बताते हैं।

विशेष

1. कविता में 'द्वीप' व्यक्ति के व्यक्तित्व व अस्तित्व का द्योतन करता है तथा 'स्रोतस्विनी' शब्द समाज के लिए आया है।
2. समाज की महत्ता को कवि ने यहां स्वीकार किया है व उसे 'मां' तक माना है।
3. अज्ञेय के 'अहं भाव' के विलय होने की स्थिति यहां पर है।
4. भाव कविता से अधिक यह विचार कविता है।

और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी क्या धार बन सकते?
रेत बनकर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे।
अनुपयोगी ही बनाएंगे।

द्वीप हैं हम। यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है।
हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी की क्रोड़ में।
वह बृहद् भूखंड से हमको मिलाती है।
और वह भूखंड अपना पितर है।

प्रसंग : प्रस्तुत कविता 'नदी के द्वीप' शीर्षक से अवतरित है जो कवि के काव्य-संग्रह 'हरी घास पर क्षण भर' में निहित हैं। इसके रचनाकार अज्ञेय हैं। समाज के प्रति व्यक्तित्व के अस्तित्व की चर्चा करते हुए कवि कहते हैं-

व्याख्या : अज्ञेय कहते हैं कि रेत बन जाने पर अपने अस्तित्व को चूर-चूर कर लेने के उपरांत क्या पुनः सामाजिक धारा में शामिल भी हुआ जा सकता है? अर्थात नहीं। कवि मानता है कि रेत बनने के बाद अपने व्यक्तित्व को बिखेर देने के पश्चात तो हम समाज रूपी नदी के जल को संक्रमित व दूषित करने का ही प्रयास करेंगे क्योंकि व्यक्तित्व का बिखराव और क्या दे सकता है? इस रूप में समाज के लिए हमारा अस्तित्व कोई काम का नहीं रह जाएगा।

अगली पंक्ति में कविता के क्रम को आगे बढ़ाते हुए कवि कहता है कि हम द्वीप ही अच्छे हैं। हमें स्थिर व्यक्तित्व ही बनाना चाहिए। यह कोई बुरा आशीर्वाद तो नहीं है। यह तो भाग्य की बात है। हम तो समाज रूपी नदी की संतानें हैं और उसकी गोद में बैठे हुए हैं। नदी की संस्कृति अर्थात सामाजिक संस्कार का प्रभाव हम पर पड़ेगा तब हमें संस्कृति की अन्य बड़ी-बड़ी स्थितियों अर्थात बड़े भूखंडों से भी यह सामाजिक धरा मिला सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृति से जुडकर वृहत समाज की संस्कृति से जुड़ने का परिचय भी नदी की धारा रूपी संस्कृति के प्रयास से संभव होगा। संस्कृति से संस्कार बनेगा और संस्कार के कारण ही हम पवित्र-पितरों से मिल सकेंगे। अर्थात पितर कहने से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अतीत काल की वृहत संस्कृतियों की धरोहरों को भी पा सकता है।

विशेष

1. कवि ने द्वीप की जिम्मेदारी का आभास कराया है।
2. कवि संस्कार के माध्यम से मानव जाति की वृहत संस्कृतियों से परिचित होने का भी इच्छुक है।
3. कविता शब्दार्थ से अधिक प्रतीकार्थ द्वारा स्पष्ट होती है।
4. भारतीय संस्कृति के प्रति कवि ने सम्मान का भाव रखा है।

नदी तुम बहती चलो।
भूखंड से जो दान हमको मिला है, मिलता रहा है।
मांजती, संस्कार देती चलो। यदि ऐसा कभी हो-
तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के
किसी स्वैराचार से, अतिचार से,
तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे-
यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर काल
प्रवाहिनी बन जाय-

तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर
फिर छनेंगे हम। जमेंगे हम। कहीं फिर पैर टेकेंगे।

कहाँ फिर से खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार।
मातः, उसे फिर संस्कार तुम देना।

प्रसंग : प्रस्तुत कविता 'नदी के द्वीप' शीर्षक से अवतरित है जो कवि के काव्य-संग्रह 'हरी घास पर क्षण भर' में निहित हैं। इसके रचनाकार अज्ञेय हैं। नदी रूपी समाज के प्रति कवि का समर्पित भाव यहां पर चित्रित होता है।

व्याख्या : अज्ञेय विचारपूर्वक कहते हैं कि नदी तुम बहती चलो अर्थात समाज निरंतर कर्तव्यशील रहे और समाज की बढ़ोतरी से जो संस्कार व्यक्ति को प्राप्त हो वह उसे ग्रहण करता चले। उचित अनुचित का विवेक व्यक्ति को समाज के द्वारा ही प्राप्त हो। समाज रूपी नदी ही उसे संस्कारित करे। कवि यह भी संदेह प्रकट करता है कि यदि कभी भविष्य में सामाजिक खुशहाली की स्थिति में अथवा किसी अपने ही व्यक्ति के गलत व्यवहार की स्थिति में अथवा किसी प्रकार के अत्याचार की स्थिति में तुम्हारी प्रगति में बाधक स्थितियां उत्पन्न हों अर्थात यदि भारतीय संस्कृति की ओर कोई भी टेढ़ी नजर से देखे तब भी तुम रुकना नहीं। तुम्हारा प्रवाह तब घोर काल के प्रवाह को लाने वाला बन जाए। तब तुम अपनी संस्कृति की ऊर्जा को साथ लेकर अपने कर्मों व कीर्ति की परवाह करे बगैर ऐसे कुचक्रों के प्रति साक्षात काल का प्रवाह बन जाना। अर्थात अज्ञेय यह कहना चाहते हैं कि व्यक्तित्व संस्कारवान हो एवं संस्कार देने वाली सामाजिक नदी पर यदि कभी आंच आए तो विरोधी तत्वों का समूल नाश तक हो जाना चाहिए।

अपनी अगली पंक्तियों में कवि कहते हैं कि ऐसी संकट की स्थिति में हमें रेत होना भी मंजूर है क्योंकि समाज के लिए उसकी संस्कृति को बचाने में यदि हमारे व्यक्तित्व का विलय भी हो जाता है तब रेत की ही भांति हम फिर छनेंगे। पुनः संस्कारित होंगे, फिर जमेंगे। इससे हमारे भीतर एक नवीन व्यक्तित्व का ही निर्माण होगा। इस प्रकार संस्कृति रूपी मां! तुम पुनः उसे आकार प्रदान करना।

विशेष

1. संस्कृति की रक्षा हेतु व्यक्तित्व का विलय कवि अज्ञेय को इस कविता में मंजूर है।
2. कविता का स्वर आत्मविश्वासी है।
3. संघर्ष के बावजूद कवि आस्थावान बने रहना चाहता है।

7.6.2 नदी के द्वीप : प्रतिपाद्य

कविता का विषय

'नदी के द्वीप' कविता कवि के काव्य- संग्रह 'हरी घास पर क्षण भर' से ली गई है। यह एक लघु कविता की श्रेणी में आने वाली कविता है। इसमें कवि ने प्रतीकात्मक शब्दों द्वारा अपनी बात रखी हैं। द्वीप, नदी, धरा, भूखंड, रेत, पितर जैसे शब्द कविता में प्रतीकात्मक रूप में आए हैं, जिनका संदर्भ से जुड़ा अर्थ ग्रहण करने पर कविता का भाव ही बदल जाता है और कविता नवीन विषय को लेकर प्रस्तुत होती है।

कविता की विषयवस्तु पर चर्चा करते समय उन सभी बिंदुओं को उठाना आवश्यक होगा जिनसे कविता के कथन को बल मिला है। अज्ञेय इस कविता में नदी एवं द्वीप का मुख्य तौर पर वर्णन करते हैं। वह स्वयं मानने लगे हैं कि उनका अर्थात व्यक्ति का अस्तित्व एक द्वीप की तरह होता है। वह स्वीकार करते हैं कि समाज रूपी धरा से वह अलग नहीं हैं क्योंकि जिस प्रकार धरा ही द्वीप के निर्माण में सहायक है उसी प्रकार समाज के मध्य में रहकर ही व्यक्तित्व का निर्माण हो सकता है। समाज रूपी धरा ही व्यक्तित्व का कई कोणों से निर्माण करने में सहायक रहती है। इस रूप में वे समाज को मां का दर्जा देते हुए दिखते हैं क्योंकि मां जिस प्रकार बच्चे को संस्कार देती है उसी प्रकार एक अच्छे समाज के आदर्श भी व्यक्तित्व को बनाते हैं।

कवि पुनः अपनी कविता में इस बात पर जोर देते हैं कि हम द्वीप ही हैं, हम धरा नहीं हैं, जिस प्रकार द्वीप स्थित रहता है, नदी के साथ बहता नहीं है उसी प्रकार वह भी अपने व्यक्तित्व के अस्तित्व को जरूरी मानते हैं। वह व्यक्तित्व तभी कायम रहता है जब उसमें समाजरूपी धरा के प्रति समर्पित भाव उसमें रहता है।

इस कविता में कवि जिस प्रकार एक अच्छे समाज से कुछ सीखने की बात करता है उसी प्रकार वह एक अच्छे संयत व्यक्तित्व के संरक्षण की भी चिंता करता है क्योंकि यदि व्यक्ति का व्यक्तित्व ही खराब होगा, यदि वह बिखराव के साथ होगा तो वह समाज को गंदा करने का ही काम करेगा। इस कारण व्यक्तित्व ऐसा हो जो समाज के लिए उपयोगी हो।

कवि ने कई तरह से इस छोटी कविता में अपनी बात समझानी चाही है। वह आगे कहते हैं कि 'हम नदी के पुत्र हैं।' एक वृहद भूखंड से हमें मिलना है। 'वृहद भूखंड' से कवि का तात्पर्य वृहद संस्कृतियों के ज्ञान से है। अतएव कवि कहना चाहते हैं कि उनका उद्देश्य दूसरी संस्कृति से ज्ञानार्जन करना भी है क्योंकि इसी से मानव के भीतर संस्कारों के बीज पड़ते हैं। अतः जैसे पिता अथवा पूर्वज पितर अपने पुत्र को संस्कारित करने का प्रयास करते हैं उसी प्रकार वृहद भूखंड भी पितर की तरह हैं जो अपने बड़े व्यक्तित्व की छाप अपने बच्चों पर भी छोड़ता है। विविध संस्कृतियां भी अपनी संतानों को सुसंस्कारित करने का प्रयास ही करती हैं। वह नदी रूपी समाज की गतिशील स्थिति से यह अपेक्षा करते हैं कि वह उसे भूखंड रूपी अन्य संस्कृतियों से भी परिचित कराए।

कवि संस्कार एवं संस्कृति को तोड़ने वाली ताकतों के प्रति भी अपने विचार प्रकट करते हैं। वह समाज की धरा को चेतन एवं गतिशील बनाने की भी प्रेरणा देते हैं। यदि बाहरी विषम परिस्थितियां संस्कृति व संस्कारों में कुठाराघात करने की स्थिति में हों तब व्यक्ति को समाज के साथ रहकर कर्तव्यनिष्ठ व गतिशील दिखाई देना चाहिए।

कवि अपने व्यक्तित्व को समाज के प्रति समर्पित मानता है। वह उसे माता कहकर पुनः संबोधित करता है। यह कविता इसी विषय के साथ संग्रह में निहित है।

कवि का उद्देश्य

कवि अपनी इस कविता में सबसे पहले अपने ही व्यक्तित्व के बदलाव के साथ प्रस्तुत होता है क्योंकि इससे पहले वह व्यक्तित्व के अहंवाद को लेकर भी अपने पिछले काव्य

कविताओं में प्रस्तुत हुआ दिखाई देता है। 'चिंता' नामक काव्य संग्रह में कवि ने अपने ही भावों के लिए एकांत खोजने का प्रयास किया था। 'सागर मुद्रा' नामक कविता में कवि यह कहते हुए मिलता है- 'मुझको और मुझको और मुझको कहीं मुझसे जोड़ दो।'

वहीं कवि बार-बार समाज से जुड़ने की कोशिश में लगा है। कहीं वह उसे माता के रूप में जन्मदात्री मानता है, कहीं वह समाज को 'पितर' कहता है जिससे संस्कार मिलते हैं। द्वीप के समान व्यक्तित्व की स्थिरता को वह स्वीकार करता है। नियतिवाद पर वह भरोसा करता है मगर धरा के प्रति वह तभी समर्पित रहना चाहता है जब वह व्यक्तित्व को अच्छे गुणों के साथ संरक्षित भी रख सके। वह व्यक्ति के अस्तित्व के प्रति भी चिंतायुक्त दिखाई देता है।

मूल्यांकन

इस कविता के अध्ययन के उपरांत यह बात साफ होती है कि अज्ञेय ने अपने अहंवाद को समाज की धारा में तिरोहित होने दिया है। कवि आत्मान्वेषी अवश्य है मगर समाज के अच्छेपन से अलग वह भी नहीं रह पाया है। समाज की महत्ता, व्यक्तित्व की महता, संस्कारों की बात उठाकर कवि ने कविता को अलग दर्जा प्रदान किया है जहां से अज्ञेय का व्यक्तित्व आदर्शवादी होने के साथ साथ व्यावहारिक अवश्य दिखाई देता है।

गतिविधि

अज्ञेय की संपूर्ण काव्य कृतियों की कालक्रमानुसार एक सूची तैयार कीजिए तथा उसकी एक स्क्रेप बुक बनाइए।

क्या आप जानते हैं?

अज्ञेय ने भारतेंदु हरिश्चंद्र के बाद हिंदी साहित्य में दूसरे आधुनिक युग का प्रवर्तन किया।

7.7 सारांश

अज्ञेय की कविता में उनके जीवन एवं अंतर्मन की सोच की पारदर्शिता भली प्रकार दिखाई देती है। उनका काव्य उनके अनुभव की ईमानदारी का काव्य है जहां व्यक्ति, समाज, अहं, प्रकृति, परिवेश, देश-विदेश, जीवन, रहस्य, प्रेम इत्यादि को बारीकी से देखा गया है। दूसरी ओर भाषा के प्रयोग नवीन भाव-बोध जगाने का कार्य करते हैं। कविता को गंभीर कार्य समझा गया है और उसके प्रति आजीवन समर्पित भाव रखा है। यही वजह है कि उनका प्रत्येक काव्य-संग्रह अलग-अलग भावों को उकेरकर रख देता है। इनका 'आंगन के पार द्वार' काव्य-संग्रह कवि के उस पार की बात करता है। इसे साहित्य अकादमी द्वारा भी पुरस्कार प्राप्त है।

हिंदी के अध्येताओं के लिए अज्ञेय को पढ़ने का मतलब यही है कि 'स्व' से बा लोक तक की यात्रा, अहं के विगलन की स्थितियां, आत्मान्वेषण से रहस्यानुभूति तक जा यह पाठ्यक्रम अज्ञेय के जीवन एवं साहित्य से प्रेरणा देता है एवं जागरुकता के सिरों खोलने का प्रयास करता है। एक ग्लोबलाइज दुनिया का हाल आज के समय से कई वर्षों पू उनकी कविता में दिखाई देता है। वहीं दूसरी ओर ग्रामीण सहज वातावरण के अनेकशः बिंब व प्रतीक आकर कविता को नवीन आकार-प्रकार से भर डालते हैं। ऐसी स्थिति में परंपरा का विरोध भी नहीं रहता और नवीनता कायम हो जाती है। अज्ञेय काव्य में इन्हीं का समग्र अध्ययन यहां पर प्रस्तुत किया गया है। अज्ञेय की ही एक लघु-कविता अज्ञेय-काव्य के उद्देश्य को अग्रलिखित प्रकार से रख जाती है,

'भोर!

तुम!

आओ।

जीवन है।

आशी!'

अज्ञेय का व्यक्तित्व प्रेरणीय है। उनका साहित्य नए साहित्यकारों के लिए मील का पत्थर है। उनके साहित्यिक जीवन के पीछे गहन चिंतन है। वे कई भारतीय भाषाओं के ज्ञानी थे और सभी भाषा के साहित्य का उन्होंने अनुशीलन किया। उनकी बुनियादें साहित्य के स्तर पर काफी गहन रही है जिस कारण वे बेबाक रूप से ऊंचाई तक पहुंच सके। साहित्य समाज आज उनका नाम आदर के साथ लेता है।

7.8 मुख्य शब्दावली

- **उन्मोचन** : कष्ट से छुड़ाना
- **नश्वरता** : नष्ट होने वाली
- **बावरा** : पागल
- **अहेरी** : शिकारी
- **कनियां** : कण
- **खची** : बनाया गया
- **तन्वी** : सुकुमार स्त्री
- **अवध्य** : जिसका वध न किया जा सके
- **अशमित** : जो नष्ट न हो सके
- **द्वीप** : व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रतीक/ठहराव
- **क्रोड़** : गोद
- **पितर** : पूर्वज (जहां से संस्कार आते हैं)

- **मांजना** : शोधित करना/शुद्ध करना
- **अतिचार** : बुरा व्यवहार
- **कर्मनाशा** : शाहाबाद जिले की एक नदी, जिसके जल स्पर्श से समस्त पुण्यों का नाश होना माना जाता है
- **स्पंदित** : कंपायमान
- **अनचीह्ना** : जो पहचाना न हो अथवा अनजान, अपरिचित
- **निर्वाक्** : मौन
- **पुरें** : पूर्ण हों
- **चमरौंधे** : चमड़े के जूते

7.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. सन् 1943 में।
2. 7 मार्च सन् 1911 को।
3. सन् 1936 में।
4. भग्नदूत।
5. 'आंगन के पार द्वार' काव्य संग्रह में।
6. 1918 से 1936 ई. तक।
7. 'प्रतिवाद' के नाम से।
8. 'प्रतीक' पत्रिका में।
9. 'प्रभाकर माचवे की।
10. सन् 1959 में।
11. 'नई कविता' को।
12. भवानी प्रसाद मिश्र की।
13. सन् 1933 में 'भग्नदूत' के द्वार।
14. शिल्प पक्ष की सार्थकता पर।
15. आधुनिक मानव की स्वाधीनता और सर्जनात्मकता।
16. कल्पना को।
17. चौथे दशक का।
18. सन् 1977 में।
19. नैसर्गिक रूप में।
20. 'आंगन के पार द्वार' – काव्य संग्रह की कविताओं से।

21. प्रतीक।

22. शब्द-चित्र।

23. उपमा अलंकार का।

24. 'हाइकु' से।

7.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. अज्ञेय की साहित्यिक अभिरुचियों के विकास को बताइए।
2. सामाजिक जीवन के बाह्य रूपों में बावरा अहेरी का प्रभाव किस तरह है?
3. अज्ञेय के यहां आत्म विसर्जन से आप क्या समझते हैं?
4. अज्ञेय की काव्य रचनाओं में प्रयोगधर्मिता स्पष्ट कीजिए।
5. नई कविता की काव्य भाषा पर टिप्पणी लिखिए।
6. अज्ञेय के व्यक्तित्व से जुड़े 'स्व' शब्द की व्याख्या कीजिए।
7. अज्ञेय के काव्य में आए मानवतावादी सरोकारों को स्पष्ट कीजिए।
8. प्रतीकों का उल्लेख करते हुए अज्ञेय के समाज-बोध को समझाइए।
9. कवि के काव्य में विद्यमान 'आस्था एवं जिजीविषा' से आप क्या समझते हैं?
10. क्षणवाद पर लगभग पांच-छः पंक्तियों में प्रकाश डालिए।
11. अज्ञेय के काव्य में मिथक-योजना बताइए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. प्रयोगवाद में अज्ञेय की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
2. प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों को विस्तार से बताइए।
3. नई कविता एवं प्रयोगवाद के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
4. 'तारसप्तक' में अज्ञेय ने स्वयं व अन्य साथी कवियों के लिए भी स्वतंत्रता रखी- इस कथन के पक्ष-विपक्ष में अपने विचार व्यक्त कीजिए।
5. 'नदी के द्वीप' कविता का प्रतीकात्मक अर्थ स्पष्ट करते हुए इसका प्रतिपाद्य बताएं
6. अज्ञेय के काव्य वैशिष्ट्य का विश्लेषण कीजिए।
7. सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

(क) हम नदी के द्वीप.....
वह हमें आकार देती है।

(ख) किंतु हम है द्वीप.....
क्योंकि बहना रेत होना है।

7.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, *अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या।*
2. सं. अज्ञेय-तारसप्तक, *अज्ञेय का काव्य*, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर।
3. डॉ. राजेंद्र प्रसाद, *तारसप्तक के कवियों की सामाजिक चेतना*
4. डॉ. शशि शर्मा, *समकालीन हिंदी कविता : अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में*
5. चंद्रकांत बांदिवडेकर, *अज्ञेय की कविता : एक मूल्यांकन*
6. शैल सिन्हा, *प्रयोगवाद और अज्ञेय।*
7. डॉ. गंगा प्रसाद विमल, *अज्ञेय का रचना संसार।*
8. डॉ. राजेंद्र प्रसाद, *तारसप्तक के कवियों की सामाजिक चेतना।*
9. डॉ. कृष्ण भावुक, *अज्ञेय की काव्य चेतना*, अशोक प्रकाशन दिल्ली, 1975
10. राजेंद्र प्रसाद : *अज्ञेय; कवि और काव्य*, तक्षशिला प्रकाशन दिल्ली, 1978

इकाई 5 मुक्तिबोध

5.0 परिचय

किसी भी कवि के जीवन-अनुभवों का प्रभाव उसके काव्य पर छाप छोड़ता है। कवि व्यक्तित्व के अंतर्गत उसके द्वारा की जा रही कल्पना, मौलिक चिंतन, आत्मा की अभिव्यक्ति, अनुभूति की पारदर्शिता एवं विचार तत्व आदि शामिल रहते हैं जिनके द्वारा कवि व्यक्तित्व के आयाम बनते हैं। कवि की जागरूकता, संवेदनशीलता, ग्रहणशीलता एवं कलम के माध्यम से कुछ अलग, कुछ नया, कुछ सामाजिकता से जुड़ा व कुछ विचार व कल्पना से जुड़ा अनुभूत शब्द-चित्रों के माध्यम से प्रकट करना एक सामान्य क्रिया है परंतु सोद्देश्य की जाने वाली यह उक्त क्रिया जब समाज में असर छोड़ती हुई आगे बढ़ती है तब कवि स्वयं अपना न होकर समाज का हो जाता है। उसकी अनुभूति व अभिव्यक्ति का संसार उसका अपना न होकर सबका हो जाता है, सहृदय पाठक का हो जाता है और काल की सीमा को लांघ जाता है। तब यह समन्वित रूप कवि के व्यक्तित्व को खास बना देता है जहां से उसे रचना की प्रेरणा प्राप्त होती है। इसी प्रक्रिया के तहत मुक्तिबोध जैसे लेखक-कवि के जीवन से जुड़े पहलुओं को जानने की भी जिज्ञासा पाठक में होती है क्योंकि मुक्तिबोध जटिल संवेदनाओं के कवि रहे हैं अतएव इनके लेखन समय से पूर्व की जानकारी प्रस्तुत इकाई में विस्तृत रूप से दी जा रही है।

8.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- मुक्तिबोध के जीवन के विविध पक्षों व रचना प्रक्रिया से परिचित हो पाएंगे;
- लंबी कविता की कसौटी पर 'अंधेरे में' कविता का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- मुक्तिबोध के काव्य में फैंटेसी की प्रासंगिकता का अध्ययन कर पाएंगे;
- मुक्तिबोध के काव्य में आधुनिक भारत के यथार्थ से अवगत हो पाएंगे;
- मुक्तिबोध के काव्य की सामाजिक चेतना का बोध कर पाएंगे।

8.2 मुक्तिबोध का जीवन एवं रचना प्रक्रिया

मुक्तिबोध के जीवन तथा उनके रचना संसार में उनके आगमन का विस्तारपूर्वक अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

8.2.1 मुक्तिबोध : जीवन परिचय

मुक्तिबोध का पूरा नाम गजानन माधव मुक्तिबोध है। उनका जन्म 13 नवंबर सन् 1917 को (श्योपुर) मध्य प्रदेश में हुआ था। मुक्तिबोध के पिता का नाम श्री माधवराम मुक्तिबोध था। वे पुलिस विभाग में अधिकारी थे। वे एक ईमानदार एवं कर्मठ व्यक्ति थे। किसी भी व्यक्ति के साथ अनाचार-अत्याचार वह देख नहीं पाते थे। ये चार भाई हैं। इनसे छोटे शरतचंद्र, मराठी के कवि रहे हैं। अपने अधिकारी पिता के संरक्षण में मुक्तिबोध बड़े लाड़-प्यार से रहे। घर पर कई सेवादार थे जो मुक्तिबोध की हर जिद को पूरा करते व उनकी खुशामद में लगे रहते। बचपन से ही परिवार में उन्हें खास दर्जा दिया जाता था। मुक्तिबोध ने मैट्रिक व इंटर की परीक्षा उज्जैन के माधव कॉलेजियेट हाईस्कूल से पास की। सन् 1938 में होल्कर कॉलेज इंदौर से ग्रेजुएट की परीक्षा पास की एवं काफी समय बाद सन् 1948 में एम.ए. किया। मुक्तिबोध पुस्तक प्रेमी व्यक्ति थे। विभिन्न देशी - विदेशी विचारकों की पुस्तकों का उन्होंने अध्ययन किया। गोर्की एवं दास्तावयस्की के विचारों से वे प्रभावित भी हुए। तर्कशास्त्र एवं दर्शन शास्त्र उनके प्रिय पाठ्य-विषय रहे। उज्जैन के मॉडर्न स्कूल में ये बतौर अध्यापक रहे। देश-देशांतर के राजनीतिक - सामाजिक माहौल एवं विचारकों के प्रति जिज्ञासा मुक्तिबोध के वक्तव्यों में जब तब प्रकट हुआ करती थी। रूसी साहित्य, गांधी साहित्य, रविंद्रनाथ को ये खूब पढ़ा करते थे। अतएव युवा काल में ही इन्होंने विविध सिद्धांतों के विचारों का अध्ययन करके स्वयं के व्यक्तित्व को काफी मजबूत बना लिया था और सन् 1942 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की। सन् 1945 में मासिक पत्रिका 'हंस' में काम किया। सन् 1946-47 में जबलपुर से 'दैनिक जय हिंद' का भी संपादन किया। इस प्रकार मुक्तिबोध एक स्थान पर टिके नहीं रहे। एम.ए. करने के बाद वे कॉलेज में प्राध्यापक नियुक्त हुए।

मुक्तिबोध ने जीवन व समाज को करीब से देखा। देखे को अनदेखा करना उनकी नीयत में नहीं था। वे सवालों एवं संघर्षों से जानबूझकर जूझने का प्रयास करते। उनका

व्यक्तित्व उन्हें एकदम तटस्थ रहने से बचाए रखता। पारिवारिक संस्कारों से बहादुरी एवं आत्मप्रियता प्राप्त करने वाले मुक्तिबोध ज्ञान एवं चिंतन से विश्वासपूर्ण व्यक्तित्व बन चुके थे। सुविधापरस्त जीवन से संघर्षरत जीवन सब उन्होंने जिया। स्वभाव से सरल किंतु दोगले व्यक्तियों के प्रति शंकालु थे। उनसे दूरी रखना उन्हें मान्य था। स्वतंत्र विचार के मुक्तिबोध तात्कालीन राजनीति के प्रति भी शंकालु थे। सरकार की कई-नीतियां उन्हें पसंद नहीं थी। साहित्यकारों के जमावड़े में चिंतन बहस करने की उन्हें आदत थी। वे बौद्धिक साहित्यकार थे। 12 सितंबर 1964 को उनका देहांत हो गया।

8.2.2 मुक्तिबोध : रचना संसार

मुक्तिबोध को आज का आम पाठक 'तारसप्तक' के प्रकाशन से जानता है। 'तारसप्तक' सन् 1943 में आया। इससे तात्पर्य है कि मुक्तिबोध 'तारसप्तक' के आगमन से पूर्व ही रचना कर्म में लगे थे। 'तारसप्तक' और मुक्तिबोध की कविताएं बौद्धिकता का समर्थन करती हैं। मुक्तिबोध का काव्य-क्षेत्र भाव एवं विचारों का समन्वित रूप था यह अलग बात थी कि उनकी अधिकांश कविताएं दुरूहता से भरी थीं। जीवन की सच्चाइयों के विविध परिदृश्य उनकी कविताओं में आते रहे हैं। उन्होंने सच्चाई की कठोरता का विषपान किया जिस कारण उनका काव्य जटिल बन गया। 'तारसप्तक' की भूमिका में उनका वक्तव्य प्रस्तुत है, "यहां यह स्वीकार करने में मुझे संकोच नहीं है कि मेरी हर विकास स्थिति में मुझे घोर असंतोष रहा, और है। मानसिक द्वंद्व मेरे मस्तिष्क में बद्धमूल है। यह मैं निकटता से अनुभव करता आ रहा हूं कि जिस भी क्षेत्र में मैं हूं वह स्वयं अपूर्ण है, और उसका ठीक-ठीक प्रकटीकरण भी नहीं हो रहा है। फलतः गुप्त अशांति मन के अंदर घर किए रहती है।" मुक्तिबोध अपने समय की कविता की कमजोरियों से बेचैन थे, एक आस्थावादी कवि की यह मनःस्थिति स्वाभाविक ही थी, अतः स्पष्ट होता है कि 'तारसप्तक' के कवि कविता की पूर्णता के लिए कितने बेचैन थे। मुक्तिबोध अपने समकालीन लेखकों से एकदम अलग प्रकृति के व्यक्ति थे। कुछ आलोचकों ने उन्हें मार्क्सवादी कहना शुरू कर दिया था। उनका मार्क्सवाद दीन-दुखियों के दुख से प्रेरित था। उनका स्वयं का मानना था, 'क्रमशः मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ। अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण मुझे प्राप्त हुआ।' मुक्तिबोध ने स्वयं भी विपन्नता को झेला इस कारण उनका मार्क्सवाद किसी आदर्श की उपस्थिति न कराकर उनकी जीवन-चेतना से जुड़ा व्यावहारिक तौर पर जन्मा हुआ मार्क्सवाद था। कवि के साथ-साथ उनके विचारों ने उन्हें एक आलोचक व्यक्तित्व भी प्रदान किया था। मुक्तिबोध का काफी साहित्य अप्रकाशित ही रह गया। प्रकाशित रूप में कवि की केवल एक काव्य कृति 'चांद का मुंह टेढ़ा है' प्राप्त होती है। इनका संपूर्ण काव्य 'मुक्तिबोध रचनावली' के 6 खंडों में 1980 में प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व 'तारसप्तक' में कवि की कविताएं प्रकाशित हुई थीं, 'चांद का मुंह टेढ़ा है' में 28 कविताएं हैं। 1964 में यह भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन से प्रकाशित हुई। इसमें अधिकांश लंबी कविताएं हैं। इन कविताओं के विषय में श्रीकांत वर्मा का कथन इस प्रकार है–"जिंदगी के एक-एक स्नायु के तनाव को एक बार जीवन में और दूसरी बार अपनी कविताओं में जीकर मुक्तिबोध ने अपनी स्मृति के लिए सैकड़ों कविताएं छोड़ी हैं, किंतु इस संकलन की कविताएं उनका जीवन वृत्तांत हैं।" मुक्तिबोध की रचना-प्रक्रिया उनके भीतर की दुनिया के चित्रों को दर्शाती है जिसमें भीतर का परिदृश्य

है। यह एक अलग बात है कि प्राय: कवि की संवेदनाओं का बाह्य संसार उसके आंतरिक जगत से होकर पुन: बाहर निकलता है किंतु मुक्तिबोध की फैंटेसी से जुड़ी व लंबी कविताओं को देखकर ऐसा लगता है कि पाठक संवेदनाओं की भीतरी सुरंगों में चक्कर लगाता है जहां अजीब तरह के परिदृश्य मौजूद हैं जो एक विशेष प्रकार का वातावरण तैयार करते हैं। ऐसा वातावरण कवि को अन्य कवियों से भिन्न अधिक संवेदनशील व बौद्धिक बनाता है। मुक्तिबोध के काव्य की गहनता कुछ अलग है। जहां भीतरी चोट, घाव तक महसूस किए जा सकते हैं। उनकी रचनाएं आज भी हिंदी जगत में अलग महत्व रखती हैं जिनके द्वारा पाठक वर्ग अलग अनुभूतियां ग्रहण करता है, प्रतीकों, बिंबों के सहारे कवि ने अपनी बात रखी है यदि इनके प्रतीक समझ में आ जाएं तो पाठक कविता व कवि को समझने का प्रयास करता है व इंगित अर्थ के नजदीक पहुंचता है, दूसरी तरफ कवि का संवेदनशील रूप है। जहां वह कुछ इस तरह आस्था बनाए बैठे हैं–

'समस्या एक – / मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में / सभी मानव / सुखी, सुंदर व शोषण मुक्त / कब होंगे?/

मुक्तिबोध में प्रगतिवाद का प्रभाव है, प्रयोगशील प्रवृत्तियां हैं। यदि मुक्तिबोध की कविता को इन दोनों की प्रभावित दृष्टि कहा जाए तो उचित ही होगा।

मुक्तिबोध की कविताओं में बाहर-भीतर का बड़ा अंतर है जो वैविध्य एवं विरोधपूर्ण है। एक अन्य कविता द्वारा यह अंतर समझा जा सकेगा, 'भीतर जो शून्य है। उसका एक जबड़ा है। जबड़े में सांस काट खाने के दांत हैं। उनको खा जाएंगे। तुमको खा जाएंगे।

मूल्यांकन

समग्रत: मुक्तिबोध जागरूक चेतना के कवि हैं। इस रूप में वे प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। मुक्तिबोध के काव्य की यह देन है कि उन्होंने अपना रास्ता अलग बनाया, पुराने रास्ते में न चलने की उनकी जिद ने उन्हें जिस जगह पर प्रतिष्ठित किया वहां से बाहर देखकर भी उस जैसा विचार काव्य में प्राप्त होना मुश्किल है। वे अपनी कल्पनाओं को एक फैंटेसी के रूप में आकार देते चले गए, जहां बाह्य-जगत से अनजान वातावरण के चित्र उभरते चले गए। मुक्तिबोध की कविताओं में एक संघर्ष है, अपने आप से, रूढ़ियों से। मुक्तिबोध ने जितना भी काव्य रचा वह हिंदी काव्य जगत के लिए जागरूक तरीके से एक कवि के जीने की कला का आदर्श रूप है, यदि उनकी अन्य अप्रकाशित, असंरक्षित कृतियां आज प्राप्त होतीं तो हिंदी कविता को अवश्य कुछ नई दिशाएं और प्राप्त होतीं क्योंकि कवि 'अभिव्यक्ति के सारे खतरे' उठाने के लिए तत्पर ही था।

8.3 लंबी कविता की कसौटी पर 'अंधेरे में'

'अंधेरे में' कविता मुक्तिबोध की चर्चित कविताओं में से एक है। यह कविता लंबी कविता है, जिसमें कवि ने इतमीनान से उसकी मूल संवेदना को रखा है। यह कविता – 'चांद का मुंह टेढ़ा है' काव्य संग्रह की लंबी कविताओं में से एक कविता है। जैसा कि इसके शीर्षक से स्पष्ट होता है कि यह 'अंधेरे में' रहने वाले जन-मानस की बात को उठाती है। 'अंधेरे' शब्द अपने आप में प्रतीकार्थ रखता है क्योंकि इसके माध्यम से कवि ने अंतर्बाह्य के उन

अंधेरे कोनों को खोज निकालने का प्रयास किया है और स्वयं अंधेरे में रहने वालों को इसका एहसास कराया है। अस्मिता की लड़ाई व संघर्ष से जूझती हुई इस कविता की संवेदना आगे बढ़ती है।

मुक्तिबोध कविता की रचना जितना मन लगाकर करते हैं उससे अधिक वह दिमाग में उसे परखते हैं। कवि होने के नाते उनकी यह कविता 'अंधेरे में' उनके मन मस्तिष्क की एक ऐसी विचार कविता है जो हिंदी काव्य जगत के बीच अपनी विशिष्ट उपस्थिति दर्ज कराती है। विभिन्न आलोचकों ने इस पर अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त की हैं। मुक्तिबोध इस लंबी कविता में कई स्थितियों को रखते हैं। मूलत: आदमी के भीतर की मन:स्थिति का यहां पर मनोवैज्ञानिक परंतु आरंभिक रूप में द्वंद्व की स्थिति में वर्णन आया है। कविता गंभीरता प्रस्तुत करती है। सरल ढंग से समझा जाए तो इसके आरंभ की स्थिति यह है कि यह वर्ग विशेष को उठाती है। इसमें एक वाचक का प्रवेश है यह वाचक मध्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। कवि यह मानता है कि समाज में निम्न, मध्य, उच्च वर्ग की स्थिति अपनी-अपनी परिस्थिति के साथ है। उच्च वर्ग अपने आपको किसी अन्य वर्ग के साथ शामिल करने से कतराता है। निम्न वर्ग अपनी परिस्थितियों से जूझता रहता है, वह शोषित है, मध्यम वर्ग ही ऐसा वर्ग है जो अपनी परिस्थितियों को किसी भाग्यवाद के सहारे नहीं अपितु अपने आदर्शों के सहारे जीता है। वह अपने अस्तित्व के प्रति भी चिंतित है, उसकी स्थिति भी निम्न वर्ग के आस-पास की है वह भी आर्थिक संकट उन्हीं की तरह झेलता है, उसका भी शोषण होता है किंतु वह अपने को निम्न वर्ग से अलग मानता है जबकि वह भी भीतर के संघर्षों एवं द्वंद्वों से अटा पड़ा है, अपने प्रति वह इमेज कांशियस है मगर आदर्शवादी है ऐसी स्थिति में संघर्ष-आत्मसंघर्ष होना अवश्यंभावी है क्योंकि बाहर-भीतर का मेल नहीं हो पा रहा है। अतएव काव्य इन्हीं बुनियादी स्थितियों को लेकर उपस्थित होता है। कविता का आरंभ 'जिंदगी के / कमरों / में अंधेरे' से होता है। वाचक के माध्यम से कवि मध्य वर्ग के व्यक्ति से बातचीत जारी रखता है। कविता में नाटकीयता की स्थिति बनी मिलती है। यह वाचक कोई बाह्य व्यक्ति न होकर मध्यम वर्ग से सवाल जवाब करता हुआ उसके भीतर का ही व्यक्ति है जिसे मुक्तिबोध ने बाह्य रूप में प्रकट करके संवेदना का केंद्रीय भाव बनाए रखने हेतु माध्यम दिखाया है।

दूसरी अहं बात, यह कविता मार्क्सवादी चिंतन लाती है। वह मध्य वर्ग में जीते, अपने अस्तित्व को संभालते, संघर्षशील व्यक्ति को आईना दिखाने का प्रयास करती है कि उसे अपने आपको पहचानना होगा, उसे अंधेरे से निकलना होगा। समाज की व्यवस्था में उसका भी शोषण हो रहा है। बावजूद इसके कि वह आदर्शवादी है मगर संवेदना के ज्ञान से अनजान है। वह तन से शोषित नहीं है बल्कि दिमाग और मन से भी कहीं भीतर तक उस बाह्य शोषण को आदर्श तले झेल रहा है- जी रहा है। कवि ने ऐसे समाज को जगाने का प्रयास किया है। वह 'लाल मशाल' द्वारा मार्क्सवाद के विवेक जन्य तेवरों द्वारा अपने वाचक को मध्यम वर्ग की चेतना को जगाने का कार्य देता है। मुक्तिबोध उन तमाम परिस्थितियों को प्रतीक रूप में प्रस्तुत करते हैं जो इस वर्ग की विडंबना बनी हुई हैं जैसे -

इसलिए बाहर के गुंजान
जंगलों से आती हुई हवा ने

फूंक मार एकाएक मशाल ही बुझा दी
कि मुझको यों अंधेरे में पकड़कर
मौत की सजा दी

मुक्तिबोध इस पूरी कविता में 'मध्यम वर्ग' के व्यक्तित्वांतरण का प्रयास करते हैं। वे उसे बदलने का प्रयास करते हैं क्योंकि उसकी स्थिति सबसे दयनीय है जबकि वह भी निम्न वर्ग से अलग नहीं है, न ही उच्च वर्ग की ओर जाता है, मगर अपने अस्तित्व को बचाने के लिए प्रयासरत है और भीतर का संघर्ष, अंधियारे खड्डे में गिरने की नौबत उसी की आती है। दिमागी आदर्श उसे एक ओर खींचते हैं और उसकी बाह्य परिस्थिति कुछ इस प्रकार है-

नहीं, नहीं, उसको मैं छोड़ नहीं सकूंगा
सहना पड़े मुझे चाहे जो भले ही।

कवि मानता है कि ऐसे मध्य वर्ग के व्यक्ति को अपनी जगह को बदलना होगा तभी वह प्रकाश में आएगा और सुख से जी पाएगा। वास्तव में इससे पहले आदमी को उसके भीतरी संघर्षों के साथ देखने की प्रक्रिया इतने गहन ढंग से किसी ने नहीं की थी। मुक्तिबोध समस्या को तहों से देखते हैं और एक अभियान में जुट जाते हैं फिर लंबी कविताओं की शुरुआत होने लगती है और निराकरण का मार्ग खोजा जाता है।

अपनी इस कविता के पहले भाग में कवि वाचक द्वारा यह पूरी तरह से दिखा पाते हैं कि मध्यम वर्ग है कहां पर? उसके बाद मध्यम वर्ग की चेतना कुछ जाग्रत होती है वह महसूस करता है कि वह वास्तव में 'अंधेरे में' ही रहा है, अब द्वंद्व की स्थिति आती है क्योंकि बदलना आसान नहीं है। एक वर्ग का व्यक्ति स्वयं को दूसरे वर्ग के भीतर का समझने लगे, यह आसान प्रक्रिया नहीं है, वह जानता है कि उसके आदर्श उसे कोई रास्ता नहीं दिखा रहे हैं, फिर भी वह अपनी अस्मिता का विलय नहीं कर पा रहा है क्योंकि वह अकेला है। यह भी इसका बड़ा कारण है। अकेले किसी संघर्ष से मुक्ति नहीं मिल सकती। इसके लिए व्यापक को आत्मसात करना जरूरी है। मुक्तिबोध का यही तर्क है। कवि मानता है कि अच्छा व बुरा तय करने के लिए संवेदनात्मक ज्ञान का होना आवश्यक है। इसके लिए एकाकी रहकर वह विवेकपूर्ण निर्णय पर नहीं पहुंच सकता है बल्कि उसे सामाजिक बन समाज को देखना होगा जहां विभिन्न सफेद पोश उसके आदर्शों पर प्रहार करने बैठे हैं, उनकी संवेदना ज्ञान के स्तर पर जगाने हेतु उन्हें उनका असली करतब देखना जरूरी है। मध्यम वर्ग के शोषितों का असली चेहरा, अंधेरा-उजाला दिखाने के उपरांत वह उसकी प्रतिक्रिया भी देखते हैं जहां वह ऐसी स्थिति में खुद को अकेला, शोषित, डरा हुआ, आतंकित समझता है और मुक्ति के रास्ते तलाशता है। वह अब लाल क्रांति से डरता नहीं है, न ही अलग-अलग पड़ा रहता है। वह समझता है कि वह इन उच्च वर्ग के षड्यंत्रों का हिस्सा है। उसकी संवेदना जोकि ज्ञान से उत्पन्न है तीव्रतम हो जाती है। कविता में एक स्थान पर यह भाव आया है-

एकाएक मुझे भान होता है जग का।

मध्यवर्गीय वाचक पछताता है कि जिनके पीछे चलकर उसने आदर्शों को खड़ा करने का बीड़ा उठाया वह प्रक्रिया यूं ही बर्बाद चली गई। अस्तु, मुक्तिबोध का यह वाचक अब आत्मविलय को तैयार हो जाता है और अब कविता में उसके द्वारा यह दृश्य भी देखा जाता

'दिया जल रहा था' अर्थात अंधेरे में अब वह नहीं था, वह बगैर किसी दबाव के आत्मविलय, विवेक प्रक्रिया को अपना रहा है लेकिन मार्ग में कई असफलताएं मिल रही थीं, मार्क्स के अनुभव, गांधी की सच्चाई, सर्वहारा का आकर्षण, अस्मिता के रास्ते में मध्यवर्ग के वाचक को प्राप्त हो रहा था। इस रास्ते पर भी विविध संघर्षों का चित्रण कवि ने किया है जिसे मध्य वर्ग के वाचक को झेलना पड़ता है।

अतः मुक्तिबोध मध्य वर्गीय वाचक को सारे द्वंद्वों से परे रखकर सर्वहारा के मध्य रख ने में सफल होते हैं जहां अंधेरा समाप्त हो जाता है।

मूल्यांकन

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मुक्तिबोध की कविता समाज के वर्गों की लंबी कहानी है जिसमें मध्यम वर्ग को कवि ने झिंझोड़ा है, जिसकी अस्मिता के लिए कवि जी-तोड़ प्रयास करता है। उसे सत्य दिखाता है, उसके द्वारा आत्मशोधन की प्रक्रिया होती है और अंततः वह व्यक्तित्व की पूर्णता को प्राप्त होता है। डॉ. नामवर सिंह 'अंधेरे में' के विषय में कहते हैं, 'अंतिम पंक्तियां उस अस्मिता या 'आइडेंटिटी' की खोज की ओर संकेत करती हैं जो आधुनिक मानव की सबसे ज्वलंत समस्या है। निस्संदेह इस कविता का मूल कथ्य है 'अस्मिता की खोज।' अतएव यह तो स्पष्ट ही हो जाता है कि मुक्तिबोध बाहर की लड़ाई अपने भीतर लड़ते हैं, तैयारी करते हैं तब जाकर बाहर प्रवृत्त होते हैं और जगाते हैं।

8.4 फैंटेसी और मुक्तिबोध का काव्य

मुक्तिबोध का काव्य फैंटेसी से युक्त है। उनके काव्य में फैंटेसी के स्वरूप को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

8.4.1 फैंटेसी से तात्पर्य

फैंटेसी कल्पना का वह स्तर है जहां पर कल्पना को किसी प्रकार की कोई बंदिश न हो। इसका कोशगत अर्थ 'अति कल्पना' से है। मुक्तिबोध के यहां यह कल्पना मानसिक स्तर पर आने की बजाय बौद्धिक स्तर पर प्रकट हुई है और कविता को गुह्य लोकों - रहस्यमय लोकों तथा अतियथार्थवादी स्तर तक पहुंचाने का प्रयास करती है। कवि आत्मान्वेषण की प्रक्रिया से भी गुजरता है और यथार्थ एवं अनुभव के उपरांत जो रास्ता कवि द्वारा कविता में तय किया जाता है वह 'फैंटेसी' का रूप धारण करता है।

8.4.2 फैंटेसी का प्रारूप

मुक्तिबोध के यहां फैंटेसी के विविध आयाम हैं। इस वातावरण को बनाने वाले कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं, 'वीरान प्रदेशों का घुग्घू, गुंबद-विवर, मानव मस्तिष्क से निकले कुछ ब्रह्मराक्षस, युद्ध के नक्शे, चोर आवाजें, तहखाने, सीटियां, एटम बम, हड्डियों के हाथों में पीले दबे कागज इत्यादि। ये शब्द बाह्य वातावरण से उठाए गए शब्द हैं किंतु प्रतीकात्मक रूप में इन शब्दों का अर्थ बिल्कुल बदल जाता है। ये शब्द बाहर के जगत को लेकर अभ्यांतर की सीढ़ियों में प्रवेश करते हैं, जहां पढ़ने वाले को चिर परिचित माहौल न मिलकर 'फैंटेसी' से

गुजरकर मिलने वाला माहौल प्राप्त होता है, जहां पर कवि आत्मान्वेषण के क्षणों में खो जाता है और भीतर से अनुभूत किए गए जगत का नया अर्थ-नया सार लेकर आना चाहता है मगर अतिकल्पना, अतियथार्थ के सम्मिलन से जो माहौल तैयार होता है वह कवि को आकर्षित करता है, कवि की संवेदना का सहगामी बनकर प्रस्तुत होता है और अनुभूति का विस्तार बढ़ता ही चला जाता है।

'ब्रह्मराक्षस' कविता इसका अच्छा उदाहरण है। 'ब्रह्मराक्षस' प्रतीक बनकर आया है। वह व्यक्ति की प्रबुद्ध चेतना का प्रतीक है। 'ब्रह्मराक्षस' ज्ञान से गर्वित व्यक्ति का प्रतीक है, जो अपने हिसाब से चीजों के अर्थ तय करता है, आदर्शों की नई व्याख्या करता है वह इन सबसे अभिमानित भी रहता है। उसका रास्ता अलग है जो सामान्य सोच का रास्ता नहीं है न ही वह स्वयं सरलगामी रास्तों पर जाने का इच्छुक है। निम्न उदाहरण से यह बात साफ हो जाती है-

खूब ऊंचा एक जीना सांवला
उसकी अंधेरी सीढ़ियां
वे एक अभ्यांतर निराले लोक की
एक चढ़ना और उतरना
पुनः चढ़ना और लुढ़कना
मोच पैरों में / व छाती पर अनेक घाव
गहन किंचित सफलता
अतिभव्य असफलता
अतिरेकवादी पूर्णता की ये व्यथाएं
बहुत प्यारी हैं।

उक्त कविता में कवि कुछ ऐसी बातें प्रस्तुत करता है कि स्पष्ट होता है कि वह अंधेरी सीढ़ियों पर जाने वाला व्यक्ति है। फैंटेसी जगत में व्यक्ति की प्रबुद्ध चेतना उतार-चढ़ाव का अनुभव करती है। आत्मान्वेषण की प्रक्रिया में व्यक्ति जब प्रवेश करता है तब आवश्यक नहीं कि उसे व्यक्तित्व का सफलतम रूप ही देखने को मिले। बल्कि सफलता से अधिक असफलता की संभावना वहां पर रहती है। यह पीड़ा का रास्ता है किंतु आंतरिक जगत में जाने बौद्धिक व्यक्ति को प्यारा ही लगता है। मात्र एक अंश पढ़कर ही पाठक अजीबोगरीब कवि की अनुभूति से वाकिफ होता है जबकि मुक्तिबोध को तो फैंटेसी ही प्रिय है व उन्होंने इसका प्रयोग अपनी लंबी कविताओं में भी अधिक किया है तब मुक्तिबोध के भीतर के सच को समझना वास्तव में निराले लोक में जाने से कम नहीं है। फैंटेसी का यह रूप अपने साथ एक उद्देश्य लेकर आता है। ऐसी फैंटेसी-दर्शन से मात्र कवि-व्यक्तित्व की परतें ही नहीं खुलतीं हैं बल्कि आम आदमी के भीतर के सत्य-असत्य, विकृति-मनोवृत्ति के पारदर्शी रूप में प्रकट होने की स्थिति भी प्राप्त होती है। बगैर किसी सहारे आंतरिक जगत में प्रवेश करने की स्थिति, विविध अच्छे बुरे दृश्यों का ऐसी स्थिति में प्राप्त होना तदोपरांत अकेला आगे बढ़ने का साहस, विकार-मनोविकारों में प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति आने का स्तर और अंततः सत्य का दरवाजा खटखटाता व्यक्ति। यह है मुक्तिबोध की फैंटेसी का प्रारूप-

घर आ ही जाता है कि द्वार खटखटाती
अंदर से 'आयी' की ध्वनि सुन पड़ती है

अपना डर द्वार खटखटाता हुआ
निश्चय-सा संकल्प सा करता हूं।

मुक्तिबोध में जितनी अधिक संवेदनशीलता है उतनी ही उनकी अभिव्यक्ति फैंटेसी के आलोक में जटिलतम है। वह जिंदगी के भीतर प्रवेश करते हैं उसकी चुनौतियों का सामना करते हैं, उससे एकांत चाहकर पलायन नहीं करते हैं न रहस्य को खोजते हैं बल्कि वह नश्तर चुभाती परिस्थितियों के दर्द को झेलते हैं। आस्था व जिजीविषा के साथ कविता रचते हैं। 'चांद का मुंह टेढ़ा है' संग्रह की 'चकमक की चिंगारियां', 'अंधेरे में', 'ब्रह्मराक्षस,' 'पता नहीं', 'दिमागी गुहांधकार का ओरांग-उटांग,' 'एक अंतर्कथा', 'एक स्वप्न कथा', 'भूल गलती', 'इस बीहड़ ऊंचे टीले पर,' आदि कविताओं में आत्मान्वेषण का भाव है। कवि व्यक्ति स्तर पर, कवि की चेतना के स्तर पर और अस्मिता के स्तर पर आत्मद्वंद्व को प्रस्तुत करता है। कवि का मानना है कि आत्मान्वेषण व्यक्ति को करना चाहिए क्योंकि इसमें ही जागरूकता है, इसमें ही व्यक्ति अपने भीतर छिपी शक्तियों को पहचानता है और स्वयं अपने लिए व अपने समाज के लिए वह बेहतर व्यक्तित्व को तैयार करने का परिश्रम कर सकता है। फैंटेसी मात्र बयानबाजी या तिलस्मी प्रकार की कल्पना का प्रारूप नहीं है बल्कि यह भीतर के रास्तों को खोलने वाला द्वार है, आत्मदोष परीक्षण का क्रम है अपने विकारों को पहचानकर उससे आगे निकल जाने की तीव्रता है। इस प्रकार फैंटेसी भीतरी विद्रोह की भी प्रतिक्रिया है- संघर्षरत रहने का स्वभाव है। वह इन स्थलों के प्रति, यह तक कहने लगता है, 'उलटे लटके चमकादड़ भावों के'।

आत्मान्वेषण से लेकर अन्वेषण का भाव मुक्तिबोध की 'फैंटेसी' कविता में प्राप्त होता है। सामाजिक दर्द व दैन्य-जीवन के स्वर भी यहां पर हैं जो उन्हें 'आत्म विस्तार' तक लेकर जाते हैं। मानवीय एवं न्यायसंगत व्यवस्था का प्रतीकार्थ रखती हुई कवि की फैंटेसी है। मुक्तिबोध फैंटेसी आग्रह से बचना नहीं चाहते हैं वे तो उसके प्रति आकर्षित हैं। कुछ इस प्रकार है- "दूर जंगल के गुमनाम खड्डे में या किसी वीरान टावर की अंधेरी भीतरी गोलाइयों के बीच या पुराने रोशनीघर की भीतरी मीनार में प्रवेश करने के पीछे फैंटेसी का ही आकर्षण है।"

8.5 मुक्तिबोध के काव्य में आधुनिक भारत का यथार्थ

आधुनिक भारत के यथार्थ को मुक्तिबोध के काव्य में निम्न प्रकार से देखा जा सकता है-

8.5.1 सामाजिक जीवन के सांस्कृतिक मूल्य

मुक्तिबोध के समय का समाज वर्गों में विभक्त दिखाई देता है और इस वर्ग विषमता में उच्च वर्ग, मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग है। समाज का उच्च वर्ग सेठ, शहरी महाजन जो निम्न वर्ग के लिए नहीं सोचता है, दूसरी ओर निम्न वर्ग है जो किसान मजदूर है, जो महंगाई, बेकारी व बीमारी की मार से त्रस्त है। ऋण से कभी मुक्त नहीं हो पाता है। वह शहर की ओर बढ़ता है ताकि जीवन उत्तम बना सके किंतु वह न शहर की आधुनिकता को ओढ़ सकता है न अपने ग्रामीण संस्कारों को रख सकता है। मध्यम वर्ग भी कुछ इसी प्रकार की मानसिकता से त्रस्त है। यह चित्र मुक्तिबोध की कविताओं में आकार ग्रहण किए हुए हैं। मुक्तिबोध असहाय, बेबस व सर्वहारा के प्रतिनिधि बनकर खड़े हैं। 'मेरे इस सांवले चेहरे पर कीचड़ के धब्बे हैं'।

मुक्तिबोध ने अनेक स्थान पर काले, स्थायी, नीले, राख से रंगों का प्रयोग इस प्रकार के सामाजिक वैषम्य को दिखाने के लिए किया है। प्रतीकों के इस्तेमाल से यह प्रयोग गहन अभिव्यक्ति देता है जैसे - 'जहां पर पत्थरों के सिर। गरीबी के उपेक्षित श्याम चेहरों की दिलाते याद।' इस तरह मुक्तिबोध ने परिवार के संदर्भ में भी सांस्कृतिक मूल्यों का अवमूल्यन अपरोक्ष कथन के माध्यम से व्यक्त किया है-

लो-हित-पिता को घर से निकाल दिया।
जन-मन-करुणा-सी मां को हंकाल दिया।
स्वार्थों के टेरियार कुत्तों को पाल लिया।

कुछ इसी तरह की अभिव्यक्ति निराला व नागार्जुन में भी मिलती है।

अपने पूरे समाज की बात मुक्तिबोध करते हैं। उनका सामाजिक परिदृश्य हर वर्ग की बात करता है और व्यवस्था की अव्यवस्था दर्शाता है। परिवार एवं समाज की भावना के सांस्कृतिक मूल्य यहां पर सकारात्मक रूप से प्राप्त नहीं होते हैं ऐसे में कवि का दायित्व बोध जागता है और जगाने का कार्य करता है। अपनी कविताओं के लिए वे सांस्कृतिक मिथक का प्रस्तुतीकरण करते हुए कहते हैं, 'मेरी ये कविताएं / भयानक हिडिंबा हैं।' कवि का अनुभूत, प्रत्यक्षीकरण, यथार्थ बोध सामाजिक जीवन की संस्कृति को दर्शाता है।

इसके अतिरिक्त मुक्तिबोध की कविता समाज की विभिन्न समस्याओं व दुर्घटनाओं का जिक्र करती है। मानव मन के भीतर पसरी हुई भय की स्थितियां, कुंठाग्रस्तता, सभ्यता का खोखलापन देती है। जहां समाज का बाह्य रूप हत्या, लूटपाट का जिक्र करता है वहीं मानव की शंकाओं के साथ स्वयं कवि समाज के प्रति अपनी शंकाग्रस्त मनःस्थिति लेकर सामने आता है। उसे सामने वाले के चरित्र में असंदिग्धता का आभास होता है। वह भी अजनबीपन से बचना चाहता है। इस प्रकार सामाजिक प्रकरणों में कवि स्वयं को भी सामने रखकर बात करता है क्योंकि वह भी समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई है।

8.5.2 राजनैतिक वातावरण की व्यवस्था

मुक्तिबोध ने समकालीन दुनिया के हर महत्वपूर्ण राजनैतिक घटनाक्रम को महसूस किया, राजनैतिक विचारकों की पुस्तकों का अध्ययन किया व कई राजनेताओं से वे प्रभावित भी रहे। अपने ही देश में गांधीवाद का उन पर असर पड़ा। 'स्वान्तः सुखाय' व 'परजनहिताय' से अलग उनकी कविताएं पाठक की तीसरी आंख खोलने की कोशिश करती हैं, जहां से वे घटित होने वाले प्रत्येक पक्ष को सामान्य दृष्टि से न देखकर उसके पीछे के घटनाक्रम को देखने का प्रयास करती हैं और आगे की दिशा तय कर लेती हैं। मार्शल लॉ का लगना, कर्फ्यू लगना, उजाले अंधेरे का अंतर वे समझते हैं और राजनैतिक घटनाक्रम को भी काव्य का मुख्य विषय बनाते हैं जहां कई चेहरे बेनकाब होते दिखते हैं। 'अंधेरे में' कविता राजनेताओं व राजनीति के कई चित्र उकेरती है। मशाल, जुलूस की गतिविधियां कविता में होती है। उदाहरण है- 'कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल गई। सब चुप, साहित्यिक चुप और कवि जन निर्वाक्, चिंतक, शिल्पकार, नर्तक चुप है।' कवि द्वारा दिया गया समसामयिक बोध हौले से संवेदनशील लोगों की जागरूकता पर व्यंग्य कसता है। उनकी बेबसी का हाल देता है। यह

संस्कृति के अधोपतन का ही तो हाल है। 'मृतक दल की शोभा यात्रा' शीर्षक कविता में कवि के आश्चर्य का स्वर देखिए-

'वह मुख - अरे वह मुख वे गांधी जी
इस तरह पंगु। आश्चर्य।'

परंपरित मूल्यों का परिवर्तन कवि के यहां दिखाई देता है। जहां व्यक्तियों को सामंजीकरण की प्रक्रिया में खतरा महसूस होता है। अपने बचाव की प्रक्रिया छिपे हुए उद्देश्यों से बुद्धिजीवियों को किस कदर दूर रख रही है। परिवेश की सही पहचान तक देना मुश्किल हो रहा है। इतने के बावजूद भी मुक्तिबोध बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। आगत के स्वागत के लिए तत्पर हैं। मूल्यों को लाने का धैर्य बनाते हैं।

आधुनिकता के कदम

विभिन्न संत्रासों का वातावरण लाने वाली मुक्तिबोध की कविता बौद्धिकता एवं विचारों का समन्वय लेकर चलती है। पिछली रूढ़ियों व परंपराओं को वह नकारती है। मुक्तिबोध सारी विषमताओं, मजबूरियों के बावजूद आदमी की क्षमताओं पर भरोसा करते हैं। मनु-पुत्र यदि आस्थावादी एवं जिजीविषापूर्ण है तब वे उसकी ऊर्जा शक्ति के सही इस्तेमाल की बात करते हैं। मुक्तिबोध की कविता के विषय में शमशेर बहादुर सिंह 'चांद का मुंह टेढ़ा है' काव्य की भूमिका के अंतर्गत कहते हैं-"मुक्तिबोध की कविता अद्‌भुत संकेतों-भरी, जिज्ञासाओं से अस्थिर-कभी दूर से ही शोर मचाती, कभी कानों में चुपचाप राज की बातें कहती चलती है। हमारी बातें हमी को सुनाती है और हम अपने को एकदम चकित होकर देखते हैं, और पहले से और भी अधिक पहचानने लगते हैं।"

आधुनिकता के नाम का कवि 'छद्‌म आधुनिकता' की बात कहता है। ऐसी आधुनिकता बनाम फैशनपरस्ती पर वह प्रहार करता है। निम्न कविता अपने अर्थ स्वयं प्रकट करती है जहां आधुनिकता से परिचित होने का उत्साह खत्म हो जाता है-

'बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास,
किराए के विचारों का उद्‌भास
बड़े-बड़े चेहरों पर स्याहियां पुत गईं'
नपुंसक श्रद्धा
सड़क के नीचे की गटर में छिप गई'।

विद्रोह का स्वर मुक्तिबोध की कविता में प्राप्त होता है। बदलाव की स्थिति लाने के लिए वह 'खतरा उठाना' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। स्पष्ट है कि आधुनिकता विद्रोह के बाद की प्रतिक्रिया है चाहे संवेदना का प्लेटफार्म बदलकर रखने की बात हो अथवा अभिव्यक्ति के खतरे उठाने का क्रम हो। मुक्तिबोध के यहां 'लाल रंग' क्रांति का प्रतीक बनकर आया है और यह क्रांति के स्वर उनकी कविता में बिखरे हुए हैं। 'लाल क्रांति' की विचारधारा मार्क्सवाद का प्रभाव है। अपने ऊपर कवि को पूरा भरोसा है। ईश्वर की शक्ति पर भी वह आश्रित नहीं है उसका मानना तो यहां तक है-

जिंदगी के दल-दल कीचड़ में धंसकर
वक्ष तक पानी में फंसकर
मैं वह कमल तोड़ लाया हूं
मुझे तेरी बिल्कुल जरूरत नहीं है।
भावनात्मक तेवर में बदलाव

सांस्कृतिक बोध की प्रक्रिया में भावनात्मक स्थितियां बदलाव की गुंजाइश रखती है। मुक्तिबोध का काव्य उनके द्वारा भोगे गए यथार्थ के सत्य का रूप है। जहां अन्याय का जंजाल समाज है और वे मानवतावादी विचारधारा से इस संक्रमण काल के दंश को पी रहे हैं और विद्रोही बन गए हैं। भावना का काम बौद्धिकता द्वारा ले रहे हैं और अपने काव्य में अनुभव की सख्ती के साथ प्रस्तुत होते हैं। उनका अनुभव उन्हें 'फैंटेसी' के धरातल पर छोड़ आता है जहां वे एकत्रित सच से 'महासच' की ओर बढ़ते हैं जिसको नकार कर चुप बैठे रहना उनके व्यक्तित्व के लिए संभव नहीं है। जहां वे 'ब्रह्मराक्षस' का निर्माण कर डालते हैं। भावनात्मक तेवर के बदलाव की स्थिति में अनर्गल एवं अनुपयोगी भावों से कवि ने स्वयं को बचाए रखा है। 'आत्म' की बात भी कई-कई बार हुई है मगर उसमें अहंकार नहीं है। उनकी भावनात्मक संवेदना हृदय से अधिक मस्तिष्क को चिंतनपरक अभ्यास में लगा देती है। बदलाव अपनी पिछली काव्य परंपरा से इस रूप में भी दिखता है, यहां कवि अपने व्यक्तित्व के शोधन की भी बात स्पष्ट स्वीकार करता है। आत्म बोध का एहसास बना रहता है। लंबी कविताओं में मन के भीतर की परतें वह पलटना चाहते हैं और वह अनुभवजन्य संवेदना भी पढ़ना चाहते हैं जहां इच्छाएं जन्म लेती हैं, नवीन भाव-बोध की स्थिति का अच्छा उदाहरण है-

'कि मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में
उमग कर
जन्म लेना चाहता फिर से
कि व्यक्तित्वांतरिक होकर
नए सिरे से समझना और जीना
चाहता हूं सच।'

मुक्तिबोध की सामाजिक चेतना

मुक्तिबोध जन-चेतना के कवि हैं। जीवन सरोकारों के कवि हैं यह कहना जितना सरल है उतनी वास्तविकता नहीं है। व्यावहारिक तौर पर देखें तो मुक्तिबोध आदर्शवादी एवं न्यायप्रिय पिता के यहां पैदा हुए थे। यही संस्कार उनमें जीवन-पर्यंत दिखाई दिए। एक व्यक्ति जब सच को तलाशता है, विशिष्ट आदर्श लेकर चलता है ऐसी स्थिति में वह तो भीतर से मजबूत व कहीं जिद्दी होता ही है व बाहर भी वह अपने समाज से इन्हीं सब विचारों की मांग रखता है। मगर परिस्थितियां विपरीत पाकर अपने मजबूत व्यक्तित्व से संघर्ष करता है, पहले स्वयं खुद से जूझता है तदोपरांत बाह्य-संघर्ष की प्रक्रिया आती है। मुक्तिबोध का जीवन भी कुछ इसी प्रकार का रहा, बौद्धिकता को उन्होंने स्वीकार किया और सामाजिकता को उसी नजर से देखने का प्रयास किया। मुक्तिबोध विचारों के कवि थे और उनका संघर्ष स्वयं खुद से व समाज से विचारों के कारण ही था। इतिहास, दर्शन, चिंतकों, विश्वजनीन साहित्यकारों-आलोचकों

की पुस्तकों के अध्ययन से उनके संस्कारगत विचारों को आत्मबल प्राप्त हुआ और तब यह कवि समाज के परिदृश्य से टकराकर नए विचारों के साथ दिखाई दिया क्योंकि समाज के हालत सरोकारों से उन्हें टकराना ही था। सामंजस्य का व्यक्तित्व ही नहीं रखा था किंतु इतने पर भी वे एकाकी अथवा वीतराग का रवैया अपना सकते थे मगर यह भी उनके व्यक्तित्व का हिस्सा न था। वे समाज के मध्यस्थ रहे, मित्रों-विचारकों की गोष्ठी में संवादरत रहे, अपने आपको प्रकट करते रहे यही कारण है कि सामाजिक चेतना के स्वर विविध आकारों को लेकर इनके काव्य में प्रकट होते हैं।

सबसे अहं बात, उन्होंने अपने स्वभाव के अनुरूप नौकरी प्राप्त की, जहां पुस्तकों से उनका वास्ता था, अन्य कोई सरकारी दबाव न था, दूसरी बात, अपने अनुभवों को प्रकट करने में उनको एक उत्साह था। तीसरा जन चेतना से ही प्रभावित होकर वे जीवन में एवं अपने विचारों के जंगल में कई बार हारते फिर जीतने की कोशिश करते थे। मुक्तिबोध के काव्य एवं व्यक्तित्व को लेकर उनके अपने-परायों ने प्रतिक्रिया – तीखी प्रतिक्रियाएं व्यक्त की किंतु उनकी निम्न काव्य-पंक्तियां सामाजिक सरोकार में जिम्मेदारी का हिस्सा रखती हैं- 'समस्या एक-/ मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में / सभी मानव / सुखी, सुंदर व शोषण मुक्त/ कब होंगे?।' यहां पर कवि अपनी बात ही नहीं रखता बल्कि उसकी संवेदना समाज से प्रश्न भी पूछती है। तब जवाब की अपेक्षा भी कवि को अवश्य ही होगी और यह जवाब शब्दों द्वारा निकल कर आने का नहीं, बल्कि कवि अपने समाज से इसके व्यावहारिक जवाब की अपेक्षा रखता है। 'सभ्य नगर' कहने से समाज के प्रति तीखापन व्यक्त किया है। कवि की कविताएं भले ही भदेस, डरावनापन, ऊबाऊपन, संत्रास, मृतप्राय परिस्थितियों को क्यों न उठाती हों मगर इन सबके पीछे कवि की मूल भावना क्या यह नहीं कि वह भी सुंदर देखने का इच्छुक है, वह भी सुख से पैदा होने वाली सुंदरता और शोषणमुक्त सौंदर्य देखने का पक्षधर है। प्रगतिशील चेतना की यही शर्तें तय की जाती हैं। ऐसी स्थिति में जब कवि का मानस समाज की विषमता, यथार्थ एवं शोषित जनों की स्थिति को देख रहा हो, तब ऐसे विचारों का प्रकट होना अपने आपको झुठलाने की स्थिति तो बिल्कुल ही नहीं है। ऐसे वक्तव्य उनकी अदम्य आस्था और जुझारुपन से निकलते हैं।

मुक्तिबोध के काव्य में समाज

'मुक्तिबोध की 'तारसप्तक' की कविताओं एवं 'चांद का मुंह टेढ़ा है' की कविताओं में बहुत अंतर दिखाई देता है परंतु मानवीय आस्था के स्वर दोनों की बुनियादी संवेदना है। मुक्तिबोध की कविताएं बाहर के संघर्ष को अपने सृजनकर्ता के दिलो-दिमाग को झकझोर कर बाहर निकालती हैं। कवि बाहर का सारा संघर्ष, सारा अटपटापन, सारी विषमता व सारी दोगली स्थितियों की पीड़ा स्वयं जबरदस्त ढंग से झेलता है जहां वह भीतर कई-कई बार टूट-टूट कर जीता है, एक सच्चाई भरे संत्रास को झेलता है तब उसकी कविता निकलती है। कवि व्यक्ति केंद्रित प्रसंगों को नहीं लाता है। समाज का दर्द, आम आदमी की हैसियत की पीड़ा उसे सालती है जहां वह यथार्थ के स्वीकार एवं नकार में आत्मसंघर्षरत रहता है।

मुक्तिबोध की कविताओं का एक पक्ष यह भी है कि वे कई बार जटिल प्रतीत होती हैं, आतंकित भी करती हैं लेकिन वे जीवन जीने की कला को सिखाना चाहते हैं। कहीं पर

कुछ कविता के अंश ऐसी कोमल संवेदनाएं भी देते हैं जहां कवि के विचारों का भारी भरकम माहौल हवा हो जाता है। व्यक्ति व समाज के प्रति एक अन्य कवितांश प्रस्तुत है–

'कोशिश करो। कोशिश करो।
जीने की, जमीन में गड़कर भी।
मैं जीवन पर मुग्ध हो रहा हूं।'

मुक्तिबोध प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के समन्वित रूप का दूसरा नाम है। प्रगतिवादी व प्रयोगवादी समाज के बीच का ही कवि है, सामाजिक सरोकारों का कवि है, वह समाज की उपेक्षा नहीं कर सकता है। फलतः मानव प्रेम, जनकल्याण के स्वर उनकी कविता में प्राप्त होते हैं, उदाहरण इस प्रकार है–

जहां सूखे बबूलों की कंटीली पांत
भरती है हृदय में धुंध डूबा दुख
भूखे बालकों के श्याम चेहरों साथ
मैं भी घूमता हूं शुष्क।

कटु यथार्थ का जितना अनुभव कवि को हुआ है उतना शायद ही किसी अन्य कवि को हुआ होगा। कल्पना में भी यथार्थ का भोगा जाने वाला सच आया है। उनके काव्य में मानव कल्याण, मानव-संघर्ष की मुक्ति के प्रयास हैं। वह स्वयं अपने लिए भी सचेत हैं। आत्मालोचन की प्रक्रिया अपनाते हुए आगे बढ़ते हैं। सामाजिक सरोकार की स्थिति संघर्ष से गुजरते हुए तीखे व्यंग्य के साथ प्रकट होती है। जहां कवि मुख्य लक्ष्य पूर्ति तर्क मानता है और बड़ी बेबाकी से जीवन सत्य का उद्घाटन करता है। आदर्शों का पतन होना कवि को पीड़ा देता है। गांधीवादी आदर्शों का पतन किस प्रकार होता है, कवि ने कई बार अपनी कविता में यह दर्शाया है।

मुक्तिबोध कई बार समाज के विरोधाभासों से टकराने की हिमाकत करते हैं लेकिन वहीं मुक्तिबोध अपने अगले बैठे व्यक्ति को शंका की नजर से भी देखते हैं। जहां पर शक्ति संपन्न लोग गलत नीतियां थोपते हैं, दोहरा व्यवहार करते हैं, सफेदपोश बनने का नाटक करते हैं। अज्ञेय ऐसे सामाजिकों के काटों की चुभन से दूर रहना चाहते हैं, अपने सर्वहारा वर्ग को वह सचेत करते हैं और दर्द की कई-कई परतों को अकेला झेल जाते हैं, जिस कारण उनका साहित्य नए वातावरण को प्रस्तुत करता है जिसमें सामाजिक वैषम्य से उत्पन्न स्थितियों के भयावह व आत्मा को हिला डालने वाले प्रकरण हैं कि एक जिंदगी बाहर जीता है और दूसरी जिंदगी बाहर के असर से मानसिक अवस्था में जीता है मगर वह किसी विकार से ग्रस्त नहीं है बल्कि सामाजिक विकारों की श्रृंखला प्रस्तुत करने की हिम्मत रखता है। अपने समाज के साथ शिद्दत से जीता है, उनका पक्षधर बनता है और कई-कई बार तो वह अपने समाज का दर्द अकेला ही पी जाता है। उनकी सामाजिक चेतना का किसी अन्य कवि से मेल नहीं बनता, न ही तुलना करने का प्रश्न उठता है। कभी-कभी ऐसे भी अवसर काव्य में आते हैं जब लगता है कि कवि समाज के बीच में रहकर नहीं जी रहा है बल्कि कवि जरूरतमंदों, गरीबों, टूटे हुए लोगों का जीवन जी रहा है। वह कहता है, 'दुख तुम्हें भी है, दुख मुझे भी है'। यही कारण है कि मुक्तिबोध की कविता एक अलग तरह के सामाजिक चित्र देती है। उनकी सामाजिकता को काव्य-संदर्भों में लेकर चलना ही उनकी कविता को समग्रतः जानना होगा अन्यथा कवि की कविता का एकतरफा निर्देशन ही

हो पाएगा, कवि स्वयं अपने विषय में यह विचार रखते हैं। यह कथन कवि की सामाजिक चेतना की जानकारी देने हेतु सहायक ही होगा-

'मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
महाकाव्य की पीड़ा है
पल-भर में सब में से गुजरना चाहता हूं
इस तरह खुद ही को दिये दिये देता हूं
अजीब है जिंदगी।'

इस प्रकार मुक्तिबोध जीवन-जगत के कवि हैं। यही कारण है कि जिंदगी के प्रति बयानबाजी उन्होंने कई स्थानों पर की है।

मूल्यांकन

निश्चित रूप से मुक्तिबोध के काव्य की यात्रा दूसरे लोक को ले जाने की व्यवस्था है जहां जीवन अनुभव लेने का गहन तरीका है और फिर उस अनुभव को बांटना उससे भी अलग। मुक्तिबोध की कविताओं के पाठक का जितना सहृदय होना आवश्यक है उतना ही बुद्धिजीवी भी। तभी उनकी कविताओं को पूरे मनोयोग से जाना जा सकेगा। वह पाठक की चेतना में छा जाने वाले कवि हैं। उनकी कविताएं नया बोध, नई समझ व नई दिशा प्रदान करती हैं, जितनी पीड़ा का वर्णन है उसी के बराबर आगे बढ़ने की आस्था है।

अच्छी बात यह है कि बहुत सी जगह सड़े गले, उलझे, बिखरे वातावरण के बावजूद वह चेतना बरकरार है जो पाठक को घृणा एवं विद्रोह के दृश्य देने के बाद भी एक आकर्षण में बांधे रहती है। उनकी कविताओं को भली प्रकार पढ़ने का मतलब ही यह है कि कुछ देर तक शब्दों के परे भी वह वातावरण बना रहता है। निश्चित ही यह कविता मानसिक स्वतंत्रता का पक्षधर बनती है। संस्कृति की स्वाधीनता की दिशा ग्रहण करती है।

8.6 पाठांश

भूल-गलती

भूल-गलती
आज बैठी है जिरहबख्तर पहनकर
तख्त पर दिल के,
चमकते हैं खड़े हथियार उसके दूर तक,
आंखें चिलकती हैं नुकीले तेज पत्थर सी,
खड़ी हैं सिर झुकाए
सब कतारें
बेजुबां बेबस सलाम में,
अनगिनत खम्भों व मेहराबों-थमे
दरबारे आम में।

सामने
बेचैन घावों की अजब तिरछी लकीरों से कटा
चेहरा
कि जिस पर कांप
दिल की भाप उठती है...
पहने हथकड़ी वह एक ऊंचा कद
समूचे जिस्म पर लत्तर
झलकते लाल लम्बे दाग
बहते खून के
वह कैद कर लाया गया ईमान...
सुलतानी निगाहों में निगाहें डालता,
बेखौफ नीली बिजलियों को फैंकता
खामोश।।
सब खामोश
मनसबदार
शाइर और सूफी,
अल गजाली, इब्ने सिन्ना, अलबरूनी
आलिमो फाजिल सिपहसालार, सब सरदार
हैं खामोश।।
नामंजूर
उसको जिन्दगी की शर्म की सी शर्त
नामंजूर हठ इनकार का सिर तान..खुद-मुख्तार
कोई सोचता उस वक्त-
छाये जा रहे हैं सल्तनत पर घने साये स्याह,
सुलतानी जिरहबख्तर बना है सिर्फ मिट्टी का,
वो-रेत का-सा ढेर-शाहंशाह,
शाही धाक का अब सिर्फ सन्नाटा!!
(लेकिन, ना
जमाना सांप का काटा)
भूल (आलमगीर)
मेरी आपकी कमजोरियों के स्याह
लोहे का जिरहबख्तर पहन, खूंखार
हां खूंखार आलीजाह,
वो आंखें सचाई की निकाले डालता,
सब बस्तियां दिल की उजाड़े डालता
करता हमे वह घेर
बेबुनियाद, बेसिर-पैर...

हम सब कैद हैं उसके चमकते तामझाम में
शाही मुकाम में!!
इतने में हमीं में से
अजीब कराह सा कोई निकल भागा
भरे दरबारे-आम में मैं भी
संभल जागा
कतारों में खड़े खुदगर्ज-बा-हथियार
बख्तरबंद समझौते
सहमकर, रह गए,
दिल में अलग जबड़ा, अलग दाढ़ी लिए,
दुमुंहेपन के सौ तजुर्बों की बुजुर्गी से भरे,
दढ़ियल सिपहसालार संजीदा
सहमकर रह गये।
लेकिन, उधर उस ओर,
कोई, बुर्ज के उस तरफ जा पहुंचा,
अंधेरी घाटियों के गोल टीलों, घने पेड़ों में
कहीं पर खो गया,
महसूस होता है कि यह बेनाम
बेमालूम दर्रों के इलाके में
(सचाई के सुनहले तेज अक्सों के धुंधलके में)
मुहैया कर रहा लश्कर;
हमारी हार का बदला चुकाने आयगा
संकल्प-धर्मा चेतना का रक्तप्लावित स्वर,
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर
प्रकट होकर विकट हो जायगा।।

प्रसंग

'भूल-गलती' नाम की यह कविता गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की रचना है। यह कविता उनके कविता-संग्रह "चांद का मुंह टेढ़ा है" से उद्धृत है।

यह सर्वविदित ही है कि औरंगजेब आलमगीर एक महत्वाकांक्षी शासक था। उसमें सैनिक प्रतिभा भी थी, इसीलिए उसके समय में साम्राज्य का विस्तार हुआ। परंतु इसके चलते उसकी कट्टरपंथी नीति और अनवरत युद्धों की जानकारी भी मिलती है।

इस लंबी कविता में इतिहास बोलता प्रतीत होता है। संभवत इस कविता की विषय वस्तु 1679 ई. के तुरंत बाद की है। मारवाड़ पर औरंगजेब का अधिकार होने के बावजूद राठौड़ लंबे समय तक मुगलों से छापामार युद्ध करते हुए उन्हें परेशान करते रहे। इस कविता में मुक्तिबोध ने उसी समय की घटना का कल्पना भरा वर्णन कुछ इस प्रकार किया है–

कवि कहता है-हृदय के सिंहासन पर सत्ता, सुरक्षाकवच पहनकर अपनी पूरी शान-औ-शौकत के साथ विराजमान है। उसकी सुरक्षा की सभी तैयारियां अपने पूरे अस्तित्व के साथ आम-दरबार में स्पष्ट दिखलायी दे रही हैं। चमकते अस्त्र-शस्त्र, सुरक्षा अधिकारियों की तेज-तरार्र आंखें नुकीले तेज पत्थर-सी लग रही हैं। ऐसे में दरबार में आम जनता सिर झुकाए मौन धारण किए खड़ी है-वह बेबस है। दरबार में अनगिनत खम्भे और मेहराब हैं-जिनसे आम जनता पर कड़ी निगरानी रखी जा रही है।

सत्ता के ठीक सामने ऊंचे कद का एक क्रांति पुरुष अपराधी बना जंजीरों में जकड़ा खड़ा हुआ है। उसका पूरा चेहरा इतना तिरछी लकीरों से कटा-फटा हुआ है। चेहरे पर इतने जख्म हैं कि उसे उस हाल में देखकर दिल थर्र-थर्र सा कांपने लगता है। दिल से आहें उठने लगती हैं। उस क्रांतिपुरुष के हाथों में हथकड़ी पहनायी हुई है। पूरे शरीर पर यातनाओं के निशान स्पष्ट उभरे दिखलायी दे रहे हैं। पूरे शरीर से खून बह रहा है-उस वीर को छल-बल से कैदी बनाया गया है-वह ईमानदार है। अपनी धरती अपने राज्य के लिए मर-मिटने वाला क्रांति वीर पुरुष राठौड़ वंश से संबंध रखता है। वह वीर सुल्तान की आंखों में आंखें डालकर सिद्ध करना चाहता है कि मैं तुम्हारे जुल्मों से ज्यादतियों से डरने वाला नहीं हूं। उसकी आंखों से सुल्तान के विरुद्ध निडरतापूर्वक नीली बिजलियां कौंध रही हैं।

इस दृश्य को देखकर सभी उपस्थित लोग चुप्पी साधे मौन दर्शक बने हुए हैं। उन दर्शकों में आम और खास सभी हैं-खासमखासत में हैं-मनसबदार, शायर और सूफी, यथा-अलगजाली, इब्ने सिन्ना और अलबरूनी। इनके अतिरिक्त ऊंचे ओहदे के नामवर सिपहसालार, सब सरदार ये भी सारे के सारे खामोशी साधे बैठे हैं।

उस वीर क्रांतिपुरुष के सामने सत्ता द्वारा जो शर्तें रखी गई हैं उसे वे बिल्कुल भी स्वीकार नहीं है। वह वीर अपनी आन-बान-शान के साथ अपनी हठ पर सीना तानकर सिर ऊंचा किए ऐसे खड़ा है-जैसे वह खुद सबकुछ है। ये देख कर सभी को लगने लगा है कि अब तो सत्ता पर आफतों के घने बादल मंडराने लगे हैं। उधर उस वीर-धीर पुरुष के सामने सत्ता का सुल्तान सुरक्षा-कवच पहने सिर्फ बेजान मिट्टी का पुतला-सा लग रहा है। वह इस समय उस वीर के सामने मात्र एक रेत का ढेर जैसा प्रतीत हो रहा है। इस समय उस शहंशाह की शाही धाक सन्नाटे में सिमटी हुई है। चारों तरफ दरबार में सन्नाटा पसरा हुआ है। ऐसा लगता है जैसे पूरे जमाने को सांप सूंघ गया हो।

अब ऐसी विषम-सी स्थिति में शहंशाह औरंगजेब आलमगीर चुपचाप बैठा अपनी भूल पर ध्यान दे रहा है कि मैंने आम जनता की कमजोरियों को, विवशताओं को अपनी ताकत बना लिया है-समझ लिया है। गलत तरीकों से मैंने सत्ता तो हथिया ली, परंतु सीधी सच्ची जनता के दिलों पर मैं राज न कर सका और इसी प्रकार मैंने अपनी कमजोरियों को लोहे का सुरक्षा कवच पहनकर सुरक्षा के कड़े प्रबंध करके छिपा रखा है। इस प्रकार मैं आम लोगों की निगाहों में एक क्रूर शासक सिद्ध हो गया हूं। ऐसा करके उसने आम जनता पर अत्याचार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उसने सच्चाई को रौंद डाला है। दिल की सभी बस्तियां उजाड़कर तहस-नहस कर दी हैं। इस कारण उसने सिद्धांतहीन होकर सभी नियमों को,

सुरक्षा को ताक पर रखकर सभी को गिरफ्तार कर लिया है। सभी उसके फैलाए राजशाही स्वार्थों के ताम-झाम में असहाय होकर रह गए हैं। सत्ता ने पूरी तरह से दिलों को जकड़ कर रखा हुआ है। दिल की बस्तियां वीरान-सी हो गई हैं। लेकिन अभी भी आशा की किरण बाकी है। वे अभी हार नहीं माने हैं।

इसी आम दरबार की सन्नाटे भरी खामोशी में से आम जनता के बीच जब कोई अजीब तरीके की कराहट करता हुआ निकलकर भागा, तब दरबार में पंक्तिबद्ध खड़े अस्त्र-शस्त्रों से लैस स्वार्थी सुरक्षा अधिकारी सहम कर रह गए। जब ऐसा वातावरण बना तब दिल के दरबार में अजीबों शकल-सूरत के सिपहसालार भी सहम कर यह अचानक पैदा हुआ दृश्य देखकर चौंककर रह गए। वे सभी सिपहसालार बड़े ही अनुभवी और दोहरे व्यक्तित्व वाले थे। तभी तो वे संजीदगी में सहमकर चुपचाप सब देखते रहे।

उधर आम दरबार में से यकायक भागकर वह वीर दरबार के उस ओर पहुंच गया। किले से बाहर आकर वह बहादुर अंधेरी घाटियों के गोल टीलों और घने पेड़ों के बीच जाकर छिप गया। गुम हो गया। ऐसा लगा जैसे वह अज्ञात, अनाम वीर अज्ञात स्थान पर कहीं चला गया-यहां कवि ने सत्य और असत्य की ओर संकेत किया है। बलवान और निर्बल की ओर संकेत किया है। कवि आगे की पंक्तियों में कहता है कि सत्य (सच्चाई) झूठ पर विजय प्राप्त करने के लिए नैतिकता का सहारा लेकर एक सेना तैयार कर रहा है और वह सत्य समय आने पर अपनी सेना के साथ असत्य-अत्याचार, अनाचार पर विजय प्राप्त करने के लिए अवश्य आएगा। वह अपनी हार का बदला अवश्य लेकर रहेगा। यह उस धर्म का आचरण करने वाले आम जन की खूनी क्रांति की चेतना का स्वर है। ये आम जन के हृदय में छिपे स्वर्णाक्षरों में अंकित उद्‌गार हैं, जो कि एक दिन प्रकट होकर विकराल रूप धारण करेंगे और इस प्रकार उस आम-दरबार में उत्पन्न हुई खामोशी में से अचानक उठकर बेहताशा भाग वह वीर सत्ता पर कब्जा जमाने वाले अत्याचारियों को समाप्त करने में सफल हो पाएगा। तभी सही अर्थों में समाजवाद आएगा और आम-जनता स्वतंत्रता की हवा में सांस ले पाएगी।

विशेष

इस लंबी कविता के प्रतीक भी प्राचीन गाथाओं के, इतिहास के टुकड़े-से जान पड़ते हैं। इस कविता का यथार्थ भयानकतम अंश प्रतीत होता है। साथ ही इसका कैनवास भी काफी विशाल बन पड़ा है। यह समतल भी नहीं है। सामाजिक जीवन के धर्मक्षेत्र (कर्तव्यबोध) और व्यक्ति चेतना की रंगभूमि को निरंतर जोड़ते हुए, समय के अनेक कालक्षणों की व्यक्ति चेतना को प्रायः एक साथ अयामित करता प्रतीत होता है। इस कविता में युद्धकाल और सामंती-सांप्रदायिक प्रतिक्रिया के दर्शन भी होते हैं। इस कविता की विशेषता यह भी रही है कि इसमें औरंगजेब आलमगीर शहंशाह का प्रतीक भाव भी दर्शाया गया है। कविता वीर और रौद्र रस का पुट लिए हुए है।

गतिविधि

निराला की 'सरोज स्मृति' और मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' कविता का लंबी कविता के तत्वों के आधार पर मूल्यांकन कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

गजानन माधव मुक्तिबोध को प्रगतिशील कविता और नयी कविता के बीच का सेतु भी माना जाता है।

8.7 सारांश

'तारसप्तक' के कवियों में मुक्तिबोध का प्रमुख स्थान है। प्रगतिशील चेतना से अनुप्राणित मुक्तिबोध हिंदी-काव्य में अपना एक अच्छा-खासा कद रखते हैं। मुक्तिबोध का वैचारिक जगत अन्य कवियों से सर्वथा अलग है। उनका काव्य-चिंतन एक अलग प्रकार के परिक्षेत्र के द्वार खोलता है जहां से कवि के व्यक्तित्व एवं उनकी परिस्थितियों को समझना आवश्यक हो जाता है। उनकी कविताओं में आए अलग प्रकार के प्रतीक व बिंब फैंटेसी का निर्माण कर डालते हैं जहां से कवि अनुभव की बात उठा करती है। उनका काव्य अपने पाठक से विशेष प्रकार की मानसिकता रखने की मांग करता है जहां पर सामंजस्य का विचार उपस्थित हो सके।

मुक्तिबोध का काव्य उनके संघर्षों का प्रतिरूप है लेकिन उनके भीतर की जिजीविषा ने उन्हें खास व्यक्तित्व प्रदान किया है। उन्होंने संघर्षों को सदैव चुनौती के रूप में स्वीकार किया।

मुक्तिबोध ने व्यक्तिगत रूप से जीवन के बहुत ही कठिन दिन देखे, निर्धनता के जीवन को भोगने वाले कवि ने बहुत प्रयत्नों के बाद आकाशवाणी नागपुर के समाचार-संपादक का कार्य भार संभाला। कई जगहों पर परिस्थितिवश वे नौकरी पकड़ते रहे और नौकरी छूटती रही मगर उन्होंने अपने भीतर के कवि को सदैव जीवित रखा। 'चांद का मुंह टेढ़ा है' उनकी सुप्रसिद्ध कृति है जिसमें उनके भीतर का सशक्त कवि दिखाई पड़ता है। मुक्तिबोध के बाह्य अनुभवों ने उनके भीतर को मजबूत कर डाला। आदतन राजनीति परक बहसों की शुरुआत करना, पत्रकारिता क्षेत्र से जुड़ना और अपने आस-पास रहने वाले आम आदमी से बतियाना उनकी बौद्धिक, गतिशील एवं जागरूक प्रवृत्ति को ही सामने लाता है। वे चाहते तो बड़े ओहदों को प्राप्त कर सकते थे मगर उनके व्यक्तित्व के ईमानदारी व पारदर्शी रुख ने उन्हें आम आदमी बनाए रखा जहां उन्होंने भावनात्मक तेवर के साथ ही अपनी कविता कहानी ज्यादा उचित समझी, अनुचित को सहन न करना, शोषितों के समर्थन में बढ़-चढ़ कर आगे आना, सामंतवाद का पुरजोर विरोध करना कवि के मानवीय पक्ष को सामने लाता है।

'अंधेरे में' कविता 'चांद का मुंह टेढ़ा है' काव्य संग्रह की लंबी कविताओं में से एक कविता है व इस संग्रह की अंतिम कविता है। शीर्षक 'अंधेरे में' यह दर्शाता है कि समाज में अंधेरे में कौन-कौन है? वास्तव में यह कविता जीवन के बाह्य रास्तों से गुजरने के साथ-साथ मन की गुफाओं के अंधेरे रास्ते में जाने की यात्रा तय करती है जहां विभिन्न एवं विचित्र वातावरण वाली फैंटेसी प्राप्त होती है जो कवि अनुभव एवं कल्पना पर आधारित है। आत्मान्वेषण भी मुक्तिबोध के काव्य की बड़ी विशेषता है, कई विरोधाभास देती स्थितियां, परिस्थितियों के अटपटेपन का भाव देती हैं। कवि अनुभव मानसिक स्थितियों को लेकर आता

है। पाठकों व अध्येताओं को बाह्य रूप से यह कविता विचित्र व अलग लग सकती है मगर कविता की गहराई को समझने पर मुक्तिबोध का सरल व ईमानदार व्यक्तित्व उभर कर आता है जहां कवि द्वारा जीवन के विविध आयामों को पॉलिश करके चमकाया नहीं गया है बल्कि बहरी प्रारूप का पर्दाफाश बड़ी तसल्ली से किया गया है और बार-बार इस बात को कई ढंग से समझाने का प्रयास किया है। मुक्तिबोध को समझना कठिन भले ही हो मगर मुक्तिबोध जैसे कवि को एक बार गहराई से समझने के उपरांत, कविताओं के सामने उपस्थित न रहने के बावजूद उनका वजूद हटा पाना, मुश्किल प्रक्रिया है।

मुक्तिबोध ने अपने जीवन में निहित कमियों की कोई परवाह तक नहीं की और अपने संवेदनशील फलक से हिंदी-काव्य-जगत को गंभीर, चिंतनशील काव्य प्रदान किया जिसकी तुलना किसी भी अन्य कवि से नहीं की जा सकती है।

8.8 मुख्य शब्दावली

- **वाचक** : सूचक, बतानेवाला, मौखिक, महत्वपूर्ण शब्द।
- **दर्शन** : चाक्षुष प्रत्यक्ष, वह शास्त्र जिसमें आत्मा, अनात्मा, जीव, ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, जगत, धर्म, मोक्ष, मानव-जीवन के उद्देश्य आदि का निरूपण हो।
- **अस्मिता** : अहंकार, अस्तित्व, विद्यमानता।
- **वैषम्य** : विषमता, समतल न होना, भूल, अनौचित्य, एकाकीपन।
- **फैंटेसी** : कल्पना का वह स्तर जहां पर कल्पना को किसी प्रकार की कोई बंदिश न हो, अति कल्पना।

8.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. गजानन माधव मुक्तिबोध।
2. सन् 1943 में।
3. चांद का मुंह टेढ़ा है।
4. 'मुक्तिबोध रचनावली' में।
5. 28 कविताएं।
6. मध्यम वर्ग।
7. मार्क्सवादी चिंतन को।
8. 'मध्यम वर्ग' के
9. मध्यवर्गीय चाचक को सारे द्वंद्वों से परे रखकर सर्वहारा के मध्य रखने पर अंधेरा समाप्त हो जाता है।
10. 'अस्मिता की खोज'।

11. फैंटेसी कल्पना का वह स्तर है जहां पर कल्पना को किसी प्रकार की बंदिश न हो।
12. व्यक्ति की प्रबुद्ध चेतना का।
13. 'फैंटेसी' कविता में।
14. 'मृतक दल की शोभा यात्रा' कविता में।
15. आधुनिकता।
16. लाल रंग।
17. सहृदयी व बुद्धिजीवी।
18. 'सभ्य नगर' के द्वारा।
19. मानवीय आस्था के स्वर प्रकट करना।
20. मुक्तिबोध।
21. आदर्शों के पतन से।

8.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. 'अंधेरे में' कविता में अंधेरा किसका प्रतीकार्थ है?
2. फैंटेसी व आत्मान्वेषण का क्या संबंध है?
3. बिंब किसे कहते हैं?
4. प्रतीक से क्या अभिप्राय है?
5. मुक्तिबोध के काव्य में राजनैतिक वातावरण की व्यवस्था का चित्रण कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. मुक्तिबोध के जीवन का परिचय देते हुए उनके रचना संसार का वर्णन कीजिए।
2. 'अंधेरे में' कविता मध्य वर्ग की अस्मिता की खोज का प्रयास है। सविस्तार वर्णन कीजिए।
3. मुक्तिबोध की कविता में उपस्थित समाज का चित्रण कीजिए।
4. 'मुक्तिबोध का काव्य वैशिष्ट्य बहुआयामी व नवीन है'- कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
5. 'मुक्तिबोध के काव्य में आधुनिक भारत का यथार्थ चित्र प्रस्तुत होता है'- विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

6. सप्रसंग व्याख्या कीजिए-

(क) भूल-गलती
आज बैठी है जिरहबख्तर पहनकर
.....
.....
दरबारे आम में

(ख) मनसबदार
शाइर और सूफी,
.....
.....
हैं खामोश

(ग) इतने में हमीं में से
.....
.....
सहमकर रह गये

8.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. शशि शर्मा, *समकालीन हिंदी कविता : अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में*
2. नंदकिशोर नवल, *मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना*
3. डॉ. देवेंद्र कुमार जैन, *मुक्तिबोध विचार और कविता*
4. डॉ. राजेंद्र मिश्र, *कविता की नई अवधारणा*
5. रविंद्र भारती, *नई कविता का 'ब्रह्मराक्षस मुक्तिबोध'*
6. *गजानन माधव मुक्तिबोध : एक साहित्यिक की डायरी*
7. डॉ. गजानन मौर्य, *मुक्तिबोध की काव्य भाषा*
8. डॉ. नगेंद्र, *काव्य बिंब*
9. निर्मला जैन, *आधुनिक हिंदी काव्य - रूप और संरचना*

Institute of Distance Education
Rajiv Gandhi University

A Central University

Rono Hills, Arunachal Pradesh

Contact us:

+91-98638 68890 | Ide Rgu | Ide Rgu | helpdesk.ide@rgu.ac.in